THE MEGHADÛTA OF KÂLIDÂSA

With the Commentary of Mallinâtha,

For the use of High Schools and Colleges,

Edited

With a literal English translation, with copious notes in English, and with various readings

BY

GOPAL RAGHUNATH NANDARGIKAR,
Sanskrit Tutor, New English School, Poona,

Bombay:

Published and Sold by

Messrs. Gopal Narayen & Co.;

Book-sellers and Publishers, Kalkadevi Road.

1894.

Price Rs. 1—8.

Bombay: Printed at "Gopal Narayen & Co's Printing Press" for the Proprietor, Venayek Narayen, by R. C. Pinge, Hanuman Lane.

Dedicated

To

DR. RAMAKRISHNA GOPAL
BHANDARKAR M. A., C. I. E. P.HD (Gottinge

Honorary Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland; Honorary Member of the Italian Asiatic Society;
Corresponding Member of the German Oriental Society;
Fellow of the Universities of Bombay and Calcutta;

And

Vice Chancellor of the University of Bombay,
As a token of deep gratitude
by the Editor.

Abbreviations.

Malli.	=म०	=Mallinàtha.	मल्लिनाथः
Val.	=व०	=Vallabha.	वल्लभः
Mahima.	=महिम०	=Mahimasinhagaṇi.	महिमसिंहगणिः
Su.	=सु०	=Sumativijaya.	सुमतिविजयः
Lakshmi.	=लक्ष्मी०	=Lakshmînivàsa.	लक्ष्मीनिवासः
Meghar.	=मघरा०	=Megharája.	मेघराजः
Bha.	=भ०	=Bharata.	भरतः
Sanà.	=स०	=Sanàtana.	सनातनः
Ràm.	=रा०	=Ràmanátha.	रामनाथः
Hara.	=ह०	=Haragovinda.	हरगोविन्दः
Kalyá.	=क०	=Kalyáṇamalla.	कल्याणमल्लः
Sáro.	=सा०	=Sároddhàriṇí.	सारोद्धारिणी.
Megha.	=मेघल०	=Meghalatá.	मेघलता.
Avach.	=अव०	=Avachûri.	अवचूरिः
Saras.	=सर०	=Sarasvatitîrtha.	सरस्वतीतीर्थः
Pàrsvà.	=पार्श्वं०	=Pàrsvábhyudaya.	पार्श्वाभ्युदयः

Addenda Et Corrigenda.

N. B. —— The reader should make these corrections and additions before commencing to read. It will be found that some insignificant mistakes have crept in owing to the great haste with which the book has been issued.

Page.	Line.		Incorrect.		Correct.
1	7	for	°रापशान्तये	read	°रोपशान्तये
1	7	"	°पान	"	°पावन
1	9	"	°कामदं	"	शर्मदं
1	21	"	°द्धेता:	"	°द्धेतोः
3	34	"	ceoud	"	cloud
5	7	"	°तरस्यम् "	"	°तरस्याम् "
5	23	"	°द्यक्त	"	°द्युक्त
5	26	"	°शल्य	"	°शून्य
10	8	"	मुञ्जतो	"	मुञ्चतो
12	7	"	°खाद-	"	खेदि-
12	8	"	खदि-	"	खेदि-
12	9	"	भवन्त्यमः	"	भवन्त्यमूः
14	14	"	शरीरकेदारे	"	शरीरे केदारे
15	9	"	°बसथे	"	°वसथे
17	8	"	प्रकभ्प्यो	"	प्रकम्प्यो
20	16	"	शब्दार्णव	"	शब्दार्णवे
20	20	"	मणितमपि	"	भणितमपि
21	10	"	जाताः	"	संजाताः
21	19	"	यसिद्धिः	"	प्रसिद्धिः
22	25	"	great-flowered	"	garden-jasmine
32	8	"	कनन्या	"	कान्त्या
35	23	"	roost	"	roost,
36	12	"	चेतसावि	"	चेतसीव
37	12	"	कटा	"	कटौ
37	28	"	G1. G2. K1. K2. N. M. विपुलघजनां,	"	G1. G2. K1. K2. R. N. M. विपुलजघनां.
39	13	"	द्वितियया	"	द्वितीयया
43	30	"	गाञ्जवि°	"	गाञ्जीव°
44	32	"	ta	"	to
46	6	"	मृयनाभि°	"	मृगनाभि°
47	26	"	showers hailstones	"	showers of hail-stones

48	12	”	शश्वत्	”	शश्वत्
49	32	”	मुरुज	”	मुरज
50	31	”	P. अनुपतेः for अनुसरेः	”	P. अनुपतेः, K2. M. अभिसरेः for अनुसरेः
53	35	”	G1.	”	G2.
53	36	”	K2.	”	G1. M.
62	27	”	G1. G2. K1. K2. R. N. M. बद्धापानं for बद्धालापाः.	”	G1. G2. K1. R. N. M. बद्धापानं, K2. M. मध्वापानं for बद्धालापाः.
63	26	”	G1. G2. K1. K2. R. N. M. पत्रच्छेद्यैः for पचच्छेदैः	”	G1. G2. K1. R. N. M. पत्रच्छेद्यैः, K2. M. क्लृप्तच्छेद्यैः for पत्रच्छेदैः.
63	29	”	G1.	”	G1. K2. M.
63	30	”	K2. M.	”	R. M.
69	7	”	पीठ	”	पीठं
70	6	”	निपाः	”	नि ।ातः
70	7	”	क्षामच्छोयं	”	क्षामच्छायं
71	2	”	निम्ननाभिः	”	निम्ननाभिः
73	19	”	fan	”	face
74	12	”	सादृश्यघुप्रतिकृतिं°	”	सादृश्यप्र ि कृतिं°
74	27	”	one	”	one,
76	10	”	यद्धा	”	यद्वा
77	29	”	सौधवातायनथः	”	सौ धवातायनस्थः
78	27	”	sorrow,	”	sorrow
79	5	”	बुद्धयेति	”	बुध्येति
81	3	”	करुणा वृत्ति°	”	करुणावृत्ति°
81	10	”	°पंख्या°	”	°पसंख्या°
83	19	”	°रतलो°	”	°रतुलो°
83	20	”	प्रतिबंधा°	”	प्रतिषेधा°
86	29	”	wives braids	”	wives' braids
89	11	”	जाता°	”	संजाता°
90	7	”	लम्पढो	”	लम्पटो
90	33	”	भ्रूविलसाम्.	”	भ्रूविलासान्.
92	18	”	चेलाञ्चलन°	”	चेलाञ्चलेन°
93	6	”	कथ	”	कथं
95	9	”	क्रमणे	”	क्रमेण
99	14	”	°सपाद्न°	”	°संपादन°
99	26	”	M. K1. R.	”	M. G1. K1. R.
99	28	”	W. B. C1. C2. N. M. G2. K2.	”	W. B. C1. C2. N. M. G1. G2. K2.

100	15	"	सर्वत्र व्याप्यते	"	सर्वत्र व्याप्तये
100	16	"	सारस्वतालकारे	"	सारस्वतालंकारे
100	28	"	G2. M. R. K2	"	G1. G2. M. R. K2.
100	31	"	विचर जलद for जलद वि-चर.	"	विचर जलद, G1. M. विह-र जलद for जलद विचर.

Notes.

Page.	Line.		Incorrect.		Correct.
1	8	for	the.	read	the
1	15	"	.and	"	and
2	2	"	भाग्यः	"	भोग्यः
2	9	"	either	"	either,
3	15	"	hill	"	hill,
3	15	"	says	"	says,
3	33	"	cloudsare described	"	clouds are described
6	4	"	[illegible]	"	प्रथम
6	10	"	if be accepted प्रशमदिवस		if प्रशमदिवस be accepted
10	4	"	कल्पांतेवृ ष्टिकर्तारः	"	कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः
10	9	"	*Malli*	"	*Malli.*
10	31	"	°भावः	"	°भात्रः.
1	4	"	हर°	"	°हर°
	7	"	कलैासोपवनं	"	कैलासोपवनं
11	22	"	°लंक्रार	"	°लंकार,
11	23	"	सः	"	सः.
11	31	"	*Malli*	"	*Malli.*
12	32	"	°गामेॉ	"	°गामी
15	5	"	मानस in	"	मानस is in
16	37	"	शिवलिग;	"	शिवलिंग
17	22	"	बाष्पमुञ्चति	"	बाष्पं मुञ्चति
18	16	"	beings	"	beings are
19	1	"	दृष्टोष्छायः	"	दृष्टोच्छ्रायः
20	6	"	विघट्टिता	"	विघट्टिताः
21	27	"	°सीरोत्खात	"	°सीरोत्खाता
22	16	"	भय	"	भूय
25	9	"	कर्तु	"	कर्तुं
25	11	"	explains	"	explain
26	31	"	मत्प्रियार्थः	"	मत्प्रियार्थं
27	3	"	°कका	"	°केका
27	11	"	°दारतैः	"	°दारितैः
29	4	"	After this note insert		

			the following	"	According to Pa*n*ini II. 1. 65, the compound ought to be दिनकतिपय and not कतिपयदिन as the poet has given; but Mallinátha has supported it with the following remark. He says that some of the distinguished writers do not always follow the rule in the general and the most accepted use of the word in a कर्मधारय compound, *i. e.* अस्य शास्त्रस्य प्रायिकत्वात् as कतिपयकुसुमोद्गमः कदंबः ॥ *Uttara.* III. 21. From the above rule of Pa*n*ini it may be inferred that the word कतिपय when denoting quantity may stand as the last member of the compound: as, उदककतिपयं, उदश्वित्कतिपयं 'some quantity of butter;' but when it denotes a number it may be used first.
32	5	"	°इक्षिणावर्त्तो	"	°दक्षिणावर्तः
35	last line	"	रमणयिवक्त्र°	"	रमणीयवक्त्र°
41	4	"	उज्जायिमी	"	उज्जयिनी
41	14	"	the दशार्ण	"	the दशार्णा
42	17	"	°भ्रान्ति	"	°भ्रुन्ति
45	10	"	°क्रारि°	"	°करि°
45	11	"	°मुक्तण्डा°	"	°मुक्तचण्डा°
45	23	"	भत्तु°	"	भक्तु°
46	10	"	°हिपनं	"	°हीपनं
47	37	"	धैर्याइ	"	धैर्याद्
47	39	"	Nàgapur;	"	Nágapur or Nâgapaṭṭana;
48	18	"	(XIV)	"	(XLV)
53	17	"	'बन्धवत	"	°बन्धवत्
₹3	38	"	a bout acentury	"	about a century
53	39	"	Mandasôr,	"	Mandasôr.

56	80	”	सं:शितव्रतः	”	संशितव्रतः
58	12	”	निः सपत्नौ	”	निःसपत्नौ
58	21	”	o	”	of
59	2	”	pages	”	at pages
59	9	”	°मात.	”	°मातृ.
62	21	”	transposed	”	transposed,
65	2	”	mountain	”	mountain.
65	18	”	°सर्जत दा	”	°सर्ज तद्रा
65	25	”	भर्गरिथ	”	भगीरथ
66	3	”	हमवती	”	हैमवती
66	24	”	tha	”	that
67	12	”	°पय°	”	°पयः°
67	40	”	apu	”	and
69	1	”	°पत्ना°	”	°पत्नी°
69	29	”	इंन्द्रो	”	इन्द्रो
70	39	”	°संशुष्क°	”	°संशुष्क°
70	39	”	°रक्षियमाण	”	°रीक्ष्यमाणा
72	8	”	महात्मा	”	महात्मानः
72	29	”	अर्धेन्दु°	”	अर्धेन्दु°
79	1	”	उत्तर मे मू.	”	उत्तरमेघम्.
81	16	”	°जनर्न-	”	°जननं
84	21	”	वल्लभस्य	”	वल्लभस्य
85	2	”	°तर	”	°तर-
85	3	”	°नग	”	°नग-
86	6	”	°स्तेष	”	°स्तेषु
89	1	”	°नलि°	”	°मील°
90	24	”	मुत्पद्येत	”	समुत्पद्यते
91	2	”	अधोमाये	”	अधोभागे
91	14	”	°स्यन्त°	”	°स्यन्त°
93	11	”	तुहिनमीथत	”	तुहिनमथित-
93	20	”	इन्द्रा°	”	इन्दो°
93	26	”	°वचनं	”	°वचनं.
96	19	”	दिन	”	दिनं
97	9	”	e stern	”	eastern
97	32	”	मय r°	”	नयन°
100	8	”	वाहुल्य°	”	बाहुल्य°
101	8	”	because	”	because,
102	6	”	°सघट्टन°	”	°संघट्टन°
103	last line	”	°पक°	”	°पंक°
105	13	”	दीर्वा°	”	दीर्घो°
105	33	”	कुत्रा°	”	°कुत्र

106	26	”	शब्दाख्येयं	”	“शब्दाख्येयं
106	27	”	पुरस्तात्	”	पुरस्तात्”
108	4	”	यदुक्तं वरं।	”	यदुक्तं। वरं
108	25	”	।जा	”	राजा
110	2	”	पयाधरेपर	”	पयोधरपर
110	6	”	भावितव्यं	”	“भवितव्यं
111	14	”	निर्वत्तनात्	”	निर्वर्त्तनात्
111	25	”	°भवान्ति	”	°भवन्ति
112	13	”	शोभांशुभ्र°	”	शोभां शुभ्र°
113	26	”	।नश्चलः	”	निश्चलः
114	4	”	°पिते	”	°पि ते
114	29	”	यस्यासौअ°	”	यस्यासौ अ°
115	11	”	स्निधाः	”	स्निग्धाः
115	11	”	मोक्ष्यान्तितन्वी-	”	मोक्ष्यन्ति तन्वी-
116	16	”	श्लावमानं	”	श्लाघमानं,
116	23	”	°पर्यन्त	”	°पर्यन्त°
116	28	”	विगलिविभुं,	”	विगलितविभुं,
117	4	”	अभिरतसुखम्.	”	अविरतसुखम्.
117	10	”	°भाब:	”	°भाव:
117	16	”	रामागिरी	”	रामगिरि
118	12	”	क्राचरन्ध्रें.	”	क्रौंचरन्ध्र.

Introduction.

1	16	”	manuscripts	”	manuscripts,
4	26	”	°मामान्	”	°मानान्
6	25	”	decad	”	decade
8	1	”	character	”	character,
13	18	”	अनुष्टुप,	”	अनुष्टुप्,
13	22	”	मुनिन°	”	मुनिम°
13	31	”	sppears	”	appears
15	10	”	wass	”	was
15	15	”	if not	”	if not,
15	21	”	aid	”	said
17	19	”	not therefore	”	not, therefore,
18	24	”	and.	”	and
19	3	”	character.	”	character,
20	27	”	appears	”	appears,
24	20	”	uuder	”	under
32	21	”	Europe	”	Europe.
34	25	”	iu	”	in
35	13	”	उज्जयिनि	”	उज्जयिनी,

35		36	,, foo tnote.	,,	footnote. Indian
36		8	,, men	,,	men,
36	footnote	2	,, 264	,,	264."
37	footnote	8	,, MSS	,,	MSS.
46	footnote	10	,, °निर्दं	,,	°मिदं
46	,,	19	,, °कुलोपगति°	,,	°कुलोपगीत°
49		7	,, fragmentar	,,	fragmentary
49	footnote	3	,, सम्राभि°	,,	समभि°
54		4	,, *C.*	,,	(*C.*)
54	footnote	16	,, उदयेंदुमंगल.	,,	उदयेन्दुमंगल.
55	footnote	14	,, bnt	,,	but
57	footnote	15	,, 13).	,,	13),
57	footnote	18	,, सैराष्ट्र	,,	सौराष्ट्र
57	footnote	20	,, Sakas	,,	*S*akas
57	footnote	31	,, Prinscep's	,,	Prinsep's
57	footnote	33	,, V*a*labh*i*	,,	Valabhî
57	footnote	35	,, Siláditya	,,	*S*iláditya
58	footnote	10	,, 'tho	,,	'the
60	footnote	11	,, द्विज्ञः	,,	द्विजः
60	footnote	17	,, शत्रुपराभवग्रन्थ.	,,	शत्रुपराभवग्रन्थ."
60	footnote	22	,, शत्रुपराभव.	,,	शत्रुपराभव."
61	footnote	1	,, India	,,	India;
63	footnote	26	,, *note*	,,	*note.*
64	footnote	8	,, कापेसेनेव	,,	कापिसेनेव
64	footnote	12	,, Setn	,,	Setu
65	footnote	7	,, मधूसुदन	,,	मधुसूदन
66		13	,, part cular	,,	particular
67		4	,, Prámana	,,	Pramána
67		8	,, °टीक	,,	°टीका
67	footnote	9	,, व्युतादिंतेच	,,	व्युतादिते च
67	footnote	18	,, authors	,,	authors,
68	footnote	6	,, °बिन्द°	,,	°बिन्दु°
68	footnote	16	,, व	,,	न
71	foonote	17	,, A nd	,,	And
73		28	,, महाराट्र	,,	महाराष्ट्र
76		15	,, °ज्ञगरं	,,	°न्नगरं
76	Second column	23	,, मनोहिजन्मन्तर°	,,	मनो हि जन्मान्तर°
80		3	,, ingered	,,	fingered

80	Second column	24	,, स्रतं	,,	स्रहतं
81	first column	23	,, देवसंधा	,,	देवसंत्रा
82		3	, माहाकाव्य	,,	महाकाव्य
82		31	,, af	,,	of
84	footnote first column	14	,, हितान	,,	हितानि
84	footnote second column	9	,, बवाधे	,,	बबाधे
84	footnote second colnmn	11	,, सोऽथन	,,	सोऽथैन
84	footnote	21	,, o	,,	of

CRITICAL NOTICE.

I

The text of the present edition of Kâlidâsa's Meghadûta with the Sanjîvinî of Mallinâtha is mainly based on the collation of the following printed editions and the manuscript copies:—

W. This is one of the printed copies of the poem, published at London in 1832 by Prof. H. H. Wilson of the Oxford University, who based his text on an edition which was printed in the year 1813, at Calcutta. This edition contains the text and an admirable metrical translation of the poem with notes and a vocabulary. Along with this we collated another German* edition of the poem published in 1841 by Prof. J. Gildemeister. This too contains the texts of the Meghadûta and S*r*ingâratilak with a Latin translation of the latter and a vocabulary in German of both. But these *savants* of Sanskrit have not, it appears, based their texts on collation of several manuscripts the representatives of the several provinces of India; and thus they have not, it may be presumed, favoured the public with the authentic and the most reliable text of Kâlidâsa. Along with the others we have collated both these editions and have marked the variants throughout.

C1. This is also a printed edition of the poem edited by Prof. Isvarachandra Vidyásâgara of Calcutta. This was published in the year 1869. It contains the text of Kâlidâsa and the commentary of Mallinâtha. Besides this there are at the end of the volume a few extracts from the well known commentaries of Bharata, Sanâtana, Râmanâtha, Haragovinda and Kallyà*n*amalla on the text and various readings. The learned Professor has also discussed in an able spirit some of these readings in Sanskrit.

---

* This beautiful episode has also been edited by Prof. Johnson in England, and by Dr Max Müller at Konisberg; but these editions were not available to me when preparing this book for the press.

C2. Under this group come two printed editions one of which was published in the year 1871 at Calcutta. This is edited by Pandita Prâ*n*anâtha, a Kâshmira Brâhma*n*a. This has the text and the commentary of Mallinâtha and some readings at the end of each page. Here and there are also cited some verses conveying the sense of parallel ideas from the standard authors. Another is also a printed copy published in the year 1870 at Calcutta. This book is edited by Pandita Ajitanâtha Nyâyaratna a native of नवद्वीप at the request of Baboo Bhuvanachandra Vasâka. This also contains the text and the commentary of Mallinâtha. The editor says that the text of the poem he prepared for the press was mainly based on a collation of several manuscripts, the representatives of several provinces of India. His words are:—"तच्च नानास्थानतः पुस्तकानि समाहृत्य विविच्य च यथाश्रममस्माभिः संस्कृतं." In this edition the editor has omitted the variants throughout. All these copies, therefore, represent the text of the Meghadûta which is current in Bengal.

B. This is also one of the printed copies of the poem published at Poona in the year 1866 by Pandita Krishnas'âstri Bhatavadekar who appears to have dedicated his book to Dr. Bülher. This book contains the text and the commentary of Mallinâtha, and a vocabulary of words at the end of the volume. In this book the commentary of Mallinâtha appears to have been prepared with great care and discretion. Excepting some places the commentary in it appears, however, most correct and trustworthy. And this is the special recommendation of the book. This book then may fairly be said to represent the Bombay text, or in other words the text of the Mahârâshṭra countries.

P. This letter represents the text of the Meghadûta interwoven in the Pârs'vâbhyudaya, a Jaina *Mahâkâvya* of Jinasena who is said to have been a contemporary of and a tutor to Amoghavarsha I. Antiquarians say that this king of Karnatic flourished in the third or fourth decad of the 9th century. My friend Mr. K. B. Pâthaka of the Deccan College, who read his paper on Bhart*ri*-

hari and Kumârila before the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society on the 28th June 1892 gives the following account of this Jaina *Mahâkâvya*. He says:—"Jinasena lived on into the reign of Amoghavarsha I, as he tells us himself in the Pârs'vâbhyudaya.*

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्टच मेघं
बहुगुण[मप]दोषं कालिदासस्य काव्यं ।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं
भुवनमवतु देवः सर्वदामोघवर्षः ॥ ७०

श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥ ७१

इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवेष्टितवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम चतुर्थस्सर्गः ॥४

This poem is one of the curiosities of Sanskrit literature. It is at once the product and the mirror of the literary taste of the age. The first place among Indian poets is allotted to Kâlidâsa by consent of all. Jinasena, however, claims to be considered a higher genius than the author of the Cloud-messenger. But this estimate of himself is not endorsed by posterity who regard Kâlidâsa as the greatest of Indian bards, the unapproached and unapproachable; whereas, except among his co religionists, Jinasena's name has passed into unmerited oblivion. However this may be, the value of the Pârs'vâbhyudaya to a modern editor of the Cloud-messenger cannot be exaggerated as Jinasena has contrived to interweave the whole of that charming love-song into his poem. It may be noted here that the earliest allusions to Kâlidâsa are those found in the Harshacharita † and the Aihole in-

* MS. of the Kolhâpura Jaina Matha.

† Introduction to Harshacharita.

scription of Pulikes'i II.,* which thus opens in praise of Jinasena:—

जयति भगवान्जि (ज्जि) नेन्द्रो वीतजरा [मर] णजन्मनो यस्य। ज्ञानसमुद्रां-न्तर्गतमाखिलञ्जगदन्तरीपमिव ॥

The next reference in chronological order to the great poet occurs in Kumãrila's work,† and the allusion to Kãlidãsa, which is met with in the Pãrs'vâbhyudaya is consequently a still later one.

The composition of Pârs'vâbhyudaya I refer to the early part of Amoghavarsha's reign; and last but not least, comes the Âdipurâ*n*a which admittedly ranks very high as a piece of literary workmanship; but Jinasena did not live long enough to finish it. Tradition tells us that when Jinasena felt that his end was approaching he called to his side two of his disciples and, pointing to a piece of wood which lay in front of them, asked each to describe it. One of them said

शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे.

And the other who was Gu*n*abhadra said

नीरसतरु भाति पुरः.

It is needless to remark that the latter description highly

---

* Ind. Ant., Vol. VIII., p. 237. That this is the reading of the verse is clear from the following:—

जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स ।
देंतु वरणाणलाहं.......................... ॥ Shddhabhakti.

संसारचक्रगमनागतिविप्रमुक्ता—
न्नित्यं जरामरणजन्मविकारहीनान् ।
देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमामान्
सिद्धांस्त्रिलोकमहितान् शरणं प्रपद्ये ॥ Siddhabhakti.

विधूताशेषसंसारबन्धनो भव्यबांधवः ।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरांतकृत् ॥ Jinasena, Âdipurâ*n*a.

सम्यग्दर्शनमात्रेण संतोषमपरे गताः ।
श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनां ॥ Ravishe*n*a, Padmapurâ*n*a.

† Tantravártika, Benares Edition, p. 133:—

एवं च विद्वद्वचनाद्विनिर्गतं
प्रसिद्धरूपं कविभिर्निरूपितं ।
" सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमंतःकरणप्रवृत्तयः " इति ॥

commended itself to Jinasena who thereupon entrusted to Gu*n*abhadra the task of finishing the Âdipurâ*n*a. * The latter also wrote the U·tarapurâ*n*a and the Âtmânus'âsana alluded to above.

The Pârs'vâbhyudaya and the Âdipurâ*n*a do not enable us to assign the latest date to Jinasena. But this omission is supplied by the Jayadhavalâṭîkâ which mentions this author along with his illustrious contemporary and disciple Amoghavarsha I., and gives S'aka † 759 as the date of its own completion.

इति श्रीवीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शनी ।
मठग्रामपुरे श्रीमद्गुर्जरार्यानुपालिते ॥
फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे दशम्यां शुक्लपक्षके ।
प्रवर्धमानपूजायां नन्दीश्वरमहोत्सवे ॥
अमोघवर्षराजेन्द्रराज्यप्राज्यगुणोदया ।
निष्ठितप्रचयं यायादाकल्पान्तमनल्पिका ॥
षष्टिरेव सहस्राणि ग्रन्थानां परिमाणतः ।
श्लोकेनानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः ॥
विभक्तिः प्रथमस्कंधो द्वितीयः संक्रमोदयः ।
उपयोगश्च शेषास्तु तृतीयस्कन्ध इष्यते ॥
एकान्नषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य ।
समतीतेषु समाप्ता जयधवळा प्राभृतव्याख्या ॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम् ।
टीका श्रीवीरसेनीया शेषा पद्धतिपञ्जिका ॥

---

* Jinasena wrote the first 42 chapters of this work, the remaining 5 chapters being composed by his pupil. In his introduction to the 43rd chapter Gu*n*abhadra says:—

अर्धे गुरुभिरेवास्य पूर्वे निष्पादितं परैः ।
परं निष्पाद्यमानं सच्छन्दो बध्नाति सुंदरं ॥ १३ ॥
इक्षोरिवास्य पूर्वार्धमेवाभाति रसावहं ।
यथा तथास्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया ॥ १४ ॥

† Siddhantatraya or three Scriptures at Mûdabidari, leaf 518. I owe this reference to Brahmasûri Shâstri of S'ravâ*n*a Belgoḷ.

श्रीवीरप्रभुभाषितार्थघटना निर्लोठितान्यागम-
न्याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरादेशितार्थस्थितिः ।
टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसंद्योतिनी
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतया श्रीपालसंपादिता ॥

We may safely accept S'aka 760 as the date of the Âdipurâ*n*a, for at this time Jinasena must have been very old as he wrote his first work the Harivams'a in S'aka 705.

We have already seen that the Âdipurâ*n*a mentions Akala*m*ka, Prabhâchandra the author of the Nyãyakumudachandrodaya and Vidyãnanda *alias* Pãtrakesari. We have shown that Akala*m*ka was contemporary with the Rãshṭrakûṭa, king S'ubhatunga or Krish*n*arãja I. and flourished in the 2nd half of the eighth century.

Akala*m*ka's pupil Prabhâchandra and Vidyânanda must have lived on into the first half of the ninth century, and were, of course, contemporary with Jinasena who wrote his Harivams'a in the time of the Rãshṭrakûṭa king Vallabha II. The latest date, therefore, which can be assigned to Prabhâchandra and Vidyânanda is S'aka 760, the date of the Âdipurâ*n*a which mentions them."

From the above-mentioned antiquarian researches which have been lately made by Mr. Pathaka it is evident that the text of the poem which I made use of is very old and hence most reliable. And the readings of this text in particular will show the palpable difference of the Meghadûta which had once been before Jinasena when he composed his Pârs'vâbhyudaya in the second half of the ninth century and the Meghadûta of the last decad of the 19th century.

The readings of the Cloud-messenger interwoven in the Pârs'vâbhyudaya were at first kindly sent to me by my revered teacher Prof. Paranjape of the Râjârâma College, Kolhâpura. Afterwards my esteemed friend Mr. K. B. Pathaka of the Deccan College placed at my disposal the complete text of the poem which he had already copied down from the Pârs'vâbhyudaya, and which he with his characteristic energy had intended to publish with the date of the

author. This, therefore, may fairly be said to represent the Karnatic text of the poem.

G1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 157. XV. Collection of 1882-83. Paper, 8 × 5 inches. Folia, 47. The average number of lines on each page is 18. Character Devanâgari in the Kãyastha form of writing. Date, 1617 of the Samvat year corresponding to 1561 A. D.

This MS. is a very learned commentary on the poem. It is called Sãroddhârinî; the name of its author is not given either in the beginning or at the end of its colophons. It is about 332 years old since it gives the date of its production. The first 17 leaves of it are considerably damaged and most of the remaining are also worm-eaten and torn at the marginal sides so as to affect even some lines that begin the pages. It is certainly a very valuable codex. It abounds in quotations from numerous authors, and in grammatical, philological, rhetorical and critical disquisitions. It refers in several places to older commentators but does not name any of them. This Sâroddhârinî is what is called a कथंभूतिनीटीका *i. e.* one which introduces all adjectives by way of answers to the question "कथंभूतः"? first asked. The commentary is copious and generally repeats each word of the text before explaining it. This is, we think, purchased in Gujarâtha by the Bombay Government This then represents the Gujarâtha text.*

G2. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 43. VI. Collection of 1873-74. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 10.

---

* The colophon at the beginning:—

ॐ नमः श्रीचाण्डिकायै ॥ यदर्केन्दुहुताशादिप्रद्योतस्याप्यगोचरं * * * * * * * * * स्तद्वाग्मयं [म] स्तुमे ॥ रसभावम [भ] रोद्भिन्नां भारतीं भरतादृते । श्रीमतं कालिदासस्व * * * * * * * पुमान् ॥ तस्य प्रसन्नगंभीराः प्रबन्धा नौरिवाम्बुधेः । उद्धर्तु स्तोकमप्यर्थं व्याख्यास्यामो * * * * * * * ॥

The colophon at the end:—

इति श्रीकालिदासविरचितस्य मेघदूतकाव्यस्य सारोद्धारिणीटीका समाप्ता ॥ छ ॥ संवत् ॥ १६१७ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे एकादश्यां तिथौ भृगुदिने लिखितयम् ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्त्वनपायिनी ॥ कल्याणमस्तु ॥ आरोग्यतामस्तु ॥ व्यासगोव्यंदशवजीनु पुस्तकं ॥

The average number of lines on each page is 13. Character Devanâgari. Date, none, about a hundred years old. This MS. contains only the text of the poem with some marginal notes. It was purchased for the Bombay Government by Dr. Bülher at Surat.* Besides this† Jaina MS. two other MSS. are also collated under this group.

(*a*) From the Library of the Deccan College, Poona. No. 156. XV. Collection of 1882–83. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 13. The average number of lines on each page is 11. Character, Devanâgari. Date, 1642 of the Samvat year § corresponding to 1586 A. D. This Jaina MS. of the poem was bought for the Bombay Government by Dr. Bhândârakara at Navânagara in Gujarâtha. It contains the text of the poem with some marginal notes. Like G2. the writing of this is very beautiful. In the middle of the writing some round space with a round dot in red ink exactly in the middle of that space is left on each page of the MS. The paper of this is very old and the marginal ends of it are partially damaged by the white ants; on the whole it is very carefully preserved.

(*b*) From the Library of the Deccan College, Poona. No. 159. XV. Collection of 1882–83. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 19. The average number of lines on each page is 15. Character, Devanâgari. Date, 1759 of the Samvat year ‡ corresponding to 1703 A. D. This Jaina MS. of the poem is bought for the Bombay Govern

---

* Calatogue of MSS. Deccan College, 1888, p. 55. Also the preface of the same.

† The colophon at the end:— इति श्रीमेघदूतसूत्रं. And on the margin of the same page, there is:— इति मेघदूतावचूर्ण्णि:.

§ The colophon at the end of this MS. runs thus:— इति श्रीमेघदूताभिधानं काव्यं समाप्तमिति ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥ संवत् १६४२ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां तिथौ शुक्रवारे लिखितमस्ति ॥ श्रीमत्तपागच्छे। श्रीहीरविजयसूरि ॥ विजयराज्ये ॥ पंणश्रीदेवविजयपठनार्थं लिषापितं ॥ श्रीनवानगरवास्तव्यवृहराडालापुभत्रुणषताकेन स्वश्रेयसे ॥ श्रीः ॥

‡ The colophon at the end:–इति संपूर्णा मेघदूतमहाकाव्यस्यावचूरिः ॥ संवत् १७५९ वर्षे वैशाखवारि ४ तिथौ ॥ बीलाडामध्ये ॥ श्रीः ॥

ment by Dr. Bhândârakara at Bilã*d*â somewhere in Gujarâtha. This MS. is a commentary on the poem by a Jaina Pandita named Lakshmînivâsa. This Panjikâ is called S'ishyahitaishi*n*î. *

This commentary is neither so very learned nor copious; the author sometimes quotes some lexicons and some aphorisms of Pa*n*ini. Sometimes he gives some different readings and explains them, but he never attempts to choose the best of the readings of the group he explains. The MSS. (*a*) and (*b*) which form the part of G2. are grouped under it. These three MSS. therefore may safely be said to represent the Gujarâtha text.

K1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 280. XVII. Collection of 1883–84. Paper, 7 × 5 inches. Folia, 58. The average number of lines on each page is 23. Character, Devanâgari, after the S'ara*d*á form of writing. Date, 1627 of the Samvat year † corresponding to 1571. A. D. This Jaina MS. of the poem is bought for the Bombay Government by Dr. Bhândârakar probably somewhere in Kâshmîra. Because each leaf of this commentary has a line or two either in the body of the

---

* The colophon in the beginning runs thus:—श्रीमद्वीरं महावीरं कर्मसीरं मनोहरं। जगत्तारं गुणाधारं दुष्टवारं स्तुवे ह्यरं ॥ कालिदासकृतिः कुत्र कुत्र मे बुद्धिवैभवं। तदिदं वेश्मनेत्रेण कुर्वे विश्वावलोकनं ॥ मेघदूताभिधे काव्ये करिष्ये पञ्जिकामिमां । श्रीमल्लक्ष्मीनिवासोऽहं नाम्ना शिष्यहितैषिणीं ॥ पुरनृपकुमारमंत्रप्रयाणरणदूतजलधिवनगिरयः। रविचन्द्रोदयपरिणयषड्ऋतुमधुकूलकेलिरतिविरहाः ॥ यत्रैतेऽष्टादश भावा वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्यं । एते भावा अत्र लेशतो व्यावर्णिताः सन्ति। अन्यच्च महाकविप्रणीतत्वान्महाकाव्यमुच्यते। अत्र कविः श्रीकालिदासो वर्षाकालमाश्रित्य विप्रलंभरसं वर्णयन्निदमाह ॥

† The colophon at the end of this is as follows:— संवच्चन्द्रकलानवत्रिकमिते (१६२७) श्रीमेघदूतेऽनघे । मासे भाद्रपदे शुभोदयकरे चैकादशीवासरे। टीकेयं वरवाचकेन महिमासिंहेन सत्साधुना । शिष्टानान्तरबुद्धिहर्षविजयादीनां कृते निर्मिता ? ॥ जगद्वंद्यो जगत्पूज्यो जगद्भर्ता जगद्गुरुः । जगच्चक्षुर्जगत्त्राता भास्करो मेऽस्तु सौख्यदः ॥ इति श्रीमत्खरतरगच्छेशयुगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरिसंतानीयश्रीशिवनिधानमहोपाध्यायशिष्यवाचनाचार्यमहिमासिंहगणिविरचिता श्रीमेघदूतकाव्यटीका सुखबोधिका नाम्नीति श्रेयः । इतिश्रीमेघदूतकाव्यटीका संपूर्णसमाप्ता ॥ संवत् १६२७ वैवतिचतुर्थ्यां बुद्धवासरायां मया बहलमिश्रकेन (?) इदं श्रीमहामेघदूतकाव्यटीकापुस्तकं मध्याह्नसमये निर्विघ्नं परिपूर्णं कृतं ॥

commentary or in the margin written in Sâradâ characters, the prevalent system of writing MSS. in Kâshmira and Panjab provinces.

On the 22nd leaf of this commentary the scribe after having written 13 lines in Devanâgari characters at once begins to write the further 10 lines in S'âradâ characters. From the above mentioned remarks I am led to think that the author of this commentary, whether a follower of Buddhism or of Jainism I am unable to say, was probably a native of Kâshmira. Like Sâroddhâri*n*i this commentary is also very learned and copious. It abounds in quotations from Alankâra, Vyâkara*n*a and other S'ãstras and from various other sources. The quotations from lexicons are also copious and mostly drawn from the Abhidhânachintama*n*i. The peculiar feature of this commentary is that the quotations are copiously drawn from the S'atakas of Bhartṛihari, the favourite author of the Jainas as well as the Buddhas. The commentator's name is Mahimasimhaga*n*i and the commentary is called Sukhabodhikâ. It seems that Mahimasimhaga*n*i was one of the worshippers of the sun. *

The writing of this MS. is not good, but the paper is thick and very carefully preserved. This MS. may be said to represent the Kâshmira text.

K2. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 84. XVIII. Collection A of 1883-84. Paper, 8×4 inches. Folia, 49. The average number of lines on each page is 10. Character, Devanâgari, after the S'âradã form of writing. Date, 1857 of the Samvat year † corresponding to 1801 A. D. This MS. of the

---

* The colophon at the beginning:—

ॐनमः परमात्मने पुरुशायनमः ॥ श्रीगणेशायनमः । ॐ नत्वा श्रीभास्करं देवं सर्वदेवशिरोमणिं । ज्योतीरूपं मंगलार्थं प्रत्यक्षं परमेश्वरं ॥ १ ॥ सज्ज्ञानदाननिरतां जगतः सवित्रीं । पद्मप्रभां विकचपद्मनिभाननां तां । पद्मासनां सुरतशर्चितपादपद्मां । वाग्देवतां गुरुपदां च सदा नमामि ॥२॥ श्रीशिवनिधानपाठकचरणयुगं सिद्धिदं प्रणम्यादौ । श्रीमेघदूतकाव्ये टीकां वक्ष्ये सुखावबोधार्थं ॥ ३ ॥

† The colophon at the end:—इति श्रीमेघदूतविवृत्तिः श्रीवल्लभदेवकृता समाप्तिमगात् ॥ संवत् १८५७

poem was bought for the Bombay Government by Dr. P. Peterson probably somewhere in Kâshmîra. This is corroborated by two other codices of the same. The name of the commentator is Vallabha as may be seen from the colophon at the end of it cited here. He was one of the followers of the Kâshmîra S'aivism.

This school of philosophy is alogether different from either the नकुलीशपाशुपतदर्शन (or according to some the Kâpâlas and the Kâlâmukhas also include the above sects) or the S'aivadars'ana as epitomised by Mãdhavâchârya in his सर्वदर्शनसंग्रह. *

The literature of Kâshmîra Mâhes'varas has two branches, one of which is called स्पन्दशास्त्र and the other प्रत्यभिज्ञाशास्त्र. The principal work belonging to the former is that called शिवसूत्राणि which according to Bhâskara, the author of the Vârtikas manifested themselves to Vasugupta under the guidance of a Siddha.† The founder of the प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, the other branch of Kâshmîra S'aiva philosophy, was Somânanda, the author of a work called शिवदृष्टि; but the writer of the principal work of the system, the so-called Sûtras which are verses, was his pupil Utpala, the son of Udayâkara. §

The commentary is called Panchikâ. ‡ The same name he gives

---

* सर्वदर्शनसंग्रह. Bibli. Ind. Series. p. 74 and 80.

† श्रीमन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा ।
सिद्धादेशात्प्रादुरासञ्छिवसूत्राणि तस्य हि ॥
सरहस्यान्यतः सोऽपि प्रादाद्भट्टाय सूरये ।
श्रीकल्लटाय सोऽप्येवं चतुष्खण्डानि तान्यथ ।
व्याकरोत्त्रिकमेतेभ्यः स्पन्दसूत्रैः स्वकैस्ततः ॥—

From No. 171 of this collection.

§ Dr. Bhandarkar's Report on Sanskrit MSS. 1883–84. p. 76–78.

‡ The colophon at the beginning is as follows:—ॐ नमः शि-वाय । ॐ यस्य भृंगावलिः कंठे दानाम्भोराजिराजिते । भाति रुद्राक्षमालेव स नः पायाद्गणाधिपः ॥ १ ॥ कालिदासवचः कुत्र व्याख्यातारो वयं क च । तदिदं मन्ददीपेन राजवेश्मप्रकाशनम् ॥ २ ॥ तथापि क्रियतेऽस्माभिर्मेघदूतस्य पञ्चिका । उन्नताश्रयमहात्म्यस्वरूपख्यातिलालसैः ॥ ३ ॥ अथ यदेतद्भव्यान् व्याचष्टे किमेतदुच्यते मंत्रदूतश्रवणाद्यभावान्महाकाव्यमपि खण्डकाव्यवन्न भवति । तथाख्यायिकाव्यपदेशस्तु दूरापेतएवात्र प्रावृडाश्रयः प्रवासविप्रलम्भः कवेर्वर्णयितुमिष्टोऽत्र स च नायकमनाश्रित्य वर्णमानस्तथारसवत्तां न धारयति । न च शृंगारविधानं । गुह्यकोऽत्र नायकतयाश्रितस्तस्य च विरहोन्मत्तत्वाद्दूत्ये मेघे प्रेरणमपि नायुक्तमिति केलिकाव्यमप्येतत्सर्वं स्वस्थम् ॥

to his commentaries on the Raghuvamsa and the Kumâras'ambhava.

This is neither so accurate nor so full as that of Mallinâtha, or Sa'roddhârini or Mahimasimhagani. Vallabha was the son of Anantadeva * He is not profuse in his quotations, a few verses from the Smṛitis, the Nitis and similar works bearing on his text are all that he quotes, and that too in most cases anonymously. He rarely gives grammatical notes and does not enter into critical disquisition on the merits of the explanations of other commentators, whom he neither quotes nor refers to. But his scholarly penetration into the merits or demerits of the Kâvya, he explains, is certainly unsurpassed. † He has not given the date of the composition of his commentary. Nor have I the means of ascertaining it with the accuracy of Antiquary. Along with this I have collated two other MSS. of Vallabha on the poem from the Library of the Deccan College, Poona. Both these are written in S'âradâ characters of Kâshmîra and are grouped under K2. No. 82. XVII. Collection of 1883-84. has besides the commentary of the Cloud-Messenger, a commentary on the first eight cantos of Kâlidâsa's Kumârasambhava by the same author. It has 23 leaves. The average number of lines on each page is 34. Date, none, about two hundred years old. The paper appears very old and considerably damaged and worm-eaten. It is bought for the Bombay Government by Dr. Bhândarakar. Another also belongs to the same Library. It bears the No. 164. VIII. Collection of 1875-76. Paper, 7 × 6 inches. Folia, 24. The average nomber of lines on each page is 21. It is incomplete. Character, S'âradâ. Date, none, about 150 years old. It is bought for the Bombay Government by Dr. Bülher in Kâshmira. § These three

---

* आनन्ददेवायनिवल्लभदेवविरचितायां रघुपञ्चिकायां......................सर्गः is his usual colophon at the end of each canto of Raghu as well as Kumára. Deccan College MS., No. XVII. of 1883-84.

† See our notes on the 26th verse, पूर्वमेघ.

§ See the Catalogue of MSS. of 1888. D. C. p. 81. also the preface of the same.

codices which form the group of K2. may fairly be said to represent the Kâshmîra text. The paper of this MS. is also very old and partially damaged and eaten by the white ants.

R. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 315. XVI. Collection A. of 1882-83. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 36. The average number of lines on each page is 15. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, 1604 of the Samvat year corresponding to 1548 A. D. * The Jainas write all the Mâtrâs or signs of the medial and final *e* and *o*, behind the consonants followed by those vowels. It is boc ght for the Bombay Government by Dr. P. Peterson somewhere in Râjaputana. This MS. is a commentary on the poem. It is called Sugamânvayâ Vṛitti. The anthor's name is Pandit Sumativijaya. † He finished, it appears, the composition of his commentary on the Cloud-Messenger on Tuesday the 5th of the black fortnight of Ashâḍha, the month being चान्द्रमास, in the Samvat year of 1604 (A. D. 1548., Dr. Peterson has assigned the date of 1804 to this MS.; but the words of the MS. run thus:- संवद्वेदाभ्रानुष्टुप्; here the word अनुष्टुप, I think, means sixteen and not eighteen as the professor supposes and hence the year meant ̀ y the above-mentioned words § is 1604 and not 1804). And five years afterwards he composed his

* The colophon at the end:— प्रशस्ति । राजरंजनदक्षाश्च पाठका मुनिमण्डले । जीयासुर्दीर्घिनाः शश्वच्छ्रीमद्विनयमेरवः ॥ १ ॥ सुमतिविजयेनेयं विहिता सुगमान्वया । वृत्तिश्छात्रसुबोधार्थं तेषां शिष्येण धीमता ॥ २ ॥ विक्रमाख्ये पुरे (may it mean the modern city of Bikaneer) रम्येऽभीष्टदेवप्रसादतः मेघदूताभिधानस्य पूर्णा काव्यस्य सौख्यदा ॥ ३ ॥ इति श्रीमेघदूतटीका संपूर्णा ॥ संवद्वेदाभ्रानुष्टुप् (१६०४) सोममासे आषाढे कृष्णपक्षे पंचम्या अंगारकवारे द्विजमूलचन्द्रेण लिपिकृता इयं पुस्तिका स्वपठनहेतवे ॥ न तु कदाचिदपि परार्थे ॥ कल्याणमदभ्र भूयाल्लेखकवाचकपाठकयोरजस्रं ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ सुमतिविजयेनेयं मेघदूतावचूरिका । क्रियते सारसंग्रहः । भासयन्तं जगद्भासा नत्वा भास्वंतमव्ययं ॥ क्रियते काशिनाथेन शीघ्रं. This sppears likoa verse and the words क्रियते सारसंग्रहः are either superfluous or abrupt; some words again are omit:ed at the end of the couplet.

† The colophon at the beginning runs thus:—श्रीगणेशायनमः ॥ शारदां च गुरुं नत्वा । मेघदूतावचूरिका ॥ सुमतिविजयेनेयं । क्रियते सुगमान्वया ॥ १ ॥

§ The Catalogue of the D. C. MS. 1838. p. 331.

2

commentary called सुगमार्थप्रबोधिका on Kâlidâsa's Raghuvams'a *i. e.* in the Samvat year of 1609 corresponding to the year 1553 A. D.

Râva Bâhâdur S. P. Pandit assigns the date to the composition of Sumativijaya's सुगमार्थप्रबोधिका on Raghuvams'a between A. D. 1635 and 1643.* But on what ground it is impossible to understand? Again Mr. Pandit is not sure about the letters which precede the word ग्रह in the manuscript. The words are निर्विंग्रहे रसशशिसंवत्सरे. Here the couplet or the compound word निर्विंग्रहे means, nine following a dot; and the words रसशशिसंवत्सरे mean, six and one. Thus the whole couplet when taken together means one, six, dot and nine *i. e.* 1609 of the Samvat year. The word preceding ग्रहे must certainly mean a dot and no other figure of unit that is meant to be indicated by it. The word ग्रह when used independently by itself does not, according to the method of astrological term, mean ninety as Râva Bâhâdur Pandit thinks, but it simply means nine. The figure ninety is generally expressed by ग्रहाभ्र or ग्रहाकाश or some such expression. This commentary is nearly in the same style as the पञ्चिका of Vallabha, containing few if any quotations, and avoiding discussions of any sort. It gives, however, the name of the Alamkâra at the end of the commentary of every verse. Sumativijaya in the beginning of his commentary says:—"गुह्यकोऽत्र नायकत्वेनाश्रितः । तस्य विरहोन्मत्तत्वाहूतत्वेन मेघप्रेषणं नायुक्तमिति कश्चित्." Sumativijaya does not name the author referred to by the pronoun कश्चित्. But it is quite probable that Sumativijaya had before him the commentary of Vallabha while writing his own. The above is a paraphrase of Vallabha's words. They are;—"गुह्योऽत्र नायकतयाश्रितस्तस्य च विरहोन्मत्तत्वाहूत्ये मेघप्रेरणमपि नायुक्तमिति &c." From this, it appears, that Vallabha must have lived before Sumativijaya; and Sumativijaya completed his commentary in the year 1548 A. D; so the time in which Vallabha may have lived would probably come to about

* S. P. Pandit's edition of Raghuvams'a, Part III., preface. p. 11-12.

A. D. 1500. And this manuscript may therefore represent the Râjaputanâ text.

N. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 160. XV. Collection of 1882–83. Paper, 8×3 inches. Folia, 17. The average number of lines on each page is 18. Character, Devanâgari after the Jaina form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. It contains the text in the middle of the paper and above and below it is written the commentary entitled the Meghalatâ. * The commentator's name is not given. He appears to be a Jaina expositor of the text. This gloss wass copied at शेषपुर *i. e.* Nagpoor. The word शेषपुर may either mean नागपुर or नागपट्टण *i. e.* Negâpattam of the Madras Presidency. If the word proved to be the city of Nagapore, the MS. may fairly be said to represent the text of the Central provinces, if not it may then represent the text of the Godavari Districts. This कयंभूतिनी commentary is a mere gloss. It therefore does not deserve any further notice.

The following MSS. which come under the head of "Miscellaneous", and which are, therefore, designated by a common letter M., in the footnotes of the text, are such as cannot be aid to represent definitely any particular part of India.

M1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 25. V. Collection of 1872–73. Paper, 8×3 inches. Folia, 22. The average number of lines on each page is 16. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. This Jaina MS. of the poem contains the text and an Avachuri or gloss probably by a Jaina Pandita whose name is not given. The text is written with bold letters in the middle of the paper and the Avachuri on the four

---

* The colophon at the end:— इति श्रीमेघदूताभिधानं महाकाव्यं संपूर्णं इति । शेषपुरे लिषितमस्ति । श्रीशांतिनाथरसा । This is at the end of the text. And the following is at the end of the commentary:—
इति श्रीकालिदासकृता मेघदूतकाव्यस्य वृत्तिर्मेघलतानाम्नी समाप्तेयम् ॥ छ ॥

sides of the margin. The source of this कथंभूतिनी Avachuri is unknown to us. It appears, however, that it must have probably come either from Gujarâtha or Rajaputana.

M2. From the Library of the Deccan College, Poona. No 64. IV. Collection of 1871–72. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 13. The average number of lines on each page is 20. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. This MS. is also a gloss on the text. It is not very important and so does not deserve any further notice. The country from which this MS. is bought appears to be Rajaputana. At the end of it are written the following words:— "इति मेघदूतकाव्यावचूरि ॥ पएंसार देवजी ॥ ॥"

M3. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 141. XVI. Collection A. of 1882-83. Paper, 5 × 3 inches. Folia, 26. The average number of lines on each page is 9. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, 1612 of the Samvat year corresponding to 1556 A. D. * This MS. contains only the text of the poem. The paper of this is very old and considerably damaged. This too appears to have come from Rajaputânâ.

M4. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 142. XVI. Collection A. of 1882–83. Paper, 8 × 3 inches. Folia, 19. The average number of lines on each page is 20. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, none, about 75 years old. This Jaina MS. accompanies with an Avachuri written on the four sides of the margin and in the middle the text. It is not an important commentary and does not deserve to be noticed.

This too owes its source to Gujaratha. The following name is written on the first page of it:—साकरणजे यराजीजी. ॥

M5. From the Library of the Deccan College, Poona. No.

* The colophon at the end:-- इति श्रीकालिदासविरचितं मेघदूताभिधानं महाकाव्यं समाप्तं ॥ संवत् १६१२ वर्षे शाके १४७८ प्रवर्तमाने अद्येहश्रीस्तंभतीर्थवास्तव्यमेदपाटजातीयदी०श्री श्रीनाथसुतहरिजी पठनार्थं ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणं भूयात् ॥

158. XV. Collection of 1882–83. Paper, 7×3 inches. Folia, 21. The average number of lines on each page is 7. Character, Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, 1626 of the Samvat year corresponding to 1570 A. D. * The MS. is an incomplete commentary on the text.

This commentary is superior in every respect either to that of Vallabha or Sumativijaya; but unfortunately the fragment before us contains the commentary on the first 33 verses only. The paper of this is very old and almost damaged about the margin. It represents the text of the Gujarâtha provinces.

M6. From the Library of the late lamented Bâbâ Saheb Phadanavisa of the Morobâ Dâdã family. Paper, 7½×3½ inches. Folia, 40. The average number of lines on each page is 15. Character Devanâgari, after the Jaina form of writing. Date, none, about two hundred years old. This codex is a commentary on the poem. This commentary is called Subodhikâ. † The author's name is Megharâja. § It has some quotations from Nitis and Subhãshitas. Sometimes this commentator gives some different readings and explains them. It is a mere gloss and does not therefore deserve any further notice. This expositor appears to have been a Jaina S'râvaka (श्रमणक) of the Mârvâda countries. The codex may

---

* The colophon at the end runs thus:—इति श्रीकालिदासविरचितं महाकाव्यं समाप्तं ॥ अंकलेस्व [श्व] रमध्ये जोशिरेवाशंकरेण लिखितं ॥ संवत् १६२६ वर्षे आश्विनमासि संपूर्णं ॥

† The colophon at the beginning runs thus:—नत्वाहं परमात्मानमार्यामलमयान्वितं । मेघदूतस्य काव्यस्य कुर्वे टीकां सुबोधिकां ॥ १ ॥ अस्य ग्रंथस्य कर्ता कविकालिदासः कालिकालब्धवरः शालकेन पृष्टः सन् । अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः अस्योपरि ग्रन्थचतुष्टयमकार्षीत् । अस्तीत्यनेन कुमारस्य कार्तिकेयस्य संभवो जन्म तत्सूचकं कुमारसंभवाख्यं काव्यं कृतवान् । कश्चिदित्यनेन च मेघदूताभिधं । मेघ एव दूतत्वेन संदेशहारित्वात्प्रतिपादितस्तस्य संबन्धप्रतिपादकं मेघदूताभिधं काव्यं । वागिति रघुवंशसूचकं । रघुवंशाह्वं च काव्यं । विशेषेत्यनेन षड्ऋतुवर्णनशास्त्रमिति । तत्रेदं मेघदूताभिधं काव्यं कविकालिदासो रचयामास ॥

§ The colophon at the end is as follows:-मेघदूतस्य काव्यस्य मेघराजेन साधुना । टीकान्तरं समालोक्य कृतेयं सुखबोधिका ॥ १ ॥ विशोधनीया धीधनैः ॥ शुभमस्तु ॥ श्रीः ॥ ग्रन्थाग्रं श्लोक ॥

therefore be said to represent the text of Mâravâda territories.

M7. From the Library of the late lamented Bâbâ Saheb Phadanavisa of the Morobâ Dâdâ family. Paper, 10×4 inches. Folia, 30. Character, Devanâgari. Date, none, about a hundred and fifty years old. This codex is only a fragment containing the पूर्वमेघ and some eleven verses of the उत्तरमेघ. The right hand margin of it is considerably damaged and some letters on that side have also been effaced. It contains the text and the Sanjivini of Mallinâtha. The text of Mallinâtha in this codex is almost correct and faithfully copied out. This codex may be said to represent the text of Mahârâshṭra.

M8. From the Library of Mr. Sridhar S'âstri Limaye of Poona. Paper, 9×3 inches. Folia, 59. Character, Devanâgari. Date, 1733 of the S'aka year corresponding to 1815 A. D.* This codex contains the text and the commentary of Mallinatha. It is mostly correct and exactly corresponds to the text as well as to the commentary of Mallinâtha as given in Mr. Krishna S'âs'tri Bhatavadekar's edition. The peculiar advantage of this edition as well as, of the codices of Mallinâtha's commentary of the text in this part of India, is that they are mostly free from interpolations and other kinds of fair glosses at the hands of some Pandits and scholars of northern and north-western parts of India. By the bye some editions of the Sanskrit poems of the Nirṇaya Sagara series are, I presume to think, mere reprints of the Bengal editions and are not prepared with a view to supply the public with editions that are actually based on a sound criticism and patient collation.

---

* The colophon at the end of this runs thus:—

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ श्रीकाशीविश्वेश्वराय नमः ॥ शके १७३३ प्रजापतिनामसंवत्सरे कार्तिकशुद्धचतुर्थीसोमवासरे तद्दिवसे समाप्तः ॥ पिपळखरे इत्युपनामकनारायणात्मजरघुनाथेन लिखितं स्वार्थं परोपकारार्थं च ॥ यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया । यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न विद्यते ॥ १ ॥ भग्नपृष्ठिकटिग्रीवाबद्धमुष्टिरधोमुखं । कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नेन परिपालय ॥ २ ॥ करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः ॥ शुभं भवतु ॥ अदृष्टदोषाच्छ्रमविभ्रमाद्वा । यदर्थहीनं लिखितं मयात्र ॥ तन्मार्जयित्वा परिशोधनीयं । कोपं न कुर्यात्खलु लेखनस्य ॥ ३ ॥ श्रीराम् ॥

This codex may also be said to represent the text of Mahârâshtra.

M9. From the Library of the late Mahâ Mahopâdhyâya Râma Dikshita Apte of Poona. Paper, 9 × 4 inches. Folia, 57. Character, Devanâgari, after the Kâyastha form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. It contains the text and the commentary of Mallinâtha most beautifully written. It is a very correct and trustworthy production. It has some marginal corrections and notes from some other commentary. It was procured for me by my friend Mr. D. L. Dikshita of the Fergusson College. This too represents the text of Mahârastra.

M 10. From the Library of the late lamented Bâbâ Saheb Phadanavisa of the Moroba Dâdâ family. Paper, 10 × 4 inches. Folia, 77. The average number of lines on each page is 8. Character, Devanâgari. Date, none, about a hundred years old. This is a fragment containing only the पूर्वमेघ and 23 verses of the उत्तरमेघ with the commentary of Mallinâtha. It is a very legible, pretty correct, and mostly faithful copy. This also may safely be said to represent the text of the Mahârâshtra countries.

M 11. From the Library of the late lamented Bâbâ Saheb Phadanavisa of the Moroba Dâdâ family. Paper, 10 × 4 inches. Folia, 79. The average number of lines on each page is 10. Character, Devanâgari. Date, none, about seventy-five years old. This codex contains the text and the commentary of Mallinâtha. The first verse of this codex does not contain the commentary of Mallinâtha; but it appears that it belongs to some other expositor whose name is unknown. The commentary of Mallinâtha is given from the second verse to the end of the Kâvya. It is quite legible but incorrect. It also represents the text of Mahârâshtra.

M12. Under this group come four codices two of which include the commentary of Mallinâtha and the other two only the text of the poet. They are all written in the Uriya characters. I was not able to see these MSS. myself, but my very obliging friend, Mr. Vamana Dâji Oka, the Headmaster of Sambalpore High School, Central Provinces, was so kind as to undertake the arduous work

of collating these MSS. for me, and it was thus that I obtained the various readings which are mentioned in the footnotes. Along with the readings he sent me a copy of Isvarachandra's edition of the poem and a written note, which runs thus:—"The four MSS. which I collated for the purpose of your edition of the Meghadûta and designated by the letters A., B., C., D., are all written in the Uriya characters, according to a prevailing custom in these parts, on palmyra leaves. They appear to be about a hundred years old, possibly older, though none of these gives the date of its genesis. They were procured for me by my pupils from their relations to whom my thanks are due. They are, generally speaking, written clearly and legibly but, by no means, accurately. A. and C. contain the text only, while B. and D. include both the text and the commentary of Mallinâtha. About 30 stanzas in each of these manuscripts have no commentary. On a comparison of a number of passages, the commentary in the Bombay edition appears to agree very nearly with that of B. and D. As I found no alterations or additions of any moment, no variants are given. A complete list of various readings made after a very careful collation of these manuscripts is herewith sent." These codices, may, therefore, be said to represent the text of the Central provinces of India.

M13. Under this group come seven MSS. two of which include the commentary of Mallinâtha as collated here, and the other five the commentaries of Bharata, Sanâtana, Râmanâtha, Haragovinda and Kalyâṇamalla. They are all written in Bengal Characters The book which contains these commentaries was, it appears originally copied out for H. T. Colebrooke (No. 2019). This was brought for me from the India Office Library of England by my late lamented friend Mr. Anandoram Boorooah, the Officiating District Magistrate and Collector, Noakhally, Assam, through Dr. R. Rost. And he kindly sent it to me here through Dr. R.G. Bhandarkar. In this book the commentary of Mallinâtha is exactly the same as that of the printed books and the MSS. of Bengal. Of these five

expositors and of all other commentators except Mallinâtha. I took only such of the extracts as contained additional matter and also such interpretations of the original as materially differed from those of Mallinâtha. As these commentaries are professedly so modern, they do not deserve any further notice. They all represent the text of Bengal. As I was already tired of the arduous task of collating so many manuscripts I did not think it neecssary to collate these five expositors along with the others. I simply took down, the readings and the extracts of these and then handed the book over to Dr. R. G. Bhandarkar.

Besides the overwhelming number of codices and six other MSS. containing the commentary of Mallinâtha (*i. e.* M7., M8., M9., M10., M11., and M13.) which have been regularly collated in preparing the present edition of the Meghadûta, I have also invariably made use of two other codices containing the text and the commentary of Mallinâtha of my own collection. These two codices were very useful to me in ascertaining a doubtful reading either in the text of the poet or in the commentary of Mallinâtha, and occasionally in expunging an obvious interpolation from the latter, whenever such a course was clearly sanctioned by several of the manuscripts that were left at my disposal.

In making out the commentary given in the present edition I have considered M7., M8., M9., M10., M11., and M13. and Mr. Bhâtavadekar's edition as my principal guides. Preference has generally been given to M7., M8., M9., and Bhâtavadekar's edi tion over M10., M11., and M13., but the latter three have not been less useful in their turn among other things in checking the occasional interpolations of M7., M8., and M9., in the form of grammatical notes and lexicographical quotations, Indeed one of the chief benefits that I think I have derived from the comparatively so large a number of codices used by me in the collation for the present edition, is that I was enabled in some places to free the commentary of Mallinâtha from the various interpolations with which it is overgrown, and whose character as interpolations was

proved beyond doubt by the fact of their being entirely omitted by the majority of the best MSS. at my disposal. Specimens of such spurious comments as I have expunged from the commentary of Mallinâtha will be found in the body of Mallinâtha's text.

With regard to the text, I have always given the reading which Mallinâtha commented upon. Whenever the reading of the codices varied from that of Mallinâtha's commentary, the former has been given in the various readings in the foot-notes. Most of these *variae lectiones* will derive additional interest from the fact that they are confirmed by so many other commentators on the poem.

PREFACE.

II.

Although the Meghadûta is the best and the unrivalled of Kâlidâsa's poetical productions, nay the most favourite of the books read all over India * by those who have in their mind's eye the appreciation for the studies of Sanskrit outside Government schools and colleges, and although codices of it abound in every part of the country, and printed or lithographed transcripts of the work are not few, no critical edition of the entire poem has to my knowledge yet been published, at least in India, founded upon manuscripts carefully collated. Many editions of the poem have been published and given to the public by some learned Pandits and scholars of Calcutta and other parts of the country, but it would not be far from the truth to speak of those editions

* Besides the two editions of European scholars of this episode which we have collated along with the others, there are , as Dr. Bhau Daji tells us, two other editions of this poem, one of which is published by Prof. Johnson in England, and the other by Prof. Max Müller at Konigsberg. It shows then that this episode is not only read in India, but also in some parts of the European countries. Mons. Fuache thinks there is nothing so perfect in the elegiac literature of Europe as the "Meghadûta" of Kâlidâsa. See Dr. Bhau Daji's essay on Kâlidâsa, Jour. B. B. R. A. S. Vol. VIII., also The Literary Remains of Dr. Bhâu Daji. p. 3. and 7.

that the only object of their editors seems to have been rather to give the most readable and the least difficult version of the poem and the commentary of Mallinâtha than to attempt to find out by scrupulously sticking to the rules of sound criticism and to the patient collation of codices of the poet himself or his scholiast Mallinâtha.* The poem of Meghadûta is often one of the Sanskrit text-books appointed for the P. E. and F. A. Examinations. And hence a critical edition of it has long been a desideratum. That the Meghadûta has always been read very generally througout the country by students and Pandits of Sanskrit is amply testified by the large number of commentaries or glosses on it that are still extant. No less than twenty † have been explored and brought to light by the unceasing efforts of Government and many more may yet be found in course of time. I

* I had at first thought of giving a number of instances showing clearly wherein the Calcutta and other editions were not to be considered trustworthy, but the fact will be plain to any one who troubles himself to compare them with the present attempt at a correct edition and dispenses with the necessity of showing the defects of the Calcutta publications and their subsequent reprints at Bombay, which owing to their cheapness and superficial get-up must be allowed to do considerable service to the spread of Sanskrit studies, the only object I think that their editors had in view. Compare for example the commentary of the verses:— I. 1., I. 2., I. 4., I. 6., I. 9, I. 14-I. 16, I. 21, I. 22, I. 24, I. 25, I. 26, I. 28, I. 30, I. 32, I. 36, I. 37, I, 38, I 40, I. 41, I. 42, I. 43, I. 44, I. 45, I. 46. I. 47, I. 48, I. 49, I. 51, I. 53, I. 54, I. 55, I. 58, I. 59, I. 60, I. 61, I. 65, I. 67. II. 1, II. 2, II. 4, II. 6, II. 7, II. 8, II. 9, II. 10, II. 13, II. 14, II. 15, II. 16, II. 17, II. 20, II. 21, II. 23, II. 25, II. 26, II. 27, II. 28, II. 30, II. 31, II. 32, II. 34, II. 35, II. 36, II. 37, II. 38, II. 39, II. 40, II. 41, II. 42, II. 43, II. 44, II. 45, II. 48, II. 49, II. 51, II. 53, and II. 54. In fact in every verse there is some addition, omission or correction.

† 1. Mallinâtha, 2. Vallabha, 3. Mahimasinhaga*n*i, 4. Sumativijaya, 5. Lakshmînivâsa, 6. Megharâja, 7. Bharata, 8. Sanâtana, 9. Râmanâtha, 10. Haragovinda, 11. Kalyâ*n*amalla, 12. Sâroddhâri*n*i, 13. Meghalatâ, and four other Avachuries—all these consulted by myself; 18. Dakshi*n*âvarta and 19. Nâtha, referred to by Mallinâtha, Sâroddhâri*n*i, and other expositors. 20. Sarasvatitîrtha.

have myself made use of seventeen of them, five of which were sent to me from the India Office Library, and all the rest (except two) belong to the Government of Bombay for whom they have been partly bought by Dr. Bühler, Dr. Keilhorn, Dr. Peterson and partly by our distinguished Orientalist Dr. R. G. Bhandarkar.

Most of these commentaries or *Avachuries* would appear to have been composed not with the object of supplying a want but with a view to follow the time-honoured custom of writing a commentary on Kâlidâsa as a service to the poet and a duty of the writer. For a few of them hardly differ from each other in their explanations or in the number of quotations they give from the glossaries and other works of reference.

All these commentators or expositors so to speak are inferior in every respect to Mallinãtha. Dr. Bhandarkar places Mallinâtha in the end of the thirteenth and the beginning of the fourteenth century and this is the accepted date of the scholiast. *

Mallinâtha is the most popular and well known commentator on this poem. He has named his commentary *Sanjivini* 're-inspiring with life' since, as he says, he composed it for the purpose of "re-inspiring with life the speech of Kâlidâsa that was fainting under the trance produced by the poison of bad commentaries." This statement shows that he knew almost all the commentators that preceded his own. He actually names two older commentators, Dakshi*n*âvarta and Nâtha, and refers to some by the pronoun केचित् or अन्ये. What particular commentators he refers to is not clear but it is not improbable that he had before him while writing his own some of the Jaina writers mentioned under the Roman figure *one* of this preface. His commentary is surely one of the best being very moderate and at the same time very learned. The scholia of Mallinâtha appears in most instances very scrupulous as to preserving, as far as he could see and appreciate, the oldest and therefore most probably the original readings of the poet himself.

---

* See Dr. Bhandarkar's edition of Mâlatimâdhava, preface page XII., also our second edition of Raghuvamsa, p. 6.

It is a running commentary in which each word of the text is first repeated and then very accurately explained. As a rule, Vallabha, Mahimasinhagaṇi, and others have attempted to give satisfactory explanations and held short discussions in some places upon the dubious points pertaining to different questions of the text. But the commentary of Mallinâtha excels by far all the others both in point of scholarship and judgment. And excepting him none of the so many commentators notice the genuine merit of the author as a poet; namely his masterly command over the language, the fertility of his imagination, the harmonious flow of his expressions, his excellence in tenderness and delicacy, his highly poetic description, his admirable versatility, the vastness and profundity of his learning, his manner of interweaving in poetry impressive universal truth couched in the happiest expressions which are peculiarly his own and above all that poetic charm which exercises an almost magic influence upon the reader's mind; all which have combined to raise Kàlidása to the highest pinnacle of glory. Mallinâtha's commentary abounds in quotations from lexicons, from S'rutis, and Smṛitis, from Jyotish and Tantra, from Pâlakãpya on the art of training elephants and from शालिहोत्र, from various schools of grammar and rhetoric, from Vátsyàyana's Kámasûtra, from Apastamba, As'valàyana, Kámandaka, Bharata and Kshemendra, from dramatic works and Kâvyas, from Rámàyana and Mahàbhàrata, from numerous Purâṇas, Agamas and Akhyáyikas. In fact his commentary is replete with a great deal of information and innumerable quotations. The style is easy and the expressions are peculiarly his own. The text that Mallinátha had before him or considered as genuine is given in the present edition. That interwoven in Párs'vábhyudaya by Jinasena seems really to constitute a different redaction. My friend Mr. K. B. Pathaka who, I believe, is about to publish the text of the Meghadûta as given in Párs'vábhyudaya by Jinasensûri, thinks that that text is the only one which has some historical value, for it was the current text of Kâlidâsa's Cloud-messenger at the beginning of the ninth century

in the provinces of Karnatic, and hence the most genuine text of the immortal poet. The text commented upon by Vallabha, Sâroddhârini, Mahimasinhagani and others seems very little to differ, if at all, from the present one except that they do not, like Mallinâtha, discard the spurious verses and readings, almost all of which they notice as such, though in a manner far from disapproving.* The differences between our text on the one hand and that of the remaining several expositors on the other are somewhat considerable, though I do not find them to be so numerous as really to constitute a different redaction. They are, moreover, generally confined sometimes to single words or sometimes to groups of such words. A careful examination of the several commentaries has convinced me that a few only of the various readings have probably arisen from the ignorance of the scribes but they are mostly due to the unscrupulousness and the ignorance of the expositors and their desire to make the poet conform to their own ideas of what is good or bad, correct or incorrect, wise or unwise or decent or indecent, regardless of the historical worth of preserving the author's words or his expressions. In several passages I have actually found some commentators stating what is the reading of the poet and yet proposing to read †differently. Perhaps Mallinâtha is the only commentator on the poems of Kâ-

---

* See Sároddharini's commentary on the 11th stanza, उत्तरमेघः— "पत्रच्छेदैः इति पाठान्तरे नागवल्लीदलशकलैः &c." Many instances of such comments may be added from several commentaries at our disposal.

† Thus Sâroddhârini on the 11th verse, उत्तरमेघ; "मुक्तालग्नस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः" इति मुख्यः पाठः। "मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः" इति पाठान्तरं। But the reading which Sâro. has proposed for its text is as follows:—"मुक्ताजालस्तनपरिमलैश्छिन्नसूत्रैश्च हारैः" &c. And also the same on 40th verse, उत्तरमेघ; "पूर्वाशास्यम्:"-इति मूलपाठः *i. e.* Kâlidâsa's original reading. And the reading it has proposed for its text is:— "यतः कारणात् प्राणिनां स्पृहणीयेष्वपि पदार्थेषु एतदेव कुशलमेव "पूर्वाभाष्यम्" प्रथममाशंसनीयं" प्रथमं कुशलमेव प्रष्टव्यमित्यर्थः &c. Many more from Mahimasinhagani and others may be added to this.

lidâsa, that I have met with, having an ardent desire to find out and preserve as far as possible the readings of the poet himself, and studiously excluding the spurious substitutions of all single words and phrases, and the interpolations of whole stanzas with which the poem is seen overgrown in many codices; and it is no doubt owing to this his scrupulousness, that he is consulted most and that the other expositors are left in the shade and little known to the general public.

In the present edition the various readings as found in so many commentaries and commentators are given in the footnotes. From these various readings the public will also judge that the text that Mallinâtha has commented upon is generally the true text of the poet or at least most probably so. For even when the other expositors choose other readings, it is perhaps seldom that they do not notice those which we see form the subject of Mallinâtha's commentary. At the end of the volume I have given copious notes illustrative of difficult points of the text as well as the commentary of Mallinâtha. In these notes are embodied the extracts drawn from several commentaries and from various other sources. An attempt also is made in the notes to identify the geographical names of ancient countries, towns, rivers, mountains and important places as given by the poet in the पूर्वमेघ. From my experience as a teacher of Sanskrit for a period extending over the last eighteen years first in my Sanskrit classes and afterwards fourteen years in the New English School, I have found that Mallinâtha's commentary though a valuable assistance to young students requires, in some places explanations more clear and lucid in order that ordinary students may understand them. With this view I have attempted to give in the notes every possible information that the students may require for their examinations, and have added a literal English translation below the commentary of Mallinâtha in each page. At the end of the notes are given two indices one of which contains the spurious stanzas with their readings and the other the

names of important places &c. occuring in the पूर्वमेघ. I must not forget to mention that the spurious verses as given in the Appendix A. have all been commented upon by almost all these commentators except Mallinâtha.

I have also endeavoured to give the literal meaning of the text without mixing up Oriental and Western ideas in order to make them agreeable to the taste of Englishmen. This mode of translation has been adopted by Mr. Pickford in his admirable translation of Bhavabhûti's Mahâvîracharita, and ably defended by him in his learned preface to that work. I fully concur with him in the opinion that it is ridiculously absurd to expect idiomatic English in a version of a Sanskrit poem. He says, "We aften find a compound word in Sanskrit which cannot be rendered into English except by a long and intricate sentence with a dependent relative clause for each epithet and allusion. Moreover the frequent digressions and sudden transitions of Sanskrit compositions clearly mark them as alien from the thought and language of modern Europe. The canons which are with perfect fairness applied to modern versions of classical authors, are inadmissible with regard to translations from the Sanskrit." We must not therefore be surprised if such phrases as the "lotus-like face," "the moon-faced damsel," "limbs cool like a lump of snow," &c. excite the smiles of Englishmen unacquainted with Sanskrit. There are already some translations of the "Cloud-messenger" in English * in which the rendering is happy so far as English is concerned, but I venture to say that they do not, in many places, do justice to the beautiful pathos of the sentiments and expressions in which the poem, like all other poems of Kâlidâsa, abounds. The results of the labours of European scholars

* G. A. Jacob's prose translation and H. H. Wilson's verse translation are generally known to the public; there may be some other versions in English but they are little known in this part of the country.

to reveal the beauties of oriental poetic and dramatic literature, are to a certain extent, marred by the fact that they try to adorn the Hindu beauty with a foreign garb worn exactly after a foreign fashion. While in my endeavour to decorate the Aryan beauty although necessity has compelled me to invest her with a foreign dress I have retained but little of the foreign fashion, thereby enabling the beholder to realize her genuine charms. In the translation of the Meghadûta, therefore, that I present to the learned public, I have attempted to preserve the sense of the Sanskrit expressions without sacrificing it to the beauty of English phraseology. How far I have succeeded in this attempt I leave it to public to decide. I have, however, tried to make the translations brief and expressive. In undertaking the English translation I have been convinced of the real difficulties that lie in the path of rendering the thoughts of an ancient and now defunct race of writers into the language of another race, so unlike in their traditions, usages, custom and modes of daily life. The reason is to be found in the diffierence of national habits and associations. I have tried my best, with the aid of dictionaries, to make the English rendering a good one, but owing to the poverty of my knowledge of English have not entirely succeeded. The critical reader will notice many defects and short-comings, which hope, he will judge indulgently.

Before concluding I must thank the owners of the several MSS., who kindly placed them at my disposal. Among these gentlemen were the late lamented Bâbã Saheb Phadanavísa and Mahã Mahopãdhyâya Rãma Dikshita Apte by whose deaths their families have sustained a heavy loss. My thanks are also due to Mr. Sridhar S'âstri Limaye for allowing me the use of his MS.

My hearty thanks are also due to Mr. Vaman Daji Oka of Central provinces and Prof. S. B. Paranjape of the Rájàram

College, Kolhapur, both of whom kindly sent me the readings of some MSS. after having carefully collated them.

For the large number of MSS., which were placed at my disposal I am very highly indebted to Dr. R. G. Bhandarkar whose kind advice, and occasional instructions and the general sympathetic help are highly valued and acknowledged every where by every worker in the field of Sanskrit literature. Owing to this supremely eminent scholar's efforts, most valuable MSS. are being collected at the Deccan College library and it is to be hoped that the Indian Government will not, for several years to come, abandon the important work of buying up the Sanskrit manuscripts hidden away in private libraries and being therefore out of reach for outsiders; although our learned citizen Rava Saheb M. C. Apte has established a valuable institution for the custody and preservation of MSS., still Government efforts are equally necessary for this important work, mere publication of lists being often useless. The old S'ästris who may be deemed living encyclopedias of ancient scholarship are fast disappearing from the scene, and their industry on this point is long at an end. It behoves us, therefore, to take the charge and to preserve and collect the repositories of our national lore from decay and obscurity.

Lastly I take an opportunity of expressing my sense of deep gratitude towards my friends Prof. D. T. Chandorkar of Fergusson College, and Mr. K. G. Oka, Sanskrit teacher, New English School, for the material help they rendered when the book was in preparation. From these prefatory remarks it is now necessary to turn to the poet himself.

A SHORT DISSERTATION ON

Kālidāsa.

III.

Kalidāsa has been so to speak the darling of India for more than twelve hundred years. We obtain a documentary record* that even since so early as the seventh century A. D. his fame as an immortal poet has spread throughout the five divisions of India. His genius has been recognised and appreciated by poets and critics and admired by the literary public. †

* The Aihole inscription of Pulikesi II., (634 A. D.) has an allusion to Kàlidàsa:— "येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म । स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः" ॥ Ind. Ant., Vol VIII., p. 237. Another allusion is also found in Bana's introduction to his Harshacharita:—"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु । प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मंजरीष्विव जायते" ॥ Dr P. Peterson observes that "Bana's references to the younger poet, and to भास respectively, is that at the time he wrote the above verse Kálidása's plays had either not been written or were still far from occupying the prominent place in the nation's literature. Kàlidása was therefore either a contemporary of (Bána) or was his elder by little more than a generation." Preface to Bana's कादम्बरी, p. 81. The learned doctor afterwards changes his opinion as to the above remarks and says:— "I will say only in passing that I hope on some future occasion to show that what is true of Bhavabhûti is true of his great predecessor Kàlidâsa. If that is so, a vista of antiquity opens up for our book. For it is certain now that Kàlidàsa must be put earlier than has lately been very generally supposed. He stands near the beginning of our era, if indeed he does not overtop it, and date from the year one of Vikrama's era.' Jour. B. B. R. A. S. 1892., Vol. XVIII., p. 110.

† Another reference in chronological order to the great poet occurs in Kumarila's तंत्रवार्तिक, Benares edition, p. 133. "एवं च विद्वद्वचनाद्विनिर्गतं । प्रसिद्धरूपं कविभिर्निरूपितं । "सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु । प्रमाणमंतःकरणप्रवृत्तयः" इति ॥" This Kumarila, the bitterest foe of Jainism and Buddhism flourished between 700 and 750 A. D.; in other words he belongs to the first half of the eighth century. Jour B. B. R. A. S. Vol. XVIII. p. 225, 231 and 238. Also Jinasena's Pârs'vâbhudaya. Jour. B. B. R. A. S. Vol. XVIII. p. 224. MS. of the Kolhapur Jaina Matha. See also Malati-Madhava, Dr. Bhandarkar's edition A. II., p. 92. A. III., p. 106.

Numerous editions of his works have been printed; voluminous commentaries have been written; various translations in the different dialects of the country have been made. * All these things bear ample testimony to the affectionate zeal and loving care with which his works have been and are being studied. From the snowy Himalaya in the north to Cape Comorin in the south there is not a single educated man who has not read at least a canto of his poems or an act of his dramas or some stanzas from this beautiful episode, the all in all of the poet.

But his fame is not confined to his birth-land only, it has travelled to distant lands and foreign climates. His genius like a load-stone attracts at once every one who comes in contact with it. It has thus attracted the scholars and distinguished orientalists of Europe and America. He is now known partly through originals, and partly through the medium of translations to the whole civilized world. Along the banks of the Rhine and along the banks of the Thames he is at this day read with as much enthusiasm and delight as he is read on the banks of the Ganges or on the banks of the Godavari. This "son of song" has passed through the fiery ordeal of foreign criticism and has elicited admiration from the critics of Europe The lines of Goëthe,† that celebrated poet, philosopher and

---

* Dr. Bhau Daji's essay on Kàlidàsa, The Literary Remains, p. 2-5. Monier Williams's अभिज्ञानशाकुन्तल, 2nd edi. p. 7.

† Thus translated by Mr E. B. Eastwick:—" Wouldst thou the young years blossoms and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed,
Wouldst thou the earth, and heaven itself in one sole name combine? I name thee, O Sakuntalà! and all at once is said." Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidása, p. 1. Monier Williams says:— " No composition of Kàlidàsa displays more richness of his poetical genius, the exuberance of his imagination, the warmth and play of his fancy, his profound knowledge of human heart, his delicate appreciation of its most refined and tender emotions, his familiarity with the workings and counter-workings of its conflicting feelings,—in short, more entitles him to rank as the Shakespeare of India." V. K. Chiplunakar's Essay on Kálidása written in Marathi, p. 14.

critic of Germany of whom it may be truly said that he was a man of all times and of all climes, are well known to everybody; Alexander Von-Humboldt has appreciated 'the richness of his creative * fancy.' Prof. Lassen has called him 'the brightest star in the firmament of Indian artificial † poetry.' Sir William Jones who first introduced him to the notice of the literary public of Europe has conferred upon him the title of 'the Indian Shakespeare.' § M. Hippolyte Fauche has considered his Meghadûta to be without a rival in the whole elegiac literature of Europe. ‡

About a poet of such world-wide repute, we are naturally led to ask the following questions;— When was he born and when did he die? Who were his parents? What was his dwelling place? Who were his friends and what were his surroundings? How did he live and how did he think? But in the case of our poet, all such queries are vain. Our curiosity in this matter is doomed to disappointment. The details about which we anxiously solicit information are lost for ever, and are beyond the hope of recovery. The life of Kãlidãsa as of Shakespeare 'remains almost a blank and his very name a subject ¶ of contention'. About his private life absolutely no information that is trustworthy is available. The poet has observed a painful reticence regarding himself in his works. Throughout these, we fail to find even a passing allusion either to his own person or to any remarkable incident of his life. Nay he has not even affixed his name to his poetic productions. The evil

* "Kàlidàsa the celebrated author of the 'Sakoontala' is a masterly describer of the influence which Nature exercises upon the minds of lovers. Tenderness in the expression of feeling, and richness of creative fancy, have assigned to him his lofty place among the poets of all nations." *Alexander von Humboldt*. V. K. Chiplunakar's Essay on Kàlidàsa, p. 14. The Literary Remains or Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàs, p. 1

† Indische Alterthumskunde, ii. 49, 50, 398. Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, p. 2.

§ Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 5. V. K. Chiplunakar's Essay on Kálidása, p. 14.

‡ Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, p. 7.

¶ Dr Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, p. 5.

consequence has been that even the jingling rhymes of wretched poetasters, as the नलोदय* or ज्योतिर्विदाभरण for instance have been palmed off as the poet's productions. †Nor has any of his one thousand and one commentators (including the Brahmanas and the Jainas) deigned to afford us any clue to the elucidation of this problem. § The personal history of this immortal poet is thus involved in an impenetrable mist of obscurity.

Tradition, it is true, has handed down through a succession of ages certain stories and anecdotes about him; but they are so marvellous as to be opposed to all historic credibility. Facts and fables have been so strangely and inextricably interwoven, that it is imposible to disentangle the one from the other.

With regard to his date also we are in the same state of uncertainty as with regard to his personal history. Here also we are not on *terra firma*, but on the quick-sand of tradition. The accounts preserved by tradition are so inconsistent and contradictory, that they defy human credibility. For instance there is one tradition that says that Kálidàsa flourished in the reign of Vikramaditya 56 B. C. ‡ But there is another tradition which says

* At last our profound Sanskrit scholar Dr. R. G. Bhandarkar has found out the name of the author of नलोदय which has long been attributed to Kàlidàsa. He says:—"This is usually attributed to Kàlidàsa; but in this manuscript the name of the author is given as रविदेव son of नारायण. There are one or two manuscripts iu our collection in which also the same name occurs." Report on the search for Sanskrit Manuscripts, D. C. during the year. 1883—84. p. 16.

† Dr. Bhau Daji's Essay on Kalidasa. p. 10.; S. P. Pandit's edition of Raghuvamsa Vol., III. p. 29.; Dr. H. Kern's preface to बृहत्संहिता of Varàhamihira, p. 12.; Prof. Weber's History of Sanskrit Literature, p. 201.; and the notes thereon. Also on pages 260, 261, and 266 of the same. Prof. Max Müller's India what can it teach us, The renaissance of Sanskrit Literature, p. 281. and the notes thereon.

§ Dr Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 5.

‡ The word विक्रमादित्य signifies "The sun of valour", and was assumed by many kings of उज्जयिनी and of other kingdoms of India. Prof. Weber's History of Sans. Literature, p. 201 notes.

that he was patronisel by a king named Bhoja in the eleventh century. * Now it is impossible to reconcile these flagrant incon-

---

* Dr. Bhau Daji says:— Mr. Bently, on the authority of the भोजप्रबन्ध and the Ayin-i-Akbari, supposed the patron of learning to be the same as "Rájá Vikram, successor to Ràjá Bhoja", in the 11th century of the Christian Era. Col. Wilford and Mr. James Prinsep place Káidása in the 5th century, and Mountstuart Elphinstone adopts this date in his admirable History of India. In Gujaratha, Malva, and the Deccan, Kálidàsa is believed, chiefly on the authority of the भोजप्रबन्ध, to have flourished at the court of Bhoja, the nephew of Munja, at उज्जयिनी, in the 11th century of the Christian Era. There have been several Bhojas as well as Vikramas or Vikramádityas at उज्जयिनी the last Bhoja having flourished in the 11th century of the Christian Era; and to reconcile the two suppositions, it is necessary to suppose that the Vikrama or Vikramáditya at whose court the "nine" learned men flourished, was also styled "Bhoja." Dr. Bhau Daji's Essay, p. 6, 7.; Prof. Weber. says:— "But then, we know of a good many different Vikramas and Vikramádityas: and, besides, a tradition which is found in some modern works, and which ought surely, in the first instance, to have been shown to be baseless before any such conclusion was adopted, states expressly (whether correctly or not is a question by itself) that king Bhoja, the ruler of Malva, who dwelt at Dhàrà and Ujjayini, was the Vikrama at whose court the 'nine gems' flourished; and, according to an inscription, this king Bhoja lived about 1040—1090 A. D." Prof. Weber's History of Sanskrit Literature, p. 201—202 and the notes thereon; and see also the pages, 203. 215. 228. 230. 261. 319. of the same. Max Müller's India What can it teach us. p. 284 and the notes.; S. P. Pandit's edition of Raghuvans'a, part III., p. 30 note.: F. Hall's edition of वासवदत्ता, preface, pages 7, 8 and 9, foot-notes. p. 20. note of the same. Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता, pages 15 and 16. Life and Essays of H. T. Colebrooke, Essays Vol. II. p. 49. Wilson's Hindu Theatre, Vol. I. p. 185. Indian Antiquary, Vol I. 1872. p. 82, 83, 314—15. Indi. Anti. Vol. II. 1873. p. 58, 272, 297 and 302 foot-note. Ind. Ant. Vol. XII. 1883. p. 94, 230, 234, 291, 293, 294, 295. Ind. Anti. Vol. XI. p. 125. foo tnote. Antiquary. Vol. XVIII. Vikramàditya I. (Western Chàlukya); p. 285., 1889. Vikramàditya V. (West Chàlukya); he had the *biruda* of त्रिभुवनमल्ल, 275;—note on the period of his death, and on the पराक्रम् used in connection with his successor. p. 272—73. Vikramáditya VI. (West Chálukya); an inscription of शक—संवत् 998, which perhaps belongs to the beginning of his reign. p. 35. of the same volume. Indian Antiquary. Vol. XIX. 1890. Vikramàditya, a king men-

sistencies. Traditions unless corroborated by documentary evidence from independent sources are worthless and are not entitled to serious consideration. Of this, however, further on.

It is now a patent fact that India is wanting in chronology. The want of historic faculty is a defect in our national character. Through the influence and inspiration of western education, our minds are being awakened to a sense of this defect, and some of our men although very few in number, are engaged in antiquarian researches with the laudable desire of unveiling the past. But no success has yet been attained, commensurate to the extent of their hopes or the magnitude of their efforts. Vast numismatic and paleographic evidence has been brought to bear upon the date of Kãlidãsa; yet what may be said at the most about it, is that it has reached the region of probability but not of certainty.

Among antiquarians no unanimity exists upon this question of the date of Kãlidãsa. Their divergencies have been very remarkable. We shall try in this dissertation to discuss the various dates assigned to Kâlidâsa by them, and thus bring to a focus all the evidence bearing upon this point which has been hitherto collected by orientalists both at home and abroad.

I. M. Hippolyte Fauche supposes the poet to have lived at the time of the posthumous * child who is said at the end of the last canto of Raghuvans'a to have succeeded to the throne. This would place Kàlidása at the latest in the eighth century before Christ.

---

tioned in connection with प्रतापादित्य I.; कल्हण says he is not "the enemy of the S'akas (शकारि). p. 261 to 264 Vikramáditya I. (West Chálukya) p. 151 of the same. Vikramàditya II. (East. Chálukya) p. 435 of the same. E. H. D p. 41-45; 62—67; 74.

* Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, p. 7. S. P. Pandit's edition of Raghuvàmsa, part III., preface, p. 27-28. Jour. B. B. R. A. S. for 1861.

Against this date the following objections have been justly urged by Mr. Pandit in his edition of Raghuvams'a*:— (*a*) If Kálidása really lived in the reign of the posthumous child, we cannot suppose him to have described his ancestors and said nothing about the living king himself. (*b*) We do not know for certain that the nineteenth canto is the real conclusion of the poem. The end of the nineteenth canto is abrupt; the Raghuvams'a, unlike other works of the poet, does not end with a benedictory stanza. † Tradition says that there is a sequel to the 'History of the solar kings.' (*c*) From the fact that no more kings are described by Kàlidàsa it does not necessarily follow that no more kings had lived. Vish*n*u Purà*n*a mentions thirty seven princes to have lived after the voluptuous king Agnivar*n*a. §

Another very strong objection also, based upon style, may be legitimately urged against this date. It has been indisputably proved that Bhavabhûti belonged to the first decade of the 8th century A. D. ‡ Now if we would suppose Kálidása to have lived in the 8th century B. C. there would be a distance of 16 centuries between them.¶ Corresponding to this difference of time, there ought to be a considerable difference of style between the compositions of these two poets. The style of Kálidása ought to differ from that of Bhavabhûti as much as

* S. P. Pandit's Raghuvams'a, part III., preface, p. 28 and the foot-note.

† तं भावाय प्रसवसमयाकांक्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना ।
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा ॥

§ S. P. Pandit's edition of Raghuvams'a, part III., preface, p. 25.

‡ Dr. R. G. Bhandarkar's Report on the Search for Sanskrit MSS during the year 1883-84, p.15. Dr. Bhandarkar's edition of मालतीमाधवं, preface p. XII; Prof. Max Müller's India what can it teach us. p. 334.

¶ Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p. 200.

the Vedic differs from the classical. But no such marked difference is discernible. Almost the same spirit, the same manner of treatment, pervade the productions of both. The artificiality of diction which is observable in Bhavabhûti, will only justify us in supposing an interval of about six centuries at the most to have elapsed between him and Kàlidása.*

II. Sir William Jones places Kàlidása in the first century preceding the Christian era. † This date rests on no other foundation than that of tradition, which runs to the effect that there was once a king named Vikramàditya who after defeating the S'akas or Scythians established the Samvat era which commences 57 years before Christ. Kálidása was the

* In his History of Sanskrit Literature, p. 204 footnote, Prof. Weber says:—"In the Introduction to my translation of this drama, the Màlavikàgnimitra, I have specially examined not only the question of its genuineness, but also that of the date of Kàlidàsa. The result arrived at is, in the first place, that this drama also really belongs to him,—and in this view Sankar Pandit, in his edition of the play concurs. As to the second point, internal evidence, partly derived from the language, partly connected with the phase of civilisation presented to us, leads me to assign the composition of Kàlidása's three dramas to a period from the second to the fourth century of our era, the period of the Gupta princes, चन्द्रगुप्त, &c. "whose reigns correspond best to the legendary tradition of the glory of Vikrama, and may perhaps be gathered up in it in one single focus." Prof. Lassen has expressed himself to essentially the same effect. See *I. Ak.*, Vol. II. 457, 1158—1160; See also *I. St.*, Vol. II 148, 415—417." In his India what can it teach us, p. 301, footnote, Prof. Max Müller says:—"It seems almost impossible to give the opinions held by various Sanskrit scholars on the date of Kálidása, or on the dates of certain works ascribed to Kálidása, on account of their constantly varying opinions and the vague language in which they are expressed. Those who desire information on this point, may consult Professor Weber's Sanskrit Literature. That accomplished scholar seems to put Kàlidása's three plays between the second and fourth centuries A. D., the period of the Gupta princes, चन्द्रगुप्त, &c., see l. c., p. 204 note; but I am not quite certain that this is his real opinion."

† Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 6.

noblest of the nine men of genius who adorned the court of this Vikramàditya. A memorial verse gives the names of these nine gems as follows:—

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशंकु—
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायाम्
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥ *

Here there are involved three questions of great importance which, for clearness sake, we shall discuss separately. They are as follows:—

(*a*) Was there such a prince as Vikramàditya, the destroyer of Mlechchhas, the founder of the Samvat era, who reigned in the first century B. C.?

(*b*) Was there only one prince bearing the name of Vikramàditya † or was Vikramáditya a title simply assumed by various princes of different dynasties?

(*c*) Did the celebrated nine gems flourish in the court of that Vikramàditya who flourished in 56 B. C?

(*a*) The belief in a Vikramàditya of the first century before Christ rests upon tradition. But it is also confirmed

---

* S. P. Pandit's edition of Raghuvams'a, part III., preface pp. 28—29. Max Müller's India what can it teach us. pp. 328—29. Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, pp. 9—10. J. B. B. R. A. S. 1860, p 26. Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p. 200 and the notes on pages 260, 261 and 266 of the same. Dr. H. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp. 12—17. Wilson's trans. of विष्णुपुराण, ed. by F. E. Hall, preface p. VIII. footnote. Dr. Bhàndarkar's Early History of the Dekkan, pp. 41—46; 59—67; 74. Also see notes on page 34.

† Dr. H. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp. 14, 15, 16, 17 and 20. Pandit's ed. of Raghuvams'a, part III., preface, pp. 32-33. Prof. Weber's History of Sanskrit literature, pp. 201, 202, 205 and 228. Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidàsa, pp. 6, 8, 9, 18, 19 and 35. Prof. Max Müller's India what can it teach us. pp. 281, 282, 283 and 301. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता, p. 6. Alberûni's India. Vol II., chapter XLIX. p. 6.

by a *Patávali* composed by Merutungâchârya, a Jaina Pandit.* Merutunga says that 'after Nabhováhana, Garddabhilla ruled at Ujjayinî for 13 years, when *S'*rî Kâlikâchárya, † on account of violence offered to his sister Sarasvatî, uprooted Garddabhilla, and established *S'*aka kings in Ujjayinî. They ruled there for 4 years. Garddabhilla's son Vikramàditya regained the kingdom of Ujjayini, and having relieved the debt of the world by means of gold, commenced the Vikrama Samvat era. This took place 470 (453+17) years after Vîra's era. Vikrama's reign extended over 60 years. His son Vikramacharitra alias Dharmáditya ruled for 40 years. The next kings Bhàilla, Nàilla, and Náhada ruled for 11, 14 and 10 years respectively. The S'aka era now commenced 605 years after Vîra Nirvà*n*a.' §

From this extract of the Pa*t*ávali, it will be seen that there was a king named Vikramáditya who reigned 135 years ‡ before the commencement of the S'aka era.

There are some antiquarians who doubt the existence of this prince. They say that there is absolutely no documentary evidence whatever for the existence of such a prince as Vikramáditya in the first century B. C. ¶ Mr. Fergusson ₰ has started the bold theory that what is called the era of Vikramàditya 56 B. C. was a date arrived at by taking

* The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, pp. 129—142.

† For the full account of this कालिकाचार्य or कालकाचार्य see 'The Literary remains of Dr. Bhau Dàji'. p. 120.

§ The Literary remains of Dr. Bhau Daji, pp. 131, 132, and 133.

‡ The Literary remains of Dr. Bhau Daji. p. 132.

¶ Dr. H. Kern, Prof. Weber, Prof. Max Müller, Dr. Bhau Daji and other orientalists hold this opinion. The Literary remains of Dr. Bhau Daji. p. 9.

₰ Journal of the Royal Asiatic Society, 1880. On the *S'*aka Samvat, and Gupta Eras; a Supplement to his paper on Indian Chronology, 1870.

the date of the great battle of Korur * in which Vikrama Harsha of Ujjayini finally defeated the Mlechchhas in 544 A. D. and by throwing back the beginning of the new era 6×100 (or 10×60) before that date *i. e.* 56 B. C. Prof. Max Müller praises the architectonical genius of Mr. Fergusson and thinks that his theory will at last turn out to be correct. † Why, however, 600 years were added to the new era by Vikramáditya is beyond the ken of Mr. Fergusson. 'Nothing short of a contemporaneous document dated less than 600 of the Vikrama era, would upset Mr. Fergusson's

---

* Prof. Max Müller says that 'this battle of Korur is described by Albiruni in his account of the *S*aka era:—

'The *S*aka era,' he writes, 'called by the Indians शककाल, is posterior to that of Vikramáditya by 135 years. *S*aka is the name of a prince who reigned over the countries situated between the Indus (Dr. Bhau Daji, J. B. B. R. A. S. VIII., p. 242, 1864) and the sea. His residence was in the centre of the empire, in the country named आर्यावर्त.

The Indians represent him as born in another class than that of the *S*àkyas; some pretend that he was a शूद्र and a native of the town of Mansûra (Bahmanabad). There even some who say that he was not of the Indian race, and that he was born in Western countries. The people had much to suffer from his despotism until they received aid from the East. Vikramàditya marched against him, put his army to flight, and killed him in the territory of Korur, situated between Multan and the castle of Luny (in the Panjàb?). This epoch became celebrated by the joy which the people felt at *S*aka's death, and it was selected for era, principally by astronomers. On the other hand, Vikramàditya received the title of श्री, on account of the honour which he had acquired.' But Albiruni adds that the date of the reign of this Vikramáditya does not allow us to indentify him with the prince of the same name who ruled in Málvá. This battle of Korur may be the same as that of Multan, mentioned by Táránàtha, 'श्रीहर्ष abolished the teaching of the Mlechchhas by massacring them at Multan. असंग and वसुबन्धु were his contemporaries (900 p. B. N.); his predecessor was called गंभीरपक्ष, his successor शील. Ind. Ant. 1875, p. 365. Max Müller's India what can it teach us. p. 282. Alberuni's India, Vol. II. chapter XLIX. p. 6.

† Prof. Max Müller's India what can it teach us. pp. 281—82. Prof. Weber's History of Sanskit literature, p. 203 footnote.

theory' says Max Müller. * The Kãvî inscription † discovered by Dr. Bühler which gives the date 430 of the Vikrama Samvat for its grantor Jayabhaṭa does not satisfy the Professor who strongly criticises it in his 'India, what can it teach us.' § But the several objections raised by him against the date given in that inscription ‡ have been fairly refuted by Dr. Fleet. 'Whatever may be the case', continues Dr. Fleet, 'as regards the reading of the second numerical symbol and the computation of the details of the date, the fact remains that the first numerical symbol is undoubtedly 400 and that we have here a date which can only be referred to the fifth century of the Vikrama era'. ¶ And further on he gives a short summary of the arguments about the theory of the Gupta-era and Vikrama-era of Mr. Fergusson, and says that 'as regards the Gupta era, Mr. Fergusson took this opportunity of recording his impression (*id.* p. 285) that his view of it "would never have been considered doubtful, had it not been that the chronology of that period had hitherto been based almost exclusively on numismatic researches." And, in repeating his conviction (*id.* p. 281) that the commencement of the era was in A. D. 319, and (*id.* p. 270) that it was established in the reign of the आंध्र king गोतमीपुत्र, he also now maintained (*id.* p. 271) that the era did not necessarily date from the accession of the king, or from his death, or from any specific event in his reign, but

* Prof. Max Müller's India what can it teach us. p. 284.

† Indian Antiquary, 1876, p. 152. Prof. Max Müller says that 'Prof. Bühler's remark has not escaped me; but here again the reading of the figures is very doubtful, see Fleet, Indian Antiquary, 1876, p. 68, and Prof. Bühler himself admits now that there is no Samvat date on that plate.' Max Müller's India what can it teach us. p. 286, footnote.

§ Max Müller's India what can it teach us. p. 286.

‡ Indian Antiquary, 1876, p. 152.

¶ Indian Antiquary. Vol. XII. 1883. p. 293.

that, in order that dates in the new era might be easily convertible into the old era, the commencement of the new era was simply fixed by the expiration of four of Jupiter's Sixty—Year Cycles from the commencement of the *S'*aka era.

In respect of his theory that the *S'*aka era was established by कनिष्क, and of some others of his general results, I see no reason, at present, to dispute them, apart from the arguments on which they were based. But a few words seem necessary, in connection with the key-note to his whole paper, which is plainly to be recognized in his desire to find for the Vikrama era some origins other than its actual esablishment in B. C. 57, and, according to tradition, by a king Vikrama or Vikramáditya, actually reigning at that time. He had already thrown out this suggestion in his previous paper. And now he claimed that, granting the correctness of his other con--clusions, there could be found (*id.* p. 271) no direct evidence for the existence of a Vikrama era in the first century, B., C., nor for a very long time afterwards; for so long, in fact that it was impossible to establish any connection between a king Vikrama and the original establishment of the era. Referring to two passages in the राजतरंगिणी, one of which * speaks of प्रतापादित्य, who was brought from another country to be crowned king of Kás'mîra, as a kinsman of a king Vikramáditya who, the book states, was wrongly thought by some to be the *S'*akári or 'enemy of the *S'*akas', and the other of which † states that, at the time of the death of

* अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥ ६ ॥
शकारिर्विक्रमादित्य इति संभ्रममाश्रितैः *Ràjatarangini.* II. 6; p. 15.
अन्यैरत्रान्यथालेखि विसंवादि कदर्थितं ॥ ७ ॥ Calcutta edition.

† राज्ञित्वा दशमासोनाः क्ष्मामेकत्रिंशतं समाः ।
तस्मिन्क्षणे हिरण्योऽपि शांतिं निःसंततिर्ययौ ॥ १२५ ॥
तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ १२६ ॥

Hiranya of Kás'míra, there reigned at Ujjain a powerful king Vikramáditya, who had the second name of Harsha, and who also had destroyed the *S*'akas; and quoting also Albêrûnî's explanation that the Vikramáditya who, according to the tradition given to him, conquered the *S*'akas a hundred and thirty-five years after the establishment of the Vikrama era, could not be identical with the founder of that era,—the conclusions at which he arrived were (*id.* p. 274) that the Vikramáditya who conquered the *S*'akas at the battle of Karûr, was हर्षविक्रमादित्य of Ujjain; that his death took place about A. D. 550, and the battle of Karûr, in A. D. 544; that, about or before A. D. 1000, when "the struggle with

---

भूपमद्भुतसौभाग्यं श्रीर्बद्धरभसाभजत् ।
विहाय हरिबाहूंश्च चतुरस्सागरांश्च यं ॥ १२७ ॥
लक्ष्मीं कृत्वोपकरणं गुणा येन प्रवर्धिते ।
श्रीमत्सुगुणिनोऽद्यापि तिष्ठंत्युद्धतकन्धराः ॥ १२८ ॥
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः ।
शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघुः कृतः ॥ १२९ ॥
नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् ।
तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सभास्थानस्थमासदत् ॥ १३० ॥

Hiranya also, after having governed the country during thirty-one years less ten months, died without leaving posterity. 125. At the same time, the Srî nat Vikramáditya, other-wise called Harsha, ruled in उज्जयिनी, as Emperor of all India. 126.

The goddess Srî served this king, who was blessed with unusual happiness, by attaching herself to him with pleasure, having, for him, abandoned the arms of Hari and the four Oceans. 127.

Making use of wealth as a means (of usefulness), he made the virtues flourish; and thus, till this day, men of talent sit with their heads high in the midst of rich people. 128.

Having first destroyed the Sàkas, he made easy the burden of the work to Hari, who was to descend to the earth to exterminate the Mlechchhas. 129.

The Kavi, named मातृगुप्त, went to see the lord of the world whose fame had extended to distant countries, and who was then seated in the midst of an assembly of accomplished men, to whom he was always accessible. 130.

Ra'jatarangini. III. 125—130. p. 26.
Calcutta edition.

the Buddhists was over, and a new era was opening for the "Hindu Religion," the Hindus sought to establish some new method of marking time, to supersede the Buddhist *S'*aka era of कार्निष्क; that, the Guptas and the kings of Valabhi having then passed away, and having also been insignificant and of doubtful orthodoxy, in looking back for some name and event of sufficient importance to mark the commencement of a new era, they hit on the name of Vikramáditya, as the most illustrious known to them, and his victory at Karûr as the most important event of his reign; and that then, since the date of that victory, A. D. 544,–was too recent to be adopted, they antedated the epoch by ten cycles of sixty years, thus arriving at B. C. 56 for their Vikrama era, and also, not content with this, devised another era, which they called the Harsha era, from the other part of his name, and the epoch of which was fixed in B. C. 456, by placing it ten even centuries before the date of the battle of Karûr. It is an actual fact, that the name of Vikrama does not occur in connection with the era of B. C. 57 until a comparatively late date. * But Mr. Fergusson's arguments are vitiated throughout by the undue reliance which he placed on the quasi-historical records of the *Ràjatarangini.* The early chronology of Kás'mîra has still to be fixed; and the means of adjusting it are to be found in A. D. 533 as the date of Mihirakula, who, according to the book itself, reigned in the eighth century. B.C. And, if the date of Harsha-Vikramàditya of Ujjain is really dependent on the date of Hira*n*ya of Kás'mîra, it certainly

* I am not prepared, observes the learned doctor, to specify the exact date. But the 'Gyàraspur' or 'Gyárispur' inscription (*Archaeol. Surv. Ind.* Vol. X. p. 33. and Plate XI.) shows that the era was still known as the Málava era, in central India, down to about A. D. 880.

cannot be placed as early as the sixth century A. D.' * And, after having taken a brief résumé of results of the work of preceding investigators such as Dr. Oldenberg, Mr. Thomas, Sir E. Clive Bayley, General Cunningham, Dr. R. G. Bhandarkar and Dr. A. F. R. Hoernle, the learned doctor arrives at the following conclusion. He says:—

The Mandasôr Inscription of Màlava-Samvat 529 †

" The summary that I have given above will show sufficiently well the curious ingenuity that was displayed from time to time, in aiming at any settlement of the question rather than the correct one; and also the insufficiency of the arguments used in support of the true solution, even by those who perceived it.

---

* Corpus Inscriptionum Indicarum. Vol. III. Introduction. p. 55—56.

† मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये ।
त्रिनवत्यधिकेऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने ॥ १९ ॥
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे ।
मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः ॥ २० ॥
बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः ।
व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना ॥ २१ ॥
स्वयशोवृद्धये सर्वमत्युदारमुदारया ।
संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतो गृहम् ॥ २२ ॥
अत्युन्नतमवदातं नभःस्पृशन्निव [नभःस्पृशदिव] मनोहरैः शिखरैः ।
शशिभान्वोरभ्युदयेष्वमलमयूखायतनभूतम् ॥ २३ ॥
वत्सरशतेषु पंचसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु ।
यातेष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायाम् ॥ २४ ॥
स्पष्टैरशोकतरुकेतकसिंदुवार-
लोलातिमुक्तकलतामदयन्तिकानाम् ।
पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-
मैक्यं विजृंभितशरे हरपू [धू] त देहे ॥ २५ ॥
मधुपानमुदितमधुकरकुलोपगीतनगणैकपृथुशाखे ।
काले नवकुसुमोद्गमदंतुरकान्तप्रचुररोध्रे ॥ २६ ॥
शशिनेव नभोविमलं कौस्तुभमणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।
भवनवरेण तयेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारम् ॥ २७ ॥

But of course it may be claimed that, as long as M. Reinaud's translation of the statement regarding the circumstances under which the era of A. D. 319-20 or thereabouts was established, remained without correction, there was something to be said from the point of view that we had to deal with a mistake made by Albêrûnî, laying in a confusion between a true Gupta era, anterior to A. D. 319, used by Early Gupta kings themselves, and another Gupta era, or more properly a Valabhî era, with an epoch of A. D. 319-20 or thereabouts, established, whether used or not by some member of the Valabhî family; and that he was right in respect of the historical event, from which, as he appeared to assert, this latter era took its origin. And, in default of definite evidence, settling the question

—when by (*the reckoning from*) the tribal constitution of the Mâlavas four centuries of years, increased by ninety-three, had elapsed; in that season when the low thunder of the muttering of clouds is to be welcomed (*as indicating the approach of warmth again*);–on the excellent thirteenth day of the bright fortnight of the month सहस्य (पौष), this temple was etablished, with the ceremony of auspicious benediction.—And, in the course of a long time, under other kings, part of this temple fell into disrepair; so now, in order to increase their own fame, the whole of this most noble house of the Sun has been repaired again by the munificent corporation;—(this temple) which is very lofty (*and*) pure; which touches the sky, as it were, with (*its*) charming spires; (*and*) which is the resting-place of the spotless rays of the moon and the sun at (*their*) time of rising. Thus, when five centuries of years, increased by twenty, and nine years had elapsed; on the charming second lunar day of the bright fornight of the month तपस्य (फाल्गुन);—in the season when (कामदेव), whose body was destroyed by Hara, develops (*his number of five*) arrows by attaining unity with the fresh bursting-forth of the flowers of the अशोक and केतक and सिन्दुवार trees, and the pendulous अतिमुक्त creeper, and the wild jasmine;–when the solitary large branches of the नगण bushes are full of the songs of the bees that are delighted by drinking the nectar; (*and*) when the beautiful and luxuriant रोध्र trees swing to and fro with the fresh bursting forth of (*their*) flowers,—the whole of this noble city was decorated with (*this*) best of temples; just as the pure sky is decorated with the moon, and the breast of (the god) शार्ङ्गिन् with the कौस्तुभ jewel.

one way or the other, perhaps the strongest argument against the views held by Mr. Thomas, General Cunningham, and Sir E. Clive Bayley, was to be found in the following anomalous position, which had occasionally been noticed more or less directly, but had never been disposed of. It was held by all that the Valabhî family came immediately after the Guptas. It was also held that in A. D. 318 or 319, some member of this family founded the city of Valabhî; and, in commemoration partly of that event, and partly of the Gupta rule having then ceased and the power having passed into his own hands, established the Valabhî era dating from then. And yet,—as it proved by, amongst other things, the fact that भटार्क, the founder of the family, came only one generation before the year 207, the earliest date that we have in the era used in their own charters,– the founder of this era, and his successors, did not allow this era of their own, established under such memorable circumstances to supersede the Gupta era; but continued the use of the Gupta era for, in accordance with the three earlier starting-points given on page 32, f. above, respectively 205, 294, and 318 years at least, (as is shown by the Alînâ grant of शिलादित्य VII., dated in the year 447), after the establishment of their own era! This surely involves an improbability far greater than any other, of whatever kind, that can be imagined in connection with the whole subject.

In order to arrive at any prospect of a final settlement of the question, what was wanted was a date for one of the Early Gupta kings, recorded in some era, capable of identification, other than that which was specially used by them in their own inscriptions. This has now, at length, been found in my new Mandasôr inscription, which, composed and engraved when the year 529 had expired from tribal constitution of the Màlavas, gives us, through his feudatory बन्धुवर्मन्, the date of the year 493, expired, of the same era, for कुमारगुप्त.

This was not the first instance that had been obtained of the use of this era, which may for convenience be called the Málava era. For, it is obviously identical with the era which is alluded to in the कणस्व inscription * dated when the 795th year of the Málava lords had expired; and is also mentioned, under the specific name of the Málava-Kála, *i. e.* 'the Málava era', or 'the time of the Málavas', in a fragmentar inscription at 'Gyáraspur' or 'Gyárispur' in Central India, dated when the 936th year had expired.† But though, in commenting on this latter inscription, General Cunningham expressed the opinion § that this Málava era must be the same as the era of Vikramáditya of Ujjain, commencing in B. C. 57, this point has not hitherto been capable of proof; for the reason that neither of

---

* Edited by Dr. Kielhorn in *Ind. Ant.* Vol. XIII. p. 162. ff. The date (from the published text; p. 164 f.; line 14 f.) runs —"संवत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः सप्ताभिर्मालवेशानां मंदिरं धूर्जटेः कृतम्,"—"(in the year that is denoted) by seven expired centuries of years, coupled with ninety-five, of the Malava lords, (this) temple of (the god) धूर्जटि has been made."

† *Archaeol. Surv. Ind.* Vol. X. p. 32 f., and Plate XI. The date, part of which is broken away, (from the Plate) runs:—"मालवकालाच्छरदां षट्त्रिंशत्संयुतेष्वतीतेषु नवसु शतेषु,—when nine centuries of autumns, joined with thirty-six, have gone by, from (the commencement of) the Málava era (or, from the time of the Málavas)."—The counting of the era by autumns is followed also in line 21 of the Mandasôr inscription of यशोधर्मन् and विष्णुवर्धन, of Màlava Samvat 589 expired, No. 35, page 150. And it is worth noting, as being one of the points which identify the Málava era with the Vikrama era. It can hardly be doubted that the original scheme of the Vikrama years is the one commencing with the first day of the bright fortnight of कार्तिक (October-November). And कार्तिक is still the second month in the Hindu autumn according to the usual division of the six seasons. It seems, however, to be more properly the first autumn month, according to the true southern division of the seasons. And it appears also to have been the first month of a season, when the year was divided, in ancient times, into only three seasons.

§ *Archaeol. Surv. Ind.* Vol. X. p. 34.

these two dates gave sufficient details for actual computation, or any other available grounds for historical identification. Nor does the Mandasôr inscription, now brought to notice, furnish any details for calculation. But in its mention of कुमारगुप्त, it answers the purpose equally well.

Turning to the Gupta inscriptions and coins, the earliest and latest dates that we have for कुमारगुप्त, are, respectively, Gupta–Samvat 96 and 130 odd. The first is established by his well known Bilsaḍ pillar inscription, No 10, page 42; and the latter, by one of General Cunningham's coins.* Lest, however, the coin-date should be looked upon as at all doubtful, we must note also his मंकुवार inscription, No. 11, page 42, dated Gupta-Samvat 129. And, of these extreme dates, we may take Gupta Samvat 113 as the mean.

Applying this mean year to the various theories regarding the epoch of the Gupta era, it represents— (1) according to Mr. Thomas, A. D. 190–91; (2) according to General Cunningham, A. D. 279–80; (3) according to Sir E. Clive Bayley, A. D. 303–304; and (4) according to my own view, A. D. 432–33.

Next, applying to these figures the date of Màlava-Samvat 493 expired, recorded for कुमारगुप्त in the inscription under notice, we find that the initial point of the Mãlava era must lie within a few years on either side of— (1) B. C. 301; (2) B. C. 214; (3) B. C. 190; and (4) B. C. 61–60.

The first three results, however, each entail the supposition of a brand-new era, hitherto unheard-of, and entirely unexpected. At the same time, as regards the second possible result of about B. C. 214, we must not overlook the existence of certain coins, found in large numbers at नागर in the north of Málavá, about forty-five miles north of कोटा, and originally brought to notice by Mr. Carlleyle, † which have on them the legend मालवानां जयः,

* *id* Vol. IX. p. 24, and Plate V. No. 7.

† *id.* Vol. VI. pp. 165 f., and 174 ff.; see also *id.* Vol. XIV. p. 149 ff, and Plate XXXI. Nos. 19 to 25.

"the victory of the Màlava," in characters ranging, in General Cunningham's opinion, "from perhaps B. C. 250 to A. D. 250." These coins show that the Málavas existed, as a recognised and, important clan, long before the time when, as I consider, their "tribal constitution," which led to the establishment of their era, took place; and so also, in the other direction, does the mention of them in the Allâhâbâd pillar inscription, among the tribes subjugated by समुद्रगुप्त, show that, down to his time at least, they maintained tribal constitution and importance. And, if we were compelled to have recourse to a new era, these coins might justifiably induce us to select, as its epoch, B. C. 223, the date fixed by General Cunningham for the death of अशोक *; which would make the date of Málava-Samvat 493 correspond with A. D. 270, or well on into the first decade of Kumára-gupta's reign according to General Cunningham's theory. But this entails, as I have said, the supposition of the existence of an era, of which not the slightest indication has ever yet been afforded by the very numerous inscriptions that have now been examined from all parts of the country; and this is an expedient that must by all possible means be avoided. And, further, it forces the कणस्व inscription of Málava-Samvat 795, and the 'Gyáraspur' inscription of Málava-Samvat 936, back to respectively A. D. 572 and 713; periods to which, from their alphabets, they cannot possibly belong. And thus,— since, within certain limits, palæographical evidence must be followed,— it creates a palæographical difficulty that is insuperable. So also does the third result, to practically the same extent; and the first, to a still more marked degree.

The fourth result, on the contrary satisfies all the palaeographical requirements of the case. And it brings us so very close to B. C. 57, the commencement of the well known Vikrama era,—which, by the tradition of later times, is closely connected with the country of the Málavas, through the name

---

* *Corp. Inscr. Indic.* Vol. I. Preface. p. VII.

of its supposed founder, king Vikramáditya, whose capital, Ujjain, was the principal city in Màlvà,—that we are compelled to find in it the solution of the question, and to adjust the equation of the dates thus,—Gupta-Samvat 113 (the mean date for कुमारगुप्त)+A. D. 319-20=A. D. 432-33; and Màlava-Samvat 493—B. C. 57-56=A. D. 436-37; which, of course, falls well within the seventeen years of Kumaragupta's reign, remaining after this mean date.

My new Mandasôr Inscription, therefore, proves—(1) that any statement by Albêrûnî that the Early Gupta power came to an end in or about A. D. 319, must certainly be wrong;—(2) that, on the contrary, Kumáragupta's dynastic, dates,-and, with them, those of his father Chandragupta II., and his son Skandagupta, which belong undeniably to the same series; and also any others which can be shewn to run uniformly with them,—must be referred to the epoch of A. D. 319—20, or thereabouts, brought to notice by Albêrûnî and substantiated by the वेरावल inscription of Valabhî—Samvat 945;—and (3) incidentally, that, under another name, connecting with the Málava tribe, the Vikrama era did undoubtedly exist anterior to A. D. 544, which, as we have seen, at page 55 above, was held by Mr. Fergusson to be the year in which it was invented. These results are, of course, independent of the question whether the Early Guptas established an era of their own, with the abovementioned epoch, or whether they only adopted the era of some other dynasty.

The Determination of the exact epoch of the era. I have shewn, so far, that the Early Gupta dates, and with them, any others that can be proved to belong to the same uniform series, are to be referred to the epoch of A. D. 319—20, or thereabouts, brought to notice by Albêrûnî

and substantiated by the Verâwal inscription of Valabhî-Samvat 945.

It now remains to be shewn why, out of the three possible epochs of A. D. 318–19, 319–20, and 320–21, current, which appear, at first sight, to be deducible from Albêrûnî's statements, we have to select, as the true and exact epoch, that of A. D. 319–20, equivalent to S'aka-Samvat 241 expired. This point is one that can be settled only by accurate calculations of the recorded dates, explained in detail, so that it may be seen that the process applied is satisfactory, and that the inferences drawn are correct.' *

Thus, then, Mr. Fergusson's theory collapses and the tradition upon which our belief in the Vikramàditya of the first century B. C., really rests, is in this instance corroborrated by a fact.

(*b*) With regard to the second question it may be observed that there were many Vikramàdityas, not one only. For instance, the *Ra'jatarangini* makes mention of two Vikramàdityas, who were the rulers at Ujjain. The first Vikramáditya is referred to as having placed Pratàpádityà one of his relatives, † and the second who flourished about 276 years after the first, as having placed मातृगुप्त, a great poet, upon the throne of Kásmîra. § The *Ra'jatarangini* mentions a third Vikramàditya also, who, it is

---

* Dr. Fleet's *Corpus Inscriptionum Indicarum* Vol. III. pp. 65 to 69.

† *Ra'jatarangini*, II. line 6; page 15, Calcutta edition. See also the note on page 35. Corpus Inscriptionum Indicarum. Vol. III. Introduction, page 55. Dr. Kern's Perface to बृहत्संहिता. pp. 7. 8 and 14.

§ इति निश्चित्य चतुरं क्षपायामेव पार्थिवः ।
गूढं व्यसर्जयद्दूतान् काश्मीरीः प्रकृतीः प्रति ॥ १८९ ॥
आदिदेश च तान् यो वा दर्शयेच्छासनं मम ।
मातृगुप्ताभिधो राज्ये निःशंकं सोऽभिषिच्यताम् ॥ १९० ॥
अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः ।
सन्निपत्य प्रकृतिभिर्मातृगुप्तोऽभ्यषिच्यत ॥ २४२ ॥

determined, ruled over Kás'mira about 592 A. D. * Vikramàditya was also a title assumed by many princes of the Chálukya Dynasty. †

c. But the third question is really germane to our present subject. Granting that a Vikramàditya, the enemy of the *S'*akas, flourished in the first century B. C., and was also the founder of the Samvat era, is there any authority or a documentary evidence other than the tradition to show that the celebrated nine gems flourished in the court of this Vikramàditya? The only work that connects the *Navaratnas* with the Vikramàditya of the

---

Having taken this firm resolution, the King secretly sent messengers that very night to the Council of Kásmira.

And the following order, viz:—"Let the person named मातृगुप्त, as soon as possible after he shows you this order, be installed king of Kàsmîra.

Then मातृगुप्त was placed upon a magnificent seat of gold facing the east, and being surrounded by the principal authorities, he was installed King with the usual ceremony.

Ra'jatarangini, III. pp. 28, 30. Calcutta edi. Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidàsa, p. 38. Dr. Max Müller's India what can it teach us. p. 313. Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता p. 7. Rev. T. Foulkes of Bangalore also mentions a King named विजयबाहु alias Vikramáditya II., of the Bàna dynasty who ruled over the western region of the आंध्र country. The name occurs in the copper-plate inscriptions of a grant of land to certain learned Bráhmanas of उदयेंदुमंगल. Indian Antiquary, 1884. Vol. XIII. p. 6. See also Indian Antiquary, 1872, Vol. I. p. 245.

* विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृत्सुतः ।
तस्यासीद्विक्रमादित्यस्त्रिविक्रमपराक्रमः ॥
राजा ब्रह्मगलूनाभ्यां सचिवाभ्यां समं महीं ।
सोऽपासीद्वासवसमो द्वाचत्वारिंशति समाः ॥
चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा गलूनोलूनदुष्कृतः ।
रत्नावल्याख्यया बध्वा विहारं निरमापयत् ॥

Ra'jatarangini, III., p. 38. Calcutta edition.

† See notes on page 35. Dr. Bhandarkar's Early History of the Dekkan, pp. 59 to 67; and the Genealogy of the Chàlukya family given in page 74 of the same.

first century B. C. is the ज्योतिर्विदाभरण * bearing the name of Kâlidâsa as its author. But Dr. Bhau Daji has well shown that the work is not the production of the author of the Raghuvans'a.† Râva Bahadur S. P. Pandit calls it a pretty Jaina forgery.§ Dr' Hall believes it to be not only pseudonymous, but of recent composition; ‡ and Dr. Kern concurs in his opinion. ¶ The tradition that nine gems flourished at the court of a Vikramáditya is true, because it is confirmed by an inscription found at Buddha Gayá, ☙ a translation of which is given by Ch. Wilkins;

* See notes on page 39.

† Dr. Bhau Daji's Essay on Kalidása, p. 12.

§ Pandit's edition of Raghuvansa, part III., preface. p. 29.

‡ Wilson's translation of विष्णुपुराण, edited by Dr. F. E. Hall, preface p. VIII. footnote.

¶ Dr. H. Kern's preface to बृहत्संहिता, p. 12 and p. 17.

☙ History of Sanskrit Literature, p. 228; Prof. Weber says that 'this tradition is distinctly contradicted, in particular, by a temple-inscription discovered at बुद्धगया, which is dated 1015 of the era of Vikramáditya (*i. e.* A. D. 949), and in which अमरदेव is mentioned as one of the 'nine-jewels' of Vikramà's court, and as builder of the temple in question. This inscription had been turned to special account by European criticism in support of its view; bnt Holtzmann's researches (*op. cit.* pp., 26–32) have made it not improbable that it was put there in the same age in which Amarasinha's dictionary was written, seeing that both give expression to precisely the same form of belief, a combination, namely of Buddhism with Vishnuism—a form of faith which cannot possibly have continued very long in vogue, resting as it does on a union of directly opposite systems. At all events, inscription and dictionary cannot lie so much as 1000 years apart,—that is a sheer impossibility. Unfortunately this inscription is not known to us in the original, and has only survived in the English translation made by Ch. Wilkins in 1785 (a time when he can hardly have been very proficient in Sanskrit!): the text itself is lost, with the stone on which it was incised.' Max Müller's India what can it teach us. p. 327. Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता, p. 18–19. Asiatic Researches, Vol. I., p. 284. Dr. Fleet, in his Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III p. 274, gives a Bodh-Gayâ inscription of Mahànáman, the year 269. "संवत् २००+६०+९ चैत्रसुदि ७ ॥" The year 200 (and) 60 (and) 9; (the month) Chaitra; the bright

but the tradition that that Vikramáditya was the same as the Vikramáditya the founder of the Samvat era, is without any foundation in fact.

The objection based upon the style which was raised against the first date, also holds good in this case.

III. Mr. Bentley on the authority of the Bhojaprabandha composed by one Ballàlamis'ra supposed the patron of learning to be the same as Rájá Vikrma successor to Rájá Bhoja in the 11th century of the Christian era. *

Now although we may not concur in the opinion of Ráva Bahàdur Pandit that the Bhojaprabandha is a silly medley of absurd anachronisms, † still we must bear in mind that there were many princes who bore the title of Bhoja; § besides that the kings of Ujjayini might have been styled Bhojas‡ as Ferishtah, does call S'iladitya Pratàpas'ila by that name.¶

---

fortnight; the day 7. He says that 'the date of the present inscription has to be referred to the Gupta era, with the result of A. D. 588–89.' See also the 68th page of the same.

* Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidása p. 6.

† S. P. Pandit's edition of Raghuvansa part III; preface p. 30. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता, p. 7. *and the foot notes.*

§ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 7. Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp. 15, 16 and 20. Max Müller's India what can it teach us pp. 284, 321 *note*, 331 *note*. Prof. Weber's History of Sanskrit Literature, pp. 195 *note*, 201, 202 *note*, 203, 215 *note*, 228, 230, 261. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता, pp. 7 *and the foot-note*, 8 *note*, 9 *note*, 19 *note*, 20 *note*, 21 &c. Dr. Bhandarkar's Early History of Dekkan, pp. 9, 10, 11.

‡ See notes on Bhoja above.

¶ *Ra'jatarangini*, III. verses 332 and 333; p. 33 Calcutta edition. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता, p. 14 *note*. Prof. Weber's History of Sanskrit Literature, p. 214 *note*. The Literary Remains of Dr. Bhau Daji. pp. 14, 15, 16, 17, 18. Prof. Max Müller's India what can it teach us. p. 289 and the foot-note. *S*ilàditya (हर्षवर्धनकुमारराज), ruler of North India (उत्तरापथ), 286, 297, 309, 317, 329; He is also called शिलादित्य of कान्यकुब्ज, 287. His true date, 288. शिलादित्यप्रतापशील, 288, 313. He is also called Bhoja, 290. He was

finally restored to the throne of उज्जयिनी, 313. J. R. A. S. 1880, p. 278 *note*. Like Bhojas and Vikramádityas there were many *S*ilá-dityas. S. Beal's Buddhist Records of the Western World. Vol. I. pp. 210 n., 211 n., 213, 215, 216, 217, 218, 219—221; Vol. II. pp. 170, 174, 193, 198, 223, 234, 235 n. *S*iláditya of Ujjayini, Vol. I. p. 108 n. Vol. II, pp. 261, 267. *S*ilàditya VI. of Valabhi, Vol. II. 267 n. Corp. Inscrip. Indi. Vol. III. p. 171. *S*ilàditya VII. the year 447. Dr. Bhau Daji says that the *S*ilàdityas have become as great a source of confusion in Indian chronology as the various Vikramàdityas and Chandraguptas: and, to prevent repetition, we shall here remark that the oldest *S*ilàditya we read of in the Jaina records is the son of सुभगा, daughter of Deváditya Bràhmana, of the village of Khatá in गुर्जरदेश.

सुभगा became a widow in her childhood, but according to the chronicles of Gujarat (See A. K. Forbes's Ràsamàlà, Vol. I. p. 13), conceived afterwards by the Sun and gave birth to twins. The male child became renowned as *S*ilàditya. He destroyed the King of Valabhi and became the lord of सौराष्ट्र; but was himself slain in the sack of Valabhi in A. D. 319 by the Mlechchhas or Sakas.

The second *S*iláditya was of the यदु family. He ruled over सौराष्ट्र at the commencement of the fifth century and has already been noticed.

The third *S*ilàditya is the one noticed by Col. Tod as having been killed at the sack of Valabhi by barbarians in A. D. 524 ("Annals of Rájasthàna." Vol. I. p. 217). Some important change appears undoubtedly to have occurred about this time in the government of Valabhi, as the date appears undoubtly to correspond with the establishment of the dynasty of the Kings commencing with भट्टारकसेनापति, brought to light in Mr. Wathen's Valabhi *copper-plate grants* (J. R. A. S. Vol. IV. p. 497.—Prinscep's Indian Antiquities, by Thomas, Vol. I. p. 252); their dates 365 and 380 being from the V*alabhi*, and not from the Vikrámàditya Samvat, as hitherto supposed.

There are four Siladityas noticed in these "*Grants*" as belonging to the dynasty. हर्षवर्धन of कनौज, the patron of बाण and Hiouen-Thsang, and the subject of a biography by both with extraordinary coincidence of facts, had, it appears, the title of "*S*ilàditya" and the Chinese pilgrim, also gives the title to a king of Malvá, who ruled about 60 years before this period (Gen. Cunningham's Ancient geography of India, p. 492). The "*Ra'jatarangini*" applies the title to the son and successor of हर्षविक्रमादित्य of Ujjain. This exhausts the list of "*S*ilàditya" known to us at present. See also Dr. Bhandarkar's Early History of Dekkan, p. 40.

Col. Tod gives A. D. 575, A. D. 665, and A. D. 1044 for the first, second and third Bhojas respectively. * From this it is difficult to determine which of the three Bhojas is particularly alluded to, as they all appear to have been patrons of science.

IV. Professor Lassen assumes Kàlidása to have flourished in the second half of the second century after Christ, † at the court of Samudra-gupta, chiefly on account of the designation, 'Friend of poets', applied to that king in inscriptions. § Now this date of Professor Lassen is based upon very insufficient evidence; since many other kings than Samudra-gupta have been described as 'Friends of poets;' as for instance S'íláditya of Malvá, Harshavardhana of Kanauj, or S'rî Harsha of Káshmîra. ‡ According to Prof. Lassen's reasoning, Kàlidàsa might have lived as well in the reign of any of these princes as in that of his समुद्रगुप्त.

V. Col. Wilford, on the authority of the शत्रुञ्जयमाहात्म्य, a Jaina work composed by one धनेश्वरसूरि, places Kálidàsa in the fifth century of the Christian era; and is followed by James Prinsep and H. H. Wilson. Thus writes Col. Wilford:—

* The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 7—8. Col. Tod's Annals of Rájasthána, Vol. I, p. 92 old edi.

† Monier Williams, in his Indian Wisdom, page 494, fourth edition, says that 'Prof. Lassen places Kàlidàsa about the year 250 after Christ.'

§ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji. p. 7. Prof. Lassen's *I. Ak.* Vol II. 451, 1158—1160. See also *I. St.*, Vol. II. 148, 415-417, of Prof. Weber. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III. p. 195. Allahabad Posthumous Stone pillar inscription of समुद्रगुप्त.

Speaking of this inscription Dr. Fleet says that 'the round monolith sandstone column, thirty-five feet in height, on which this inscription is, dates from the third century B. C., as is shown by the famous edicts of अशोक on it.'—

L. 5. "यस्य प्रज्ञानुषंगोचितसुखमनसः शास्त्रतत्त्वार्थभर्तुः ॥"

L. 5. Whose happy mind was accustomed to associate with learned people;—who was the supporter of the real truth of the scriptures.

‡ See notes on page 56. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता. p. 15 *note.* See notes on page 35. Max Müller's India, p. 356.

"In the शत्रुञ्जयमाहात्म्य * we read that after 466 years of the era are elapsed, then would appear the great and famous Vikramàditya; and then 477 years after him S'ilàditya or Bhoja would reign."

The era referred to in this passage is, as has been clearly shown by the late Dr. Bhau Daji, not of Vikrama, but of Vîra i. e. Mahâvîra or Vardhamàna, the last of the Jaina Tîrthankaras. Col. Wilford has confounded this Vîra with Vikramáditya who is also called Vîra Vikrama. Prof. Wilson who assigns Kálidása to the fifth century on the authority of the same शत्रुंजयमाहात्म्य is led into the same mistake as that of Col. Wilford and besides incorrectly assumes S'iláditya of the शत्रुंजयमाहात्म्य with S'iláditya the son and the successor of Vikramàditya of Ujjain. † Now there are as many S'iláditya s as there are Vikramàdityas or Bhojas, § and the S'iláditya referred to in the above passage of the शत्रुंजयमाहात्म्य is a king of Valabhî who expelled the Buddhists from the Sauràshṭra 477 years after Vikrama i. e. in 420 A. D. as we learn from the same work. ‡

It is then evident from the above that the शत्रुंजयमाहात्म्य does

---

* The Literary Remains of Dr. Bhau Daji pp. 14—18. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता. p. 11. *note.* Max Müller's India what can it teach us. p. 282. Dr. Buhler, however calls the शत्रुंजयमाहात्म्य 'a wretched forgery of the 12th or 14th century.' Dr. H. Kern's preface to बृहत्संहिता, p. 15. Wilford's statements about शत्रुंजयमाहात्म्य, As. Res. Vol IX. p. 156. Prof. Weber's History of Sanskrit Literature, p. 214. Prof. Lassen, *I. Ak.*, Vol. IV. p. 761.

† The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, pp. 14, 15, 16, 37. Asiatic Researches, Vol. XV., p. 39 and 87. See notes on page 56.

§ See notes on page 35.

‡ See notes on page 57. The Literary Remains of Dr. Bhau Daji. p. 15. Prof. Weber's शत्रुंजयमाहात्म्य, p. 109, verse 286.

सप्तसप्ततिमब्दानामतिक्रम्य चतुःशतीम् ।
विक्रमार्काच्छिलादित्यो भविता धर्मवृद्धिकृत् ॥
सर्ग १४ श्लोक २८६ ।

not help us in the least in the matter of fixing the date of either Vikramáditya or Kâlidâsa. *

VI. The late Dr. Bhau Daji has fixed the first half of the sixth century † as the period during which Kàlidàsa flourished; and in support of this view he has adduced several facts which are new, and various arguments which, if not convincing must at least be acknowledged to be very powerful. § This is the date which has been acquiesced in by many of the celebrated antiqua-

---

* The tradition says that Kàlidàsa the author of Raghuvansa and Sàkuntalà was in the court of Vikramàditya who flourished in 57 B. C.

Another writer, who assumes the title of Kálidása, is the author of शत्रुपराभवग्रन्थ an astrological work treating of favourable opportunities for action, by determining the predominance of "स्वर" or 'breath' through the right or left nostril.

The first and last verses are as follows:—नत्वा सुरासुरशिरोमणिरत्न—रश्मि । चित्रीकृतांघ्रियुगलं हरिमादिदेवं ॥ श्रीकालिदासगणकः स्वरशास्त्रसारं वक्ष्याम्यहं प्रबलशत्रुपराभवाख्यं ॥ १ ॥
आसीत्कश्यपवंशजोर्कतनयातीराधिवासो द्विजः । श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरः श्रीभानुभट्टः सुधीः । तत्पुत्रोहरिभक्तिनिर्मलतनुर्ज्योतिर्विदामग्रणीः । शास्त्रं शत्रुपराभवाख्यमकरोद् श्रीकालिदासः कविः ॥ २ ॥

Trans:—"I, Kálidása Ga*n*aka, after making obeisance to Hari, the आदिदेव, whose joint feet are resplendent with the rays of the jewels in the crowns of the Gods and Demons, proceed to give the substance of Svara *S*ástra, called शत्रुपराभवग्रन्थ. "Deeply versed in the knowledge of the *S*rutis and Smrits, and born in the race of कश्यप there lived on the banks of the अर्कतनया (Jumna) the talented भानुभट्टब्राह्मण. His son, whose body has been purified by devotion to Hari, is the poet Kàlidàsa, the first among astrologers. He composed the शास्त्र, called शत्रुपराभव.

And the third writer who assumes the title of Kàlidàsa is the author of ज्योतिर्विदाभरण, the wretched Jaina forgery, The 20th verse of the 22nd chapter runs thus:—"Having first composed three Kàvyas *i. e.* the Raghuvansa and others, I composed several treatises on Vedic subjects (श्रुतिकर्मवाद); then from Kálidása proceeded the astrological treatise called ज्योतिर्विदाभरण.

† The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 37.

§ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, pp, 19—48, and the notes thereon.

rians of the present day; for instance, by Prof. Max Müller, * by Dr. Kern † and by Dr. Bhandarkar. §

We shall arrange the materials which have been collected and brought to bear upon this date, in the following order.

(a) It has been said above that Kàlidása was one of the nine gems that adorned the court of a Vikramàditya. Now the date of Varàhamihira has been discovered by the late Dr. Bhau Daji. ‡ In a commentary on the Khandakhàdya of Brahmagupta, an astronomer of 628 A. D. by Amarája we have the following:— "नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः ॥" Varàhamihirácharya went to heaven in the 509th year of the S'akakàla, *i. e.* 587 A. D. ¶ H. T. Colebrooke had already assigned to him the close of the fifth century of the Christian era from a calculation of the position of the colures affirmed as actual in his time by Varáhamihira. $

The date of Varàhamihira being fixed, the time of Kàlidása and the other gems of the memorial verse and their patron Vikramàditya is also fixed.

(*b*) It is stated in the *Ra'jatarangini* that when Hiranya the ruler of Kàs'mira died without issue, Harshavikramàditya of Ujjain appointed a poet named Mátrigupta who had come to

---

* Max Muller's India What can it teach us. p. 301, 301 *note*, 307. 312.

† Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता of Varáhamihira, p. 20.

§ Dr. Bhandarkar's Early History of the Dekkan, p. 11.; and Dr. Bhandarkar, J. B. B. R. A. S. Vol. XIV, p. 24.

‡ Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 45. Dr. Bhau Daji says that 'the latest and the most judicious writers on Hindu Astronomy have placed वराहमिहिर about A. D. 570.' But in page 240 he says that 'he flourished after A. D. 505.' H. T. Colebrooke's Essays, Cowell's edition, Vol. II. p. 415. Prof. Weber's History of Sans. Literature, p. 254 J. R. A. S. Vol. I. (1864) p. 392.

¶ Dr. Fleet's Corpus Iuscriptionum Indicarum Vol. III. appendix I. p. 143. *Jour. R. A. S.* N. S. Vol. I. p. 407, 392 (1864). Dr. Bhau Daji's brief notes on the Age and Authenticity of the works of आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टोत्पल, and भास्कराचार्य, p. 240.

$ Dr. Bhau Daji's brief notes on the age and authenticity of the

seek service at his court to the throne of Kás'mira. * Mà*tri*gupta ruled Kàs'mira for four years and retired to वाराणसी as a यति when Pravarasena II, the nephew of Hira*n*ya who had gone on a pilgrimage, returned to assume the throne. † Dr. Bhau Daji thought that this Má*tri*gupta who was for a time ruler of Kás*m*îra was the great poet Kàlidàsa, and he supported his theory by the following reasons.

(1) There always has been a tradition that Vikramàditya was so pleased with Kàlidàsa that he bestowed on this poet half of his territories.§

(2) Mát*ri*gupta is rather an appellation than a proper name and it conveys the same import as Kàlidàsa. The "त्रिकाण्डशेष," a Sanskrit Vocabulary by Purushottama, gives रघुकार, मेधारुद्र, and कोटिजित् as synonyms of Kálidàsa. ‡

(3) The *Ra'jatarangini* does not omit to notice the great Sanskrit poets in their respective historical periods. Thus it mentions Bhavabhûti ‖ as patronised by यशोवर्मन् of Kanoj. But it never mentions Kálidàsa.

---

works of आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टोत्पल, and भास्कराचार्य, p. 239. H. T. Colebrooke's Essays. Vol. II. Cowell's edition, p. 434.

* *Ra'jatarangini*, III. lines, 125, 128; page 26, Calcutta edition. See our notes on page 53. Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása p. 21, verse 124. Max Müller's India what can it teach us, p. 313.

† *Ra'jatarangini*, III. Calcutta edition p. 32. lines 290—302. Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 48. Max Müller's India what can it teach us, p. 313.

§ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 48. Max Muller's India what can it teach us, p. 313.

‡ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 30. Max Müller's India what can it teach us, p. 314.

‖ कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥ १४५ ॥

Ràjatarangini IV. 145. Calcutta edi. Dr. Bhandarkar's edition of Málati-Mádhava, preface, page IX. In his report on the search for Sanskrit MSS. during the year 1883-84, page 15, Dr. Bhandarkar says:—" We learn from Rájasekhara's प्रबन्धकोश that

(4) A Prákṛit poem called the सेतुकाव्य is described by its commentator to have been composed by Kálidàsa at the request of Rájá Pravarasena. An expression in the वाराणसीदर्पण of Sundara is explained by the commentator Ràmás'rama to be an allusion to Kálidàsa who wrote the Setu-Kávya. In a work on poetry called Pratàparudra by Vidyánàtha who was patronised by Pratáparudra

---

आमराज converted by बप्पभट्टि was the son and successor of यशोवर्मन्, king of Kanoj. A king of the name of धर्म who was hereditary enemy of आम, ruled over the गौड country at that time, and लक्षणावती was his capital. He had वाक्पतिराज, a poet, in his service, who composed a Prák*ri*t poem entitled गौडवध or गउडवहो, after his patron had been killed by a neighbouring prince of the name of यशोधर्म. It would thus appear that वाक्पतिराज belonged to the next generation after यशोवर्मन्, and I have given reasons in the introduction to my edition of मालतीमाधव to believe that he belonged to the next generation after Bhavabhûti also. The राजतरंगिणी speaks of both the poets as having been patronised by यशोवर्मन्, wherefore it must be concluded that वाक्पतिराज first came into prominence in the latter part of his reign, while Bhavabhûti belonged to the first part. ****** यशोवर्मन् thus died between 807 and 811 of the era of Vikrama, *i. e.* about the year 753 A. D. Lalitáditya of Kásmîra who subdued यशोवर्मन् reigned from 693 to 729 A. D. according to the chronology of the राजतरंगिणी as interpreted by General Cunningham by the use of the key furnished by कल्हण himself, *viz.* that *S*aka 1070 correspondded with the Kásmîra year 24. The date of Yasovarman's death now determind agrees well enough with this; at least it does not furnish any reason for supposing an error in Kalha*na*'s dates and applying a correction to them as General Cunninghan afterwards did, though even the corrected date of Lalitàditya, 723–760 A. D., would be equally consistent with it. And Bhavabhûti must be referred to the last quarter of the seventh century and the first of the eighth." See also Pandit's edition of गौडवध, introduction, p. LXIX., and *note* In गउडवहो, p. 221, are the following.

भवभूइजलहिणिग्गयकव्वामयरसकणा इव फुरन्ति ।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ॥ ७९९ ॥

com.—भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥ निबन्धेष्विति क्वचित्पाठः॥

See also Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidása, p. 37.

of Telingan*a* about the end of the 12th century, an Aryà is quoted from the 'Setukàvya' which is styled a " महाप्रबन्ध." Dandin praises the poem although written in Prák*r*ita as an 'ocean of the jewels of beautiful sentences'. The work is alluded to in the Sàhitya Darpa*n*a or Mirror of Composition. The Ràjatarangi*n*i states that Pravarasena had constructed a bridge of boats across the Vitastà (Hydaspes) on which the capital of Kàs′mira was then situated. The construction of this very bridge is the subject of the Setukàvya. * Bà*n*a's notice of Pravarasena and the Setukàvya confirms the correction of the assertion of the commentator of the Setukávya that the poem was composed at the request of that King. †

Dr. Bhau Dáji himself, however, brought forward some objections against his identification of Má*tr*igupta and Kálidása. Kálidàsa, he remarks, was a Sàrasvata Brahma*n*a, a worshipper of S′iva and Párvati, while Màt*r*igupta as ruler of Kàs′mira appears from the *Ràjatarangini* to have conciliated the Buddhists and Jainas by prohibiting the destruction of

---

* The Literary Remains of Dr. Bhau Dàji, pp. 39—40. Also Rájatarangi*n*i, Calcutta edition, p. 34. lines 355—356:—

" वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।
ख्याता ततःप्रभृत्येव तादृङ्नौसेतुकल्पना ॥ ३५६ ॥

Max Muller's India what can it teach us, p. 314—315.

† Introduction to Harshacharita:—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥
निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

Trans. The glory of Pravarasena, bright as the white lotus, extended beyond the ocean by means of the Setn (Kàvya), just as the monkey army crossed the ocean by the Setu (bridge).

Who is not enraptured with the sweet and good diction of Kálidása,? as in clusters of flowers moist with honey.

See also Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidása, p. 40. Max Muller's India what can it teach us, p. 315.

living beings. * He also pleased the Vaishnavas by constructing a temple to Vish*n*u, and the deities invoked in the Setukávya are first Vish*n*u and then S'iva. † This, in the opinion of Professor Max Müller, however, is no serious objection; for such was the character of that time that men like Màt*ri*cheta ‡ began as worshippers of S'iva and then became Buddhists and like Lalitáditya erected statues to Buddha and Vish*n*u. § What troubles the Professor is ' that Mat*ri*gupta is spoken of in the *Ra'jatarangin*î as a poet and yet never identified with the famous author of the *S*ákuntalà. It is possible that Kalha*n*a Pandit who is so well acquainted with literary history should have told the extraordinary career of Mát*ri*gupta without giving a hint that this poet, raised to the throne of Ká*s*mîra, was the famous Kálidàsa'? ¶

---

* *Ra'jatarangini.* III, Calcutta edition, p. 31, lines 258—268 The Literray Remains of Dr. Bhau Dáji, pp. 38—39.

† The poem opens (*i. e.* the first four verses) with the praise of the god मधुमथन (The Rájatarangi*n*î, III. p. 31, verse 266 runs thus:—स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं निममें मधुसूदनं । कालेनादत्त यद्ग्रामान्मम्मः श्वशुरसद्मने ॥); and the next four verses invoke the blessing of S'iva. The god मधुमथन of the Setubandha and the god मधूसुदन of the above verse of the Ràjatarangi*n*î, appear to be one and the same deity. The निर्णयसागर edition says that the author of S'etubandhakàvya was the king Pravarasena and not the author of Raghuvan*s*a, and hence the authorship of Kálidàsa to Setukávya becomes doubtful. The colophon runs thus:—
महाकविश्रीप्रवरसेनमहीपतिविरचितं (दशमुखवधापरनामकं) सेतुबन्धम् ॥
Dr. Bhau Daji says:—Màt*r*igupta in Ká*s*mîra is said in the Rájatarangi*n*i to have established the worship of मधुमथन or Vish*n*u under the name of "मातृगुप्तस्वामी," and this is the only circumstance that creates a shade of doubt in our mind respecting the identity of मातृगुप्त with Kálidàsa, who, in his extant works always invokes *S*iva, and otherwise, appears to have been a devout *S*aiva.

‡ Prof. Max Müller says:—'Thus I–tsing tells us that Màt*rik*eta, who in his youth worshipped महेश्वर, became later in life a follower of Buddha and composed 400 hymns, and afterwards 150 hymns.' India what can it teach us, p. 302, 315 *note.*

§ India what can it teach us, pp. 307, 315 *note.*

¶ Max Müller's India what can it teach us, p. 315 *note.*

Although the above leaves the identification of Ma*tri*gupta and Kâlidása doubtful, still it clearly establishes the connection of Kàlidàsa with the Setukávya and with Pravarasena II. king of Kás'mîra. Mà*tri*gupta might have been a poet different from and contemporaneous with Kâlidâsa. There is a commentary on the *S*a'kuntalà by Ràghava Bhatta, son of P*ri*thvidhara of Vis'ves'vara-pattana (Benares) in which he quotes Má*tri*guptácha'rya with reference to the characteristics of dramatic composition. *

(*c*) The fourteenth verse of the Meghadûta and especially the last line † of it affords another datum for fixing the date of Kálidàsa. The verse bears, according to Mallinàtha, two senses, one expressed and the other implied or 'suggested' in the language of the Alankárists. There is nothing part cular in this verse bearing a double sense, as the works of Kálidàsa and Bá*n*a abound with verses and the Meghadûta itself contains many other verses of a similar nature. Now Mallinàtha in the implied sense of the verse, discovers a pointed allusion in Kálidàsa's words 'Nichula' and 'Diǹnaga' to two men who were the contemporaries of Kàlidása, one, an intimate friend of his and the other his adversary. ‡

* The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, pp. 36–37 *note.* Throughout the commentary, observes the learned doctor, we meet with 17 verses, which, from their style appear to be the production of a great poet, and are not unworthy of Kàlidàsa. One *S*loka is quoted second-hand from Bhàmaha, a commentator on the "प्राकृत-प्रकाश," who again quotes it from the "हयग्रीवव्रधनाटक".

"हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्नवम् ।
आसमाप्ति ततो नापत् साध्वसाध्विति वा वचः ॥ २६४ ॥
अथ ग्रन्थयितुं तस्मिन् पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।
लावण्यनिर्याणभिया राजाधः स्वर्णभाजनम् ॥ २६५ ॥
अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्याकृत सत्कृतिः ।
भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥ २६६ ॥

Ra'jatarangini, *III*. p. 31. Calcutta edition. Max Müller's India what can it teach us, p. 314. *note*.

† दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

‡ See Mallinàtha's commentary on the 14th verse, Max Müller's India what can it teach us, pp. 306–307. Dr. Bhau Daji's Essay on Kàlidása p. 49.

About Nichula nothing absolutely is yet known except that the शब्दार्णव recognises Nichula as a proper name, being that of a poet. But दिङ्नाग or more properly दिङ्नागाचार्य § is a celebrated name in the Prámana S'astra or Sanskrit logic.

From the life of Bhagavat Buddha by Ratnadharmarája (a Tibetan work) that Diñnaga and Dharmakîrti were the pupils of the Buddhist Arya Asanga ¶ in Pramàna that is logic.

Again we learn from Váchaspatimis'ra's न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका that Uddyotakaràchárya composed his न्यायवार्तिक, a commentary on Pakshila Svamin's न्यायभाष्य in order to clear away the erroneous interpretations of Diñnaga and others. *

This shows that Uddyotakara was the contemporary or immediate successor † of Diñnaga and that Diñnaga as befitting a pupil of the Buddhist logician Asanga was an authority on logic.

---

§ Max Müller's India what can it teach us. p. 307. Dr. Bhau Daji's Essay on Kálidása, p. 49. Prof. Weber's History of Sans. Literature, p. 209 *note*. Prof. Cowell's preface to कुसुमांजलि, p. VII. S. P. Pandit's preface to the Raghuvansa, part III. p. 68. Dr. Hall's preface to वासवदत्ता p. 9. J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII. pp. 229-230. J. B. B. R. A. S. Vol. XVII. p. 51.

¶ Prof. Max Müller's India what can it teach us. pp. 304-305, 309 311.

* अथ भगवताक्षपादेन निःश्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते, व्युत्पादितेच भगवता पक्षिलस्वामिना, किमपरमवशिष्यते यदर्थं वार्तिकारंभ इति शंकां निराचिकीर्षुः सूत्रकारोक्तप्रयोजनानुवादपूर्वकं वार्तिकारंभप्रयोजनं दर्शयति 'यदक्षपादः' इति । यद्यपि भाष्यकृता कृतव्युत्पादनमेतत्तथापि दिङ्नागप्रभृतिभिरर्वाचीनैः कुहेतुसंतमससमुत्थापेननाच्छादितं शास्त्रं न तत्त्वनिर्णयाय पर्याप्तमित्युद्योतकरेण स्वनिबन्धोद्योतेन तदपनीयत इति प्रयोजनवानयमारंभः ॥ Cowell's preface to कुसुमांजलि, p. VII.

† In his paper read before the society Mr. Pàthaka says:— "The works of प्रभाचन्द्र and विद्यानन्द place at our disposal a mine of useful information. प्रभाचन्द्र mentions, among other authors भगवान् उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, भर्तृहरि, शबरस्वामी, प्रभाकर, and कुमारिल. All these authors with the exception of भगवानुपवर्ष, are quoted by विद्यानन्द. Bhagaván Upavarsha, S'abarsvámin, Dharmakîrti and Kumarila are also referred to by शंकराचार्य. The अष्टसहस्री represents कुमारिल as refuting the views of धर्मकी-

Now उद्योतकर and धर्मकीर्ति are mentioned by Subandhu in his Vásavadattá, the former by name and the latter, by the name बौद्धसंगति', which, the commentator says, is the name of a work

---

र्ति and प्रभाकर. From this circumstance we infer the chronological priority of the two last mentioned authors to Kumarila. वाचस्पतिमिश्र says that दिङ्नाग is refuted by उद्योतकर; and according to the Jaina श्लोकवार्तिक, उद्योतकर himself is attacked by धर्मकीर्ति.

In his paper on the न्यायबिन्दुटीका, Dr. Peterson says "in the Jesalmira fragment there is an interesting reference to Kumárila's critique of दिङ्नाग. The writer asserts that when कुमारिल rejects mental perception as that had been established from the scriptures (आगमसिद्ध) by Diṅnaga it was because he did not understand Diṅnaga's definition." This critique of दिङ्नाग occurs in Kumarila's श्लोकवार्तिक, chapter on प्रत्यक्ष. There is another reference to दिङ्नाग in the same work:—

वासनाशब्दभेदोत्थविकल्पप्रविभागतः ।
न्यायविद्भिरिदञ्चोक्तं धर्मादौ बुद्धिमाश्रिते ॥ १६७ ॥
व्यवहारोनुमानादेः कल्प्यते व बहिःस्थिते ।
अस्तीदं वचनं तेषामिदं तत्र परीक्ष्यताम् ॥ १६८ ॥

न्यायविद्भिरिति । न्यायविद्भिर्हि दिङ्नागाचार्यैरिदमुक्तं । सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारो बुध्द्यारूढेन धर्मधर्मिन्यायेन न बहिःसत्त्वमपेक्षत इति । एतदपि दूषयति ।

In this passage सुचरितमिश्र says, Kumarila applies the expression न्यायविद्भिः to दिङ्नागाचार्य. It is obvious, therefore, that the Buddhist author of the Jesalmira fragment and the Brahmanincal commentator सुचरितमिश्र are unanimous in holding that दिङ्नाग is criticised by कुमारिल. In his chapter entitled the शून्यवाद the मीमांसक controverts the Buddhist view denying the existence of the soul as distinct from the intellect. In explaining this part of the श्लोकवार्तिक, सुचरितमिश्र frequently cites the well-known verse of धर्मकीर्ति which is quoted by शंकर and सुरेश्वर (or मण्डनमिश्र), and thus leads us to infer that धर्मकीर्ति as well as दिङ्नाग is criticised by कुमारिल. This view is corroborated, as we have seen, by विद्यानन्द who in the अष्टसहस्री represents Kumarila as refuting a verse of धर्मकीर्ति.

These facts enable us to fix the chronological order in which दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, भर्तृहरि and कुमारिल flourished. Each of these authors lived prior to the one named next after him. J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII. 229—230.

of धर्मकीर्त्ति. ‡ Subandhu again is quoted by Bá*n*a at the beginning of the Harshacharita, § who flourished in the first half of the seventh century (607—648 A. D.).

From Tàránàtha's 'History of Buddhism' we learn that Arya Asanga was the elder brother and teacher of Vasubandhu. ¶

Hiouen Thsang tells us that Vasubandhu and his teacher Manorhita were the contemporaries of Vikramaditya of श्रावस्ती * (probably his northern residence). †

Thus Hiouen Thsang speaks of king Vikramáditya. "The king Vikramáditya of the country of श्रावस्ती was of wide renown. He ordered his minister to distribute daily throughout India five làkhas of gold coin. He every where supplied the wants of the poor, the orphan and the bereaved." "This Vikramáditya once summoned an assembly of the Shamans (श्रमणाः) and the heretics (Brahmanas) in which Manorhita was defeated by the 'heretics' rather by noise than by argument. Manorhita ashamed to see himself thus treated by the people bit out his tongue and wrote a warning to his disciple Vasubandhu saying "In the multitude of partisans there is no justice; among persons deceived there is no discernment." Having written this he died.

---

‡ न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपां बौद्धसंगतिमिवालंकारभूषिताम् ॥ २३५ ॥ बौद्धसंगतिमिवालंकारो धर्मकीर्तिकृतो ग्रन्थविशेषस्तेन भूषिताम्. Hall's वासवदत्ता, p. 235, and the commentary. See also the preface p. 9 of the same. Max Müller's India what can it teach us, p. 308.

§ Introduction to Harshacharita:—

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥

Dr. Hall's praface to वासवदत्ता, p. 18. Max Muller's India what can it teach us, p. 308.

¶ Max Muller's India what can it teach us, p. 303. Táránàtha's History of Buddhism, p. 118.

* Max Muller's India what can it teach us. p. 302.

† Pandit's preface to गउडवहो, p. CXI. *note*. also p. CXXVIII. note of the same. Buddhist Records of the Western. World. Vol. I. p. 106 *note*.

"A little afterwards Vikramáditya lost his kingdom and was succeeded by a monarch" *S*iláditya Pratapásîla of Ujjain, who widely patronised those distinguished for literary merit. Vasubandhu wishing to wash out the former disgrace came to the king and said "Máhàràja, by your sacred qualities you rule the empire and govern with wisdom. My old master Manorhita was deeply versed in the mysterious doctrine. The former king from an old resentment deprived him of his high renown. I now wish to avenge the injury done to my master. The king knowing that Manorhita was a man of superior intelligence approved of the noble project of वसुबन्धु. He summoned the heretics who had discussed with Manorhita. Vasubandhu, having exhibited afresh the former conclusions of his master, the heretics were abashed and retired."*

Now if we can fix the dates of this Vikramàditya and Asanga or Vasubandhu, we can fix those of Diññága and also Kàlidása who was according to Mallinàtha (the tradition which Mallinátha puts forth is correct or not is a question by itself) his contemporary.

Hiouen Thsang (629—645 A. D.) says that sixty years before his time the throne was occupied by *S*'iladitya Pratápas'îla. † So that his reign, according to Dr. Fergusson § ends

* Buddhist Records of the Western World. Vol. I. pp. 106—109.

† Buddhist Records of the Western World Vol. II. p. 261. Gen. Cunningham's Ancient Geography of India. p. 492.

§ Max Muller's India what can it teach us. pp. 288—289 and the note. Journal of the Royal Asiatic Society, 1880, p. 278. note. In a note of the Buddhist Records of the Western World. Vol. I. p. 106, Rev. S. Beal says:— "Manorhita is placed under विक्रमादित्यहर्ष of Ujjain, and therefore lived about the middle of the 6th century A. D., according to Max. Müller, *India*, p. 290. This is supposed to be the same as Vikramáditya or Harsha of Ujjain, according to Dr. J. Fergusson and Prof. M. Müller, the founder of the usual संवत् era, 56 B. C. The Chinese equivalent for his name is *chaou jih*, or "leaping above the sun," or, "the upspringing light", "the dawn." As to the mode in which this era of Vikramá-

in 580 A. D. He ruled, according to Ferishtah, fifty years 530—580, and was preceded by Vikramáditya whose reign would accordingly have ended in 530.

Again Tibetan chronicler रत्नधर्मराज says that 900 years after the death of Buddha there appeared Arya Asanga and Vasubandhu. *

Hiouen Thsang states that As'oka flourished 100 years after निर्वाण. Now the date of As'oka is known 259–222 B. C. † Asanga and Vasubandhu thus appeared to have lived 541 A. D. Kálidàsa and his adversary Diñnága the pupil of Vasubandhu must have lived about the same time.

---

ditya might have contrived, see Fergusson (*J. R. A. S.*, N. S. Vol. XII. p. 273). The starting-point from which these writers suppose it came into use is 544 A. D. The expression of Vikramàditya of श्रावस्ती, is the same as Vikramáditya of अयोध्या, where we are told (Vassilief, p. 219) he held his court. The *town* of श्रावस्ती was in ruins even in Fahian's time (cap. XX).

* Max Müler's India what can it teach us. p. 305.

† In his India what can it teach us, p. 306, Professor Max Müller says:— "We had placed Vikramáditya in the first half of the sixth century, about 100 years before Hiouen-thsang. If then we remember that Kanishka's birth is placed 400 years and Asanga 900 years after Buddha's death (see also Wassiljew, Buddhismus, p. 52), we find an interval of 500 years between Kanishka and Asanga. And if we are right in placing Kanishka's coronation 78 A. D., we should get for Asanga and Vasubandhu about the second half of the sixth century, that is, nearly the same date at which we arrived before, on the evidence supplied by Hiouen-thsang." And futher in the notes he says:— "This is a very common date for Kanishka with the Northern Buddhists, whether of his birth or of his coronation, may sometimes seem doubtful (Hiouen-thsang, II, 172). If we take 78, the beginning of the Sake era, as the date of Kanishka's coronation (अभिषेक), the initial date of Buddha's निर्वाण would have to be placed not as a real event, but for the purpose of chronological calculation only, at about 322 B. C. पार्श्व and वसुमित्र would belong to the same period as Kanishka.

According to the same chronological system, अशोक is placed 100 years after Buddha's निर्वाण (Hiouen-Thsang, II, p. 170), *i. e.* 222 B. C., and this, if I am right in my rectification of the chronology

This may be seen from the following table:—— *

550—Vikramàditya Harsha of Ujjayinî.

531—579. Khosru Nushirvân and Barzôî.

544 Battle of Kárur, 600 after 56 B. C., era of Vikrama.

Siddhasena Suri, a Jaina, helps in reckoning the era.

544. Matrigupta, ruler of काश्मीर, contemporary of भर्तृमेंठ.

Kàlidàsa, contemporary of दिङ्नाग, वसुबन्धु, and असङ्ग.

mentioned with भारवि in inscription 634 A. D.

his सेतुकाव्य praised by Dandin (6th century).

quotes भास, सौमिल्ल.

Varàhamihira, died 587.

" quotes आर्यभट, born 476.

" रोमकसिद्धान्त by श्रीषेण, 505, based on लाट, वासिष्ठ, विजयनंदिन् &c.

---

of the Southern Buddhists, is the real date of his death (धम्मपद, Introdu. P. XXX1X).

Again, the king of Himatala, who defeats the Kritiyas, who are enemies of Buddhism, is placed 600 after बुद्धनिर्वाण, *i. e.* 278 A. D. (Hiouen-Thsang, II, p. 179).

Hiouen-Thsang is fully aware of the existence of three different eras. He says that some place the निर्वाण 1200 years ago (about 560 B. C.), others 1500 years ago (about 860 B. C.), but, he adds, some assert that more than 900 and less than 1000 years have now elapsed since Buddha's निर्वाण. These were no doubt the authorities who placed Kanishka 400 years after the निर्वाण, and Hiouen-Thsang himself, about 960 years after Buddha (Hiouen-Thsang, I, p. 131). Wassiljew (Buddhismus, p. 52) states from Tibetan sources that after the death of गंभीरपक्ष (p. 282. n.), the patron of Asanga (900 post बुद्धनिर्वाण) श्रीहर्ष was the most powerful king in the west of India, and was succeeded by his son शील. It is curious to observe that in Tibetan literature Buddha's birth is supposed to have happened not long before the birth of Confucious (J. B. B. R. A. S. 1882, p. 100). It might be well to distinguish the Southern Buddhist era by p. B. S. from the Northern Buddhist era, p. B. N." See also Dr. Bhandarkar's Early History of the Dekkan, pp. 21—22 *note.*

* Prof. Max Muller's India what can it teach us, p. 290. Indian Antiquary, 1883, Vol. XII., p. 234.

" पौलिशसिद्धान्त by Paulus al Yunâni.

" वसिष्ठसिद्धान्त by विष्णुचन्द्र.

" सौरसिद्धान्त.

पैतामहसिद्धान्त; also सत्यभदन्त, बादरायण, &c.

Amarasinha, translated into Chinese 561—566.

जिष्णु, father of ब्रह्मगुप्त (born 598).

दिङ्नाग, criticised by उद्योतकर, who is mentioned by सुबन्धु, who is mentioned by बाण.

मनोरथ, teacher of वसुबन्धु, disgraced, 900 p. B. N.?

550—600—*S*ilàditya Pratàpa*s*îla (Málavá), called भोज by Ferishtah.

वसुबन्धु, restored, Pandit at नालंद, brother of असंग; died before 569.

प्रभाकरवर्धन.

माधवगुप्त, तारक, सुषेण, at his court.

राज्यवर्धन (eldest son).

Defeats king of Màlavá.

Is defeated by शशांक of कर्णसुवर्ण, an enemy of बुद्ध, or गुप्त of गौड.

Fei-tu, Chinese ambassador, 605.

610—650. शिलादित्यहर्षवर्धन (younger son), called कुमारराज, a वैश्य.

His sister, राज्यश्री, wife of ग्रहवर्मन् who was killed by king of Málavá.

His minister भण्डि (Po-ni).

Alliance with भास्करवर्मन्, Kumára of प्राग्ज्योतिष (कामरूप).

Wars with Pulake*s*in II. of महाराष्ट्र, temp. Hiouen-Thsang (618—625, Ma Tuan-lin).

Defeated by Pulake*s*in II, सत्याश्रय, who began to reign 609.

Chinese embassy to मगध, leaves 648, arrives after *S*ila's death.

Visited by Hiouen–Thsang, 629–645; by Alopen, 639.

Dandin, दशकुमारचरित, काव्यादर्श, old.

Subandhu, वासवदत्ता, quoted by बाण.

" " quotes उद्योतकर, धर्मकीर्ति, pupil of असंग.

Ba'na हर्षचरित, कादंबरी, चण्डिकास्तोत्र, रत्नावली (धावक,)पार्वतीपरिणयनाटक (a paraphrase of कुमारसंभव attributed to बाण).

मयूर, मयूरशतक.

मानतुंगसूरि, भक्तामरस्तोत्र.

नारायण.

आढ्यराज.

भर्तृहरि, died 650 (I–tsing).

जयादित्य (काशिका), died 660 (I–tsing).

ब्रह्मगुप्त, born 598.

Though some of the links in this chronological system are still doubtful, the belief in the existence of a Vikramáditya in the first century B. C. may now be accounted for, while his real existence in the sixth century admits of little doubt.

We have hitherto discussed the several views and theories held about the date of Kàlidàsa by the native as well as European investigators. It is now a patent fact that the Samvat era really commences from the year 57 B. C. and not at 544 A. D. as Dr. Fergusson supposes. Dr. Fleet's discovery of Mandasôr inscription has completely exploded Dr. Fergusson's theory, * and has confirmed the tradition of Vikramáditya flourishing in B. C. 57. Prof. Lassen places Kàlidàsa in 250 A. D. † Prof. Weber assigns the composition of Kálidàsa's three dramas to a period from the second to the fourth century of the Christian era, the period of the Gupta princes.§ &c.

* See pages from 45—51 of this Introduction.

† See note on page 58.

§ See notes on page 38. Also Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p. 204 *note*. Max Muller's India what can it teach us, p. 301 *note*.

Sir William Jones assigns to Kálidása a period preceding the Christian era. * And this theory of that distinguished scholar receives an additional support from As'vaghosha's बुद्धचरित, a recent publication of Prof. C. B. Cowell at Oxford. † This book is a mine of useful information for those investigators who are particularly interested in the history of Sanskrit literature. Prof. Cowell says that 'readers of the Raghuvans'a will well remember the description in the seventh canto, slokas 5—15, of the ladies of the city crowding to their windows to see prince अज as he passes by from the स्वयंवर, where the princess भोज्या has chosen him as her husband. There is a striking parallel to this episode in the third book of बुद्धचरित, slokas 13—24, where the young prince makes his first entry into his father's capital,-that expedition, during the course of which he is to make his first acquaintance with old age as the inevitable shadow which dogs the steps of youth.'

बुद्धचरितम्:—

ततः कुमारः खलु गच्छतीति ।
श्रुत्वा स्त्रियः प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिं ।
दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मुः ।
जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञाः ॥ १३ ॥
ताः स्रस्तकांचीगुणविघ्निताश्च ।
सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च ।
वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च ।
कौतूहलेनापि भृताः परीयुः ॥ १४ ॥
प्रासादसोपानतलप्रणादैः ।
कांचीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च ।
विभ्रामयन्त्यो गृहपक्षिसंघान् ।
अन्योन्यवेगाच्च समाक्षिपन्त्यः ॥ १५ ॥
कासांचिदासां तु वरांगनानां ।
जातत्वराणामपि सोत्सुकानां ।
गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशालाः ।
श्रोणीरथाः पीनपयोधराश्च ॥ १६ ॥

रघुवंशम्:—

ततस्तदालोकनतत्पराणां ।
सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुंदरीणाम् ।
त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥ ५ ॥
आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या ।
कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बंद्धुं न संभावित एव तावत् ।
करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥ ६ ॥
प्रसाधिकालम्बितमग्रपादम् ।
आक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षाद् ।
अलक्तकांकां पदवीं ततान ॥ ७ ॥
विलोचनं दक्षिणमंजनेन ।
संभाव्य तद्वंचितवामनेत्रा ।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ।
ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥ ८ ॥

* See page 38 of this Introduction.

† Anecdota Oxoniensia, Arian Series, Vol. I. part VII. 'The बुद्धचरित of अश्वघोष,' edited from three MSS by E. B. Cowell, Oxford 1893.

शीघ्रं समर्थापि तु गंतुमन्या ।
गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णं ।
ह्रिया प्रगल्भानि निगूहमाना ।
रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥ १७ ॥
परस्परोत्पीडनपिंडितानां ।
संमर्दसंशोभितकुण्डलानां ।
तासां तदा सस्वनभूषणानां ।
वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥ १८ ॥
वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि ।
परस्परोपासितकुंडलानि ।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि ।
सक्तानि हर्म्येष्विव पंकजानि ॥ १९॥
ततो विमानैर्युवतीकलापैः ।
कौतूहलोद्घाटितवातयानैः ।
श्रीमत्समंतान्नगरं बभासे ।
वियद्विमानैरिव साप्सरोभिः ॥ २० ॥
वातायनानामविशालभावात् ।
अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानि ।
मुखानि रेजुः प्रमदोत्तमानां ।
बद्धाः कलापा इव पंकजानां ॥ २१ ॥
तस्मिन् कुमारं पथि वीक्षमाणाः ।
स्त्रियो बभुर्गामिव गंतुकामाः ।
ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणाः ।
नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामाः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा च तं राजसुतं स्त्रियस्ता ।
जाज्वल्यमानं वपुषा श्रिया च ।
धन्यास्य भार्येति शनैरवोचन् ।
शुद्धैर्मनोभिः खलु नान्यभावात् ॥ २३ ॥
अयं किल व्यायतपीनबाहू ।
रूपेण साक्षदिव पुष्पकेतुः ।
त्यक्त्वा श्रियं धर्ममुपैष्यतीति ।
तस्मिन्हि ता गौरवमेव चक्रुः ॥ २४ ॥

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या ।
प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीं ।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण ।
हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ॥ ९ ॥
अर्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः ।
पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीं ।
अंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ॥ १० ॥
तासां मुखैरासवगंधगर्भैः ।
व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः ।
सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥ ११ ॥
ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो ।
नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां ।
सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥ १२ ॥
स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः ।
स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या ।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ ।
लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यं ॥ १३ ॥
परस्परेण स्पृहणीयशोभं ।
न चेदिदं द्वंद्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः ।
पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥१४॥
रतिस्मरौ नूनमिवावभूतां ।
राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला ।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव ।
मनोहिजन्मन्तरसंगतिज्ञं ॥ १५ ॥

‘I can hardly doubt’, observes Prof. Cowell, ‘that Kàlidása's finished picture was suggested by the rough, but vigorous outlines in अश्वघोष; he was the Buddhist Ennius, who gave the first inspiration to the Hindu Virgil. We must not forget here, that in Kálidása the description only belongs to an episode in the main poem,——in the Buddhist author it is a natural incident in one

of the most important chapters of the whole work. Kálidása merely brings in a few characteristic details, as he is hurrying on to the marriage and the subsequent attack by the disappointed rivals; अश्वघोष dwells in a more leisurely way on the various attitudes and gestures of the women, in order to bring out in bolder relief the central figure of his hero. One verse certainly in अश्वघोष seems to me to have been directly taken and amplified by Kálidása'.

'As'vaghosha says, III. 19, "The lotus faces of the women gleamed while they looked out from the windows, with their ear-rings coming into mutual proximity, as if they were real lotuses fastened upon the houses." Kàlidása develops this crude sketch into a more finished picture, "The lattices, whose apertures were crowded with the intensely curious faces of women, perfumed with wine,—while their bee-like eyes fluttered restlessly,—seemed as though they were adorned with lotuses".

'We can prove', says Prof. Cowell, 'that Kàlidása was not insensible to Buddhist influences, for in the twelfth book of the Raghuvans'a we have that remarkable trace of Buddhism, where it is said, in the description of Ráma's journey with Sîtá in the forest, "He every now and then fell asleep from fatigue on Sîtà's lap, resting under a tree whose shadow was motionless through his divine power." This well known miracle of Buddha's child-hood does not occur in अश्वघोष, but it is given in the ललितविस्तर.

Lalitavistara:—

सा च वृक्षाणां तस्मिन् समये छाया परिवृत्ताभूत्। जंबुच्छाया च बोधिसत्त्वस्य कायं न विजहाति स्म।स तं दृष्ट्वा आश्चर्यप्राप्तः तुष्ट उदग्रमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्य जातः शीघ्रं शीघ्रं त्वरमाणरूपो राजानं शुद्धोदनमुपसंक्रम्य गाथाभिरध्यभाषात। पश्य देव कुमारोयं जंबुच्छायां हि ध्यायति। यथा शक्रोऽथवा ब्रह्मा श्रिया तेजेन शोभते॥

Raghuvans'a:—

प्रभावस्तम्भितच्छायम् आश्रितः
स वनस्पतिम्। कदाचिदङ्के सीतायाः
शिश्ये किंचिदिव श्रमात्॥ २१॥

Raghuvans'a XII. 21.

यस्य वृक्षस्य छायायां निषण्णो वरलक्ष-
णः । सैनं न जहते छायां ध्यायन्तं पुरु-
षोत्तमम् ॥

Lalitavistara XI. p. 150. *Biblio. Indi. Series.*

No doubt there is a close similarity of style and language between the poetic compositions of Asvaghosha and Kálidása, nevertheless, it cannot be said that a poet of such towering intelligence as Kàlidása whom the learned professor himself is pleased to call the 'Hindu Virgil', received his poetic inspirations from the charming song of Asvaghosha! Nor is it consistent to say that Kàlidása's finished picture was suggested by the rough, but vigorous outlines in Asvaghosha. It may be that the style of the Sanskrit Language preceding the Christian era might have received a settled form, and might be in use in that admitted form throughout the then five divisions of India. And the similarity of style that is seen in the writings of these two poets, might have been the result of that settled form of the Language. Kálidása, who wrote several dramas and poems might not have felt the necessity of borrowing his style or imitating an idea or two from Asvaghosha's Buddhacharita. Roughness and barbarity of style are the general characteristics of Buddhist works in Sanskrit. The Lalitavistara and the Buddhacharita will furnish many examples of this. The above extract from the Lalitavistara is a sufficient proof of our remark. Kàlidása's genius is seen throughout his works, and that such a poet might have taken a certain sloka from the Buddhacharita of Asvaghosha and amplified it in his Raghuvans'a, is certainly very curious. Prof. Cowell has not yet proved, from internal evidence, who has borrowed whom and how much of him. It is also possible that Asvaghosha might have copied Kálidása, since the dates of both these poets are not yet satisfactorily fixed * and finally accepted by all Orientalists.

* Sacred Books of the East Vol. XIX. Introduction, pp. XXX. *note.*, XXXI. Prof. Cowell's preface to Buddhacharita, p. V.

So unless the date of any one of these be finally fixed with documentary evidence, no judgment of a final nature can decently be pronounced on this question. Again, granted that Kàlidàsa was sensible to Buddhist influence still the well-known miracle to which Prof. Cowell alludes, and other supernatural wonders of this description are the common occurrences of almost all the Puràṇas, epics, and the artificial poetry of the Hindus.

And further on Prof. Cowell compares some parallels of Buddhacharita with those of the Rámáyaṇa and arrives at the following conclusion. He says,— "But these references are vague, and do not necessarily imply the previous existence of our present Rámàyaṇa." But on what ground he comes to this conclusion it is impossible to assert.

'In the thirteenth book we have', observes Prof. Cowell, 'the description of Buddha's temptation by Mára and his three daughters; and as Màra is distinctly identified with काम the flower-armed god, we are at once reminded of the similar scene in the कुमारसंभव, where काम discharges his arrow against *S*iva. Mâra says to Buddha, XIII. 11, "This arrow is uplifted by me,—it is the very one which was shot against सूर्यक, the enemy of the fish."

"So too, I think, when somewhat probed by this weapon, even the son of इडा, the grand-son of the Moon, became mad; and शान्तनु also lost his self-control,—how much more then one of the feebler powers, now that the age has become degenerate!"

'Màra is described in XIII. 7, 8, in very similar terms to the description of Káma in the कुमारसंभव, "Then having seized his flower-made bow and his five infatuating arrows, he drew near to the root of the अश्वत्थ tree with his children,—he the great disturber of the minds of living beings. Having fixed his left hand on the end of the barb and playing with the arrow, Mára thus addressed the calm seer as he sat on his seat, preparing to cross to the further side of the ocean of existence."

'We may surely campare,' observes the professor, those lines in the कुमारसंभव, III. 64, where काम is described—

उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः शरासनज्यां मुहुराममर्श ॥

"In the presence of उमा, fixing his aim at Hara, he repeatedly ingered the bow-string."

बुद्धचरितम्:—

तस्मिंश्च बोधाय कृतप्रतिज्ञे ।
राजर्षिवंशप्रभवे महर्षौ ।
तत्रोपविष्टे प्रजहर्ष लोकः ।
तत्रास सद्धर्मरिपुस्तु मारः ॥ १ ॥
यं कामदेवं प्रवदंति लोके ।
चित्रायुधं पुष्पशरं तथैव ।
कामप्रचाराधिपतिं तमेव ।
मोक्षद्विषं मारमुदाहरन्ति ॥ २ ॥
तस्यात्मजा विभ्रमहर्षदर्पाः ।
तिस्रो रतिप्रीतितृषश्च कन्याः ।
पप्रच्छुरेनं मनसो विकारं ।
स तांश्च ताश्चैव वचो बभाषे ॥ ३ ॥
असौ मुनिर्निश्चयवर्म बिभ्रत् ।
सत्त्वायुधं बुद्धिशरं विकृष्य ।
जिगीषुरास्ते विषयान्मदीयान् ।
तस्मादयं मे मनसो विषादः ॥ ४ ॥
यदि ह्यसौ मामभिभूय याति ।
लोकाय चाख्यात्यपवर्गमार्गं ।
शून्यस्ततोऽयं विषयो ममाद्य ।
वृत्ताच्च्युतस्येव विदेहभर्तुः ॥ ५ ॥
तद्यावदेवैष न लब्धचक्षुः ।
मद्गोचरे तिष्ठति यावदेव ।
यास्यामि तावद्व्रतमस्य भेत्तुं ।
सेतुं नदीवेग इवाभिवृद्धः ॥ ६ ॥
ततो धनुः पुष्पमयं गृहीत्वा ।
शरांस्तथा मोहकरांश्च पंच ।
सोऽश्वत्थमूलं ससुतोऽभ्यगच्छत् ।
अस्वास्थ्यकारी मनसः प्रजानां ॥ ७ ॥
अथ प्रशान्तं मुनिमासनस्थं ।
पारं तितीर्षुं भवसागरस्य ।
विषज्य सव्यं करमायुधाग्रे ।
क्रीडञ्शरेणेदमुवाच मारः ॥ ८ ॥
उत्तिष्ठ भोः क्षत्रिय मृत्युभीत ।
चरस्व धर्मं त्यज मोक्षधर्मं ।
बाणैश्च * * * विनीय लोकान् ।

कुमारसंभवम्:—

तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञाम् ।
आदाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे ।
ऐरावतास्फालनकर्कशेन ।
हस्तेन पस्पर्श तदंगमिन्द्रः ॥ १ ॥
तस्मिन्वने संयमिनां मुनीनां ।
तपःसमाधेः प्रतिकूलवर्ती ।
संकल्पयोनेरभिमानभूतम् ।
आत्मानमाधाय मधुर्जजृंभे ॥ २ ॥
दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य ।
कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे ।
प्रांतेषु संसक्तनमेरुशाखं ।
ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश ॥ ३ ॥
स देवदारुद्रुमवेदिकायाम् ।
शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
आसीनमासन्नशरीरपातः ।
त्रियंबकं संयमिनं ददर्श ॥ ४ ॥
स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं ।
पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
नालक्षयत्साध्वससन्नहस्तः ।
स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ॥ ५ ॥
तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां ।
रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।
जितेंद्रिये शूलिनि पुष्पचापः ।
स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंसे ॥ ६ ॥
उमापि नीलालकमध्यशोभि ।
विस्रंसयंती नवकर्णिकारम् ।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन
मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय ॥ ७ ॥
कामस्तु बाणावसरं प्रतीक्ष्य ।
पतंगवद्वह्निमुखं विविक्षुः ।
उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः ।
शरासनज्यां मुहुराममर्श ॥ ८ ॥
प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात् ।
त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा ।

लोकान् परान् प्राप्नुहि वासवस्य ॥ ९ ॥
पंथा हि निर्यातुमयं यशस्यो ।
यो वाहितः पूर्वतमैर्नरेन्द्रैः ।
जातस्य राजर्षिकुले विशाले ।
भैक्षाकमश्लाघ्यमिदं प्रपत्तुं ॥ १० ॥
अथाद्य नोत्तिष्ठसि निश्चितात्मा ।
भव स्थिरो मा विमुचः प्रतिज्ञां ।
मयोद्यतो ह्येष शरः स एव ।
यः सूर्यके मीनरिपौ विमुक्तः ॥ ११ ॥
पृष्टः स चानेन कथंचिदैडः ।
सोमस्य नप्ताप्यभवद्विचित्तः ।
स चाभवच्छांतनुरस्वतंत्रः ।
क्षीणे युगे किं बत दुर्बलोन्यः ॥ १२ ॥
तत्क्षिप्रमुत्तिष्ठ लभस्व संज्ञां ।
बाणो ह्ययं तिष्ठति लेलिहानः ।
प्रियाभिधेयेषु रतिप्रियेषु ।
यं चक्रवाकेष्वपि नोत्सृजामि ॥ १३ ॥
Buddhacharita, Canto XIII.

धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥ ९ ॥
अथेंद्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः ।
पुनर्वशित्वाद्बलवन्निगृह्य ।
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुः ।
दिशामुपांतेषु ससर्ज दृष्टिं ॥ १० ॥
स दक्षिणापांगनिविष्टमुष्टिं ।
नतांसमाकुंचितसव्यपादम् ।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं ।
प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिं ॥ ११ ॥
तपःपरामर्शविवृद्धमन्योः ।
भ्रूभंगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदार्चिः सहसा तृतीयाद् ।
अक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥१२॥
क्रोधं प्रभो संहर संहरेति ।
यावद्गिरः खे मरुतां चरंति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा ।
भस्मावशेषं मदनं चकार ॥ १३ ॥
Kumàrsambhava, Canto III.

Readers of Raghuvans'a will well remember Kàlidàsa's peculiar way of using the Periphrastic Perfect and Future. A parallel of this is also found in Buddhacharita.

बुद्धचरितम्ः—
यथावदेनं दिवि देवसंघा
दिव्यैर्विशेषैर्महयां च चक्रुः ॥
Canto VI, 58.

रघुवंशम्ः—
तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥
Canto IX, 61.
प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ॥
Canto XIII, 36.
संयोजयां विधिवदास समेतबंधुः ॥
Canto XVI, 86.

Some extracts illustrating the use of similar words and phrases are cited below.

बुद्धचरितंः—
क्वचित्प्रदध्यौ विललाप च क्वचित् ।
क्वचित्प्रचस्खाल पपात च क्वचित् ।
Canto VI, 68.
तथापि पापीयसि निर्जिते गते ।
दिशः प्रसेदुः प्रबभौ निशाकरः ।
दिवो निपेतुर्भुवि पुष्पवृष्टयः ।
रराज योषेव विकल्मषा निशा ।।
Canto XIII, 73.
वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा ।
दिव्यानि वासांस्यवपातयंतः ।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे ।
जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ॥
Canto I, 41.

रघुवंशम्ः—
क्वचित्पथा संचरते सुराणां ।
क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ॥
Canto XIII, 19.
दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः ।
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं ।
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥
Canto III, 14.

And many more may be added to this list.

'The Buddhacharita,' observes Prof. Cowell, 'is always called in the colophons of the different sargas a महाकाव्य, and it certainly shows an acquaintance on its author's part with the teachings of the Hindu rhetoric or अलंकार. Of course the common figures उपमा, उत्प्रेक्षा, and रूपक occur everywhere; but we find now and then specimens of more elaborate ornament.' He then gives some specimens of the elaborate Alankáras, and finally makes some remarks on Asvaghosha's style. He says,—'The style of the poem is peculiar, as there is often a mixture of roughness and rusticity which unless we can account for it by corruption of the text, does not harmonise with the frequent attempts at ornament and polish. Some of the words used are only known to us from the early lexicons, as the अमरकोश, &c., as *e. g.* धिष्ण्य, 'a dwelling,' which is a favourite word, and occurs four or five times (this word is also found in Kálidàsa's *S*akuntalà, A. IV.); कृशान, 'gold,' II. 36; गंत्री, 'a cart,' (अमरकोश, हेमचन्द्र), II. 22; लेखर्षभ, (अमरकोश), 'Indra,' VII. 8.; I may also mention संग्राहक, 'a charioteer,' III. 27, which occurs in Páli; रसा, 'the earth,' V. 5; याचितक, 'a loan,' XI. 22, which occurs in Pà*n*ini IV. 4, 21, and the अमरकोश; दुष्कुह, I. 18, 'hard to be roused to wonder,' 'incredulous,' which occurs in the दिव्यावदान; धर्मन् is used for धर्म, 'custom,' in V. 77 and XI. 20.'

Thus then the universally settled form of the Sanskrit language, or in other words, the highest civilised form of the spoken language of India in which Asvaghosha wrote his works, was the same at a time when the celebrated poets Bhàsa, Saumilla and Kálidàsa also produced their works. There is no absolute certainty about the date of Asvaghosha. *Rev. S. Beal says;—'I am told, however, by Mr. Rockhill, that Táránátha, the Tibetan author, mentions three writers of the name af Asvaghosha, the 'great one,' the younger, and one who lived in the eighth century A. D. This

* See Prof. Cowell's preface to Buddhacharita, p. V.; also Sacred Books of the East, Vol. XIX, introduction, p. XXXI.

latter, who was also called Cura, could not be the Asvaghosha of our text, as the translation of the work dates from the fifth century. And as of the other two, one was called 'the great' and the other 'the younger,' it admits of little question that the बोधिसत्त्व would be the former. But in the Chinese Catalogues, so far as I have searched, there is no mention made of more than one writer called by this name, and he is ever affirmed to have been a contemporary of कनिष्क. In the book Tsah–pao–tsang–king, for instance, there are several tales told of the *K*andan 'Kanika' or 'कनिष्क,' in one of which Asvaghosha is distinctly named as his religious adviser and he is there called the 'बोधिसत्त्व;' so that, according to evidence derived from Chinese sources, there seems no reason to doubt that the author of the book I have here translated was living at and before the time of the Scythian invasion of मगध under the *K*andan king कनिष्क. With respect to the date of this monarch we have no positive evidence; the weight of authority sides with those who place him at the beginning of the *S*aka period, *i. e.* A. D. 78. It is therefore possible that the emissaries who left China A. D. 64 and returned A. D. 67 may have brought back with them some knowledge of the work of Asvaghosha called Fo–pen–hing, or of the original then circulating in India, on which अश्वघोष founded his poem. It is singular at least that the work of अश्वघोष is in five chapters as well as that translated by *K*u–fa–lan. In any case we may conclude that as early as about A. D. 70, if not before, there was in India a work known as बुद्धचरित * (Fo–pen–hing).'

From the above extract it is clear that there is no positive certainty about the date of कनिष्क, and the date of अश्वघोष which is dependent on the date of कनिष्क is also uncertain. From the internal evidence of the style and language in which both the poets wrote their works, and of which some parallels have been quoted above, we may conclude that Asvaghosha may possibly have lived a century or 75 years before Kàlidása and may have

* Sacred Books of the East, Vol. XIX. Introduction, p. XXXI.

been a contemporary of Bhása, Saumilla and others whom Kálidása in the prelude of his *Ma'lavika'gnimitra* gives distinct priority. And it is also probable, nay almost certain, that Kálidása, the Virgil of the Hindus, may have lived some 40 years before the beginning of the Christian era, and may also have been a poet in the imperial court of Vikramáditya who began to reign from 57. B. C. * And thus the theory of Sir William Jones carries weight and importance since it is supported by the facts and arguments which we have given above. The tradition which, as we learn from Mallinàtha's commentary on the 14th verse of Meghadûta, was current at his time, may now hardly be relied on.

Poona,
25th December 1893. } G. R. N.

---

* See pages 51—52 of this Introduction. In his 'First century account of birth of Buddha,' J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII. p. 287, Dr. Peterson says that 'Asvaghosha was a convert to Buddhism in manhood, and his verses are saturated with the legends of the Mahàbhàrata and the Rámàyana, and with the style of Kàlidàsà. **** Whether it is possible to prove that he had read Kàlidàsa's poems is a problem in which I invite your collaboration.'

बुद्धचरितम्ः—
धमार्थकामा विषयं मिथोऽन्यं
न वेशमाचक्रमुरस्य नीत्या ॥
I. 13.
तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः
कश्चित्क्वचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके ।
राज्ञामृषीणां च हितानि तानि
कृतानि पूर्वैरकृतानि पुत्रैः ॥
B. I. 52.
महात्मनि त्वय्युपपन्नमेत—
त्प्रियातिथौ त्यागिनि धर्मकामे ॥
B. I. 62.

An echo of Raghuvansa XVII. 57.
न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च
तेन तौ । नार्थं कामेन कामं वा
सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥
तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥
R. XI. I.
सर्वं सखे त्वय्युपपन्नमेतत् ॥
Ku. III. 12.

Compare also the verses I. 70, I. 71, I. 72 of the Buddhacharita with V. 5, V. 6, V. 7, V. 8, V. 9, V. 10 and V. 11, of the Raghuvansa o Kálidása.

अथ

मेघदूतम्

संजीविन्या समेतम् ।

पूर्वमेघः ।

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये ।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये ॥
अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तं नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥
शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥
इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

"आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्" इति शास्त्रात्काव्यादौ वस्तुनिर्देशात्कथां प्रस्तौति—

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

१. कश्चिदिति ॥ स्वाधिकारात्स्वनियोगात्प्रमत्तोऽनवहितः ॥ "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः । "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" इत्यपादानत्वम् । तस्मात्पञ्चमी ॥ अत एवापराधाद्धेतोः । कान्ताविरहेण गुरुणा दुर्भरे-

---

1. A certain *Yaksha*, swerving from his duty and being therefore spoiled of his glories by his lord's curse, of an year's duration, aggravated by separation from his wife made his abode amongst the hermitages on *Ramagiri* having dense *Nameru* trees and waters sanctified by ablutions of *Janaka's* daughter (*Sita*).

---

1. W. C1. C2. K1. K2. G1. G2. N.R. M. स्वाधिकारप्रमत्तः for स्वाधिकारात्प्रमत्तः. G2. K1. K2. W. N. M. वर्षभोग्येन for वर्षभोग्येण.

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

ण । दुस्तरेणेत्यर्थः ॥ "गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे" इति शब्दार्णवे ॥ वर्षं संवत्सरं भोग्येन ॥ "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया । "अत्यन्तसंयोगे च" इति समासः । "कुमति च" इति णत्वम् ॥ भर्तुः स्वामिनः शापेन । अस्तंगमितो महिमा सामर्थ्यं यस्य सोऽस्तंगमितमहिमा ॥ अस्तमिति मकारान्तमव्ययम् । तस्य "द्वितीया—" इति योगविभागात्समासः ॥ कश्चिदनिर्दिष्टनामा यक्षो देवयोनिविशेषः ॥ "विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिंनराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः ॥ जनकतनयायाः सीतायाः स्नानैरवगाहनैः पुण्यानि पवित्राण्युदकानि येषु तेषु । पावनेष्वित्यर्थः ॥ छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः ॥ शाकपार्थिवादित्वात्समासः ॥ स्निग्धाः सान्द्रा श्छायातरवो नमेरुवृक्षा येषु तेषु । वसतियोग्येष्वित्यर्थः ॥ "स्निग्धं तु मसृणे सान्द्र" इति । "छायावृक्षो नमेरुः स्यात्" इति च शब्दार्णवे ॥ रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु वसतिम् ॥ "वहिवस्यर्तिभ्यश्च" इत्यौणादिकोऽतिप्रत्ययः ॥ चक्रे कृतवान् ॥ अत्र काव्ये तत्र तत्र नगनगरार्णवादिवर्णनासंभवान्महाकाव्यत्वं । रसो विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारः । तत्राप्युन्मादावस्था । अतएवैकत्रानवस्थानं सूचितमाश्रमेष्विति बहुवचनेन ॥ सीतां प्रति रामस्य हनूमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसंदेशं कविः कृतवानित्याहुः ॥ अत्र काव्ये सर्वत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् । तदुक्तम्— "मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्" इति ॥

२. तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ । अबलाविप्रयुक्तः कान्ताविरही । कनकस्य वलयः कटकम् ॥ "कटकं वलयोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः ॥ तस्य भ्रंशेन पातेन रिक्तः शून्यः प्रकोष्ठः कूर्परादधःप्रदेशो यस्य स तथोक्तः ॥ "कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात्प्रकोष्ठः कूर्परादधः" इति शाश्वतः ॥ विरहदुःखा-

2. Separated from his wife, with his fore-arm bare on account of the slipping of the gold bracelet, that pining *Yaksha*, having passed some months on that mountain, beheld, on the first day of *Âshadha* a cloud clinging around the top of the mountain, and as fine-looking as an elephant giving side-blows with his tusks in his sports of butting at a bank.

2. K2. M. प्रशमदिवसे for प्रथमदिवसे.

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

त्कृश इत्यर्थः । कामी कामुकः स यक्षः । कतिचिन्मासान् । अष्टौ मासानित्यर्थः । " शेषान्मासान्गमय चतुरः " इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ नीत्वा यापयित्वा । आषाढानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी ॥ " नक्षत्रेण युक्तः कालः " इत्यण् । " टिड्ढाणञ् " इत्यादिना ङीप् ॥ साषाढ्यस्मिन्पौर्णमासीत्याषाढो मासः ॥ " सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम् " इत्यण् ॥ तस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुमाक्रान्तकूटम् । वप्रक्रीडा उत्खातकेलयः ॥ " उत्खातकेलिः क्रीडाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते " इति शब्दार्णवे ॥ तासु परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारः ॥ " तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः " इति हलायुधः ॥ स चासौ गजश्च स इव प्रेक्षणीयः दर्शनीयः तं मेघं ददर्श ॥ गजप्रेक्षणीयमित्यत्रेवलोपाल्लुप्तोपमा ॥ केचित् " आषाढस्य प्रथमदिवसे " इत्यत्र " प्रत्यासन्ने नभसि " इति वक्ष्यमाणनभोमासप्रत्यासत्त्यर्थं " प्रशमदिवसे " इति पाठं कल्पयन्ति तदसंगतम् । प्रथमातिरेके कारणाभावात् । नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमित्युक्तमिति चेन्न । प्रत्यासत्तिमात्रस्य मासप्रत्यासत्त्यैव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः । अत्यन्तप्रत्यासत्तेरुपयोगाभावेनाविवक्षितत्वात् । विवक्षितत्वे वा स्वपक्षेऽपि प्रशमदिवसान्तिमक्षणे मेघदर्शनकल्पनायां प्रमाणाभावेन तदसंभवात् । प्रत्युतास्मत्पक्ष एव कुशलसंदेशस्य भाव्यनर्थप्रतीकारार्थस्य पुरत एवानुमानमुक्तं भवतीत्युपयोगासिद्धिः ॥ ननून्मत्तस्य नायं विवेक इति चेन्न । उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रतीकारार्थं प्रवृत्तिरपीति संदेश एव माभूत् ॥ तथा च काव्यारम्भ एवाप्रसिद्धः स्यादित्यहो मूलच्छेदी पाण्डित्यप्रकर्षः । कथं तर्हि " शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ " इत्यादिना भगवत्प्रबोधावधिकस्य शापस्य मासचतुष्टयावशिष्टस्योक्तिः । दशदिवसाधिक्यादिति चेत्स्वपक्षेऽपि कथं सा विंशतिदिवसैर्न्यूनत्वादिति संतोष्टव्यम् । तस्मादीषद्वैषम्यमविवक्षितमिति सुष्ठूक्तं " प्रथमदिवसे " इति ॥

३ तस्येति ॥ राजानो यक्षाः ॥ " राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः " इति विश्वः ॥ राज्ञां राजा राजराजः कुबेरः ॥ " राजराजो धना-

---

3. Having some how or other placed himself in front of the cloud the cause of the production of longing, the follower of the king of the *Yakshas* meditated long with suppressed tears: at the sight of a ceoud the heart even of a man who is happy is agitated,–what then of him when the person longing for embraces round his neck is far away.

---

3. W. K2. G1. G2. R. M. केतकाधान°, K1. N. M. केतकीधान° for कौतुकाधान°.

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धिपः " इत्यमरः । " राजाहःसखिभ्यष्टच् " इति टच्प्रत्ययः ॥ तस्यानुचरो यक्षः । अन्तर्बाष्पो धीरोदात्तत्वादन्तःस्तम्भिताश्रुः सन् । कौतुकाधानहेतोरभिलाषोत्पादकारणस्य ॥ " कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः " इति विश्वः ॥ तस्य मेघस्य पुरोऽग्रे कथमपि । गरीयसा प्रयत्नेनेत्यर्थः ॥ " ज्ञानहेतुविवक्षायामप्यादि कथमव्ययम् । कथमादि तथाप्यन्तं यत्नगौरवबाढयोः " इत्युज्ज्वलः ॥ स्थित्वा चिरं दध्यौ चिन्तयामास ॥ "ध्यै चिन्तायाम् " इति धातोर्लिट् ॥ मनोविकारोपशमनपर्यन्तमिति शेषः ॥ विकारहेतुमाह--मेघालोक इति ॥ मेघालोके मेघदर्शने सति सुखिनोऽपि प्रियादिजनसंगतस्यापि चेतश्चित्तमन्यथाभूता वृत्तिर्व्यापारो यस्य तदन्यथावृत्ति भवति । विकृतिमापद्यत इत्यर्थः । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि कण्ठालिङ्गनार्थिनि जने दूरे संस्था स्थितिर्यस्य तस्मिन्दूरसंस्थे सति किं पुनः । विरहिणः किमुत वक्तव्यमित्यर्थः । विरहिणां मेघसंदर्शनमुद्दीपनं भवतीति भावः ॥ अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । तदुक्तं दण्डिना-- " ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन । तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः " इति ॥

अथ समाहितान्तःकरणः सन् किं कृतवानित्याह—

४. प्रत्यासन्न इति ॥ स यक्षः । यश्चिरं दध्यौ स इत्यर्थः । नभसि श्रावणे ॥ " नभः खं श्रावणो नभाः" इत्यमरः ॥ प्रत्यासन्न आषाढस्यानन्तरं संनिकृष्टे । प्राप्ते सतीत्यर्थः । दयिताजीविताल्म्बनार्थी सन् । वर्षाकालस्य विरहदुःखजनकत्वात् " उत्पन्नानर्थप्रतीकारादनर्थोत्पत्तिप्रतिबन्ध एव वरम् " इति न्यायेन प्रागेव प्रियाप्राणधारणोपायं चिकीर्षुरित्यर्थः । जीवनस्योदकस्य मूतः पटबन्धो वस्त्रबन्धो जीमूतः ॥ पृषोदरादित्वात्साधुः । " मूतः स्यात्पटबन्धेऽपि " इति रुद्रः ॥ तेन जीमूतेन जलधरेण प्रयोज्येन ॥ स्वकुशलमयीं स्वक्षेमप्रधानां

4. Desirous of sustaining the life of his wife, as the month of *Srâvana* was drawing nigh, and therefore intending to send tidings of his welfare (to her) by the cloud, the *Yaksha* (himself) delighted, bade welcome, in words full of affection, to the cloud to whom an offering of fresh *Kutaja* flowers had been made.

4. W. K1. G1. G2. R. N. M. जीविताल्म्बनार्थं, M. जीविताल्म्बनार्थाम् for जीविताल्म्बनार्थी.; K2. M. संप्रत्यग्रैः for स प्रत्यग्रैः.

धूमज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

प्रवृत्तिं वार्ताम् ॥ " वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः" इत्यमरः ॥ हारयिष्यन्प्रापयिष्यन् " लृट् शेषे च" इति चकारात्क्रियार्थक्रियोपपदाल्लृट्प्रत्ययः । जीवनार्थं कर्म जीवनप्रदेनैव कर्तव्यमिति भावः ॥ हृक्रोरन्यतरस्याम्" इति कर्मसंज्ञाया विकल्पात् । पक्षे कर्तरि तृतीया ॥ प्रत्यग्रैरभिनवैः कुटजकुसुमैर्गिरिमल्लिकाभिः ॥ " कुटजो गिरिमल्लिका" इति हलायुधः ॥ कल्पितार्घाय कल्पितोऽनुष्ठितोऽर्घः । पूजाविधिर्यस्मै तस्मै ॥ " मूल्ये पूजाविधावर्घः" इत्यमरः ॥ तस्मै जीमूताय ॥ " क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्" इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ प्रीतिप्रमुखानि प्रीतिपूर्वकाणि वचनानि यस्मिन्कर्मणि तत्प्रीतिप्रमुखवचनं यथा तथा । शोभनमागतं स्वागतं स्वागतवचनं प्रीतः सन्व्याजहार । कुशलागमनं पप्रच्छेत्यर्थः ॥ नाथेन त्वत्र " प्रत्यासन्ने नभसि" इत्यत्र समाधानेन " प्रत्यासन्ने मनसि"इति पाठः कल्पितः । प्रत्यासन्ने प्रकृतिमापन्ने सतीत्यर्थः । यस्तु तेनैव पूर्वपाठविरोधः प्रदर्शितः सोऽस्माभिः " आषाढस्य प्रथमदिवसे " इत्येतत्पाठविकल्पसमाधानेनैव समाधायि ॥ ननु चेतनसाध्यमर्थं कथमचेतनेन कारयितुं प्रवृत्त इत्यपेक्षायां कविः समाधत्ते—

५. धूमेति ॥ धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुद्वायुश्च तेषां संनिपातः संघातो मेघः क्व । अचेतनत्वात्संदेशानर्ह इत्यर्थः । पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः ॥ " करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इत्यमरः ॥ प्राणिभिश्चेतनैः ॥ " प्राणी तु चेतनो जन्मी " इत्यमरः ॥ प्रापणीयाः प्रापयितव्याः । संदिश्यन्त इति संदेशास्त एवार्थाः क्व । इत्येवमौत्सुक्यादिष्टार्थोद्युक्तत्वात् ॥ " इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः" इत्यमरः ॥ अपरिगणयन्नविचारयन्गुह्यको यक्षस्तं मेघं ययाचे याचितवान् ॥ " याचृ याच्ञायाम्" ॥ तथाहि । कामार्त्ता मदनातुराश्चेतनाश्चाचेतनाश्च तेषु विषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः । कामान्धानां युक्तायुक्तविवेकशून्यत्वादचेतनयाच्ञा न विरुध्यत इत्यर्थः ॥ अत्र मेघसंदेशयोर्विरूपयोर्घटनाद्वि-

5. Where (on one hand) a cloud, a conglomeration of smoke, fire, water and wind? and where (on the other) the matter of messages fit to be conveyed by animate beings (men) with able limbs? in his eagerness not considering this (incongruity) the *Yaksha* made his request to it; for those who are overcome by love are naturally incapable of discriminating between animate and inanimate objects.

5. M. प्रणयकृपणाः for प्रकृतिकृपणाः

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

षमालंकारः तदुक्तम्–"विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्य वा भवेत् । विरूपघटना चासौ विषमालंकृतिस्त्रिधा" इति । सा चार्थान्तरन्यासानुप्राणिता तत्समर्थकत्वेनैव चतुर्थपादे तस्योपन्यासात् ॥ संप्रति याच्ञाप्रकारमाह––

६. जातमिति ॥ हे मेघ । त्वां भुवनेषु विदिते भुवनविदिते ॥ "निष्ठा" इति भूतार्थे क्तः ।"मतिबुद्धि–" इत्यादिना वर्तमानार्थत्वेऽपि "क्तस्य च वर्तमाने" इति भुवनशब्दस्य षष्ठ्यन्ततानियमात्समासो न स्यात् । "क्तेन च पूजायाम्" इति निषेधात् ॥ पुष्कराश्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठास्तेषां वंशे जातम् । महाकुलप्रसूतमित्यर्थः । कामरूपमिच्छाधीनविग्रहम् । दुर्गादिसंचारक्षममित्यर्थः । मघोन इन्द्रस्य प्रकृतिपुरुषं प्रधानपुरुषं जानामि । तेन त्वत्प्रभुत्वाभिजात्यादिगुणयोगित्वेन हेतुना विधिवशाद्दैवायत्तत्वात् ॥ "विधिर्विधाने दैवे च" इत्यमरः ॥ वशमायत्ते ॥ "वशमिच्छाप्रभुत्वयोः" इति विश्वः ॥ दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं त्वय्यर्थित्वं गतः ॥ ननु याचकस्य याच्ञायां याच्यगुणोत्कर्षः कुत्रोपयुज्यत इत्याशङ्क्य दैवाद्याच्ञाभङ्गेऽपि लाघवदोषाभाव एवोपयोग इत्याह––याच्ञेति ॥ तथाहि अधिगुणेऽधिकगुणे पुंसि विषये याच्ञा मोघा निष्फलापि वरमीषत्प्रियम् । दातुर्गुणाढ्यत्वात्प्रियत्वं याच्ञावैफल्यादीषत्प्रियत्वमिति भावः ॥ अधमे निर्गुणे याच्ञा लब्धकामापि सफलापि न वरम् । ईषत्प्रियमपि न भवतीत्यर्थः ॥ "देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक्प्रिये" इत्यमरः ॥ अर्थान्तरन्यासानुप्राणितः प्रेयोऽलंकारः । तदुक्तम् दण्डिना–"प्रेयः प्रियतराख्यानम्" इति ॥ एतदाद्ये पादत्रये चतुर्थपादस्थेनार्थान्तरन्यासेनोपजीवितमिति सुव्यक्तमेतत् ॥

---

6. I know thee (to be) born in the world-renowned race of the *Pushkaras* and the *Âvartakas* (and to be) Indra's chief officer, wearing any shape at will; therefore I, separated from my relation (wife) by the power of fate, have (preferred myself to) become thy suppliant: better a request (though) unsuccessful (made) to a worthy person than one (made) to a base one and successful.

---

6. P. M. पुष्कलावर्तकानाम् for पुष्करावर्तकानाम्. M. वंध्या for मोघा.

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य । Convey
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥
त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिककवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

७. संतप्तानामिति ।। हे पयोद । त्वं संतप्तानामातपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् ।। " संतापः संज्वरः समौ " इत्यमरः ।। शरणं पयोदानेनातपखिन्नानां प्रोषितानां स्वस्थानप्रेरणया च रक्षकोऽसि ।। "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः ।। तत्तस्मात्कारणाद्धनपतेः कुबेरस्य क्रोधेन विश्लेषितस्य प्रियया वियोजितस्य मे मम संदेशं वार्तां प्रियाया हर । प्रियां प्रति नयेत्यर्थः ।। संबन्धसामान्ये षष्ठी । संदेशहरणेनावयोः संतापं नुदेत्यर्थः ।। कुत्र स्थाने सा स्थिता तत्स्थानस्य वा किं व्यावर्तकं तत्राह—गन्तव्येति ।। बहिर्भवं बाह्यम् ।। " बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्च " इति ञ्यः ।। बाह्य उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि निर्मलानि हर्म्याणि धनिकभवनानि यस्यां सा तथोक्ता ।। " हर्म्यादि धनिनां वासः " इत्यमरः ।। अनेन व्यावर्तकमुक्तम् ।। अलका नामालकेति प्रसिद्धा यक्षेश्वराणां वसतिः स्थानं ते तव गन्तव्या । त्वया गन्तव्येत्यर्थः ।। " कृत्यानां कर्तरि वा " इति षष्ठी ।।

मदर्थं प्रस्थितस्य ते पथिकाङ्गनाजनाश्वासनमानुषङ्गिकं फलमित्याह—

८. त्वामिति ।। पवनपदवीमाकाशमारूढं त्वाम् । पन्थानं गच्छन्ति ते पथिकाः ।। " पथः ष्कन् " इति ष्कन्प्रत्ययः ।। तेषां वनिताः प्रोषित-

7. Thou art, O cloud, the shelter of the afflicted, convey, therefore, to my beloved a message from me separated (from her) by the anger of the god of wealth: thou shouldst repair to the abode of the lord of the *Yakshas*, *Alakâ* by name, having palaces illumined by the moonlight (issuing) from the head of *Siva* residing in the outer garden.

8. The women whose husbands are abroad, sustaining themselves by the hope (of their return), will with the ends of their curls lifted

7. M. धनपतेः क्रोध° for धनपतिक्रोध°.

8. P. W. B. C2. G2. K1. N. R. M. आश्वसन्त्यः for आश्वसत्यः ; P. अयमिव for अहमिव.

बाह्° उद्यान ह्°

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

भर्तृकाः ॥ प्रत्ययात्प्रियागमनविश्वासात् ॥ " प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु "इत्यमरः॥ आश्वसत्यो विश्वसिताः॥ श्वसिधातोः शत्रन्तात् " उगितश्च "इति ङीप् ॥ तथोद्गृहीतालकान्ता दृष्टिप्रसारार्थमुन्नमय्य धृतालकाग्राः सत्यो भक्षिप्रेक्षिष्यन्ते । अत्युत्कण्ठतया द्रक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥ मदागमनेन पथिकाः कथमागमिष्यन्तीत्यत्राह—तथाहि । त्वयि संनद्धे व्यापृते सति विरहेण विधुरां विवशां जायां क उपेक्षेत ॥ न कोऽपीत्यर्थः ॥ अन्योऽपि मद्व्यतिरिक्तोऽपि यो जनोऽहमिव पराधीनवृत्तिः परायत्तजीवनको न स्यात् । स्वतन्त्रस्तु न कोऽप्युपेक्षेतेति भावः ॥ अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः ॥ तदुक्तम्— " कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परम् ॥ समर्थनं यत्र सोऽर्थान्तरन्यास उदाहृतः " इति लक्षणात् ॥

निमित्तान्यपि ते शुभानि दृश्यंत इत्याह—

९. मन्दं मन्दमिति ॥ अनुकूलपवनो वायुस्त्वां मन्दं मन्दम् । अतिमन्दमित्यर्थः ॥ अत्र कथंचिद्वीप्सायामेव द्विरुक्तिर्निर्वाह्या । " प्रकारे गुणवचनस्य " इत्येतदाश्रयणे तु कर्मधारयवद्भावे सुब्लुकि मन्दमन्दमिति स्यात् । तदेवाह वामनः—"मन्दं मन्दमित्यत्राप्रकारार्थे द्विर्भावः" इति ॥ यथा सदृशम् । भाविफलानुरूपमित्यर्थः ॥ " यथा सादृश्ययोग्यत्ववीप्सास्वार्थानतिक्रमे " इति यादवः ॥ नुदति प्रेरयति । अयं सगन्धः सगर्वः । संबन्धीति केचित् ॥ " गन्धो गन्धक आमोदे लेशे संबन्धगर्वयोः " इत्युभयत्रापि विश्वः ॥ ते तव वामो वामभागस्थः ॥ " वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात्सव्ये वामगतेऽपि च " इति

---

up, behold thee borne on the wind's path (i. e. the sky): when thou art stirring in the sky, what other man, whose life might not be dependent upon another (man) as mine is, would leave his wife (alone) distressed by separation.

9. A favourable breeze is driving thee very gently and auspiciously and this proud *Chataka* is warbling sweetly on thy left side; the female cranes too, arranged in wreathes in the sky in order to experience the happiness of gestation, are sure to wait upon thee (who art so) lovely to the sight.

---

9. K2. M. तोयगृध्नुः, W. G1. G2. K1. N. R. M. ते सगर्वः, M. ते सबन्धुः for ते सगन्धः ; W. M. गर्भाधानक्षमपरिचयं, M. गर्भाधानस्थिरपरिचयं for गर्भाधानक्षणपरिचयात्. ; R. नयनसुखदं, for नयनसुभगं. P. reads this stanza as 10th.

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥
त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

विश्वः ॥ अद्रेरद्रिकल्पस्य ॥ दिङ्नागाचार्यस्य शृङ्गं प्राधान्यम् ॥ " शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च " इत्यमरः ॥ हरतीति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरङ्गनाभिश्च दृष्टोत्साहः सन्खमुत्पतोच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्तिरिति ॥ " संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि । स्थित्वानुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् " इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य कवेर्निचुलसंज्ञेत्याहुः ॥

१५. रत्नेति ॥ रत्नच्छायानां पद्मरागादिमणिप्रभाणां व्यतिकरो मिश्रणमिव प्रेक्ष्यं दर्शनीयमाखण्डलस्येन्द्रस्यैतद्धनुःखण्डम् ॥ एतदिति हस्तेन निर्देशो विवक्षितः ॥ पुरस्तादग्रे वल्मीकाग्राद्वामलूरविवरात् ॥ " वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम् " इत्यमरः ॥ प्रभवत्याविर्भवति । येन धनुःखण्डेन ते तव श्यामं वपुः । स्फुरितरुचिनोज्ज्वलकान्तिना बर्हेण पिच्छेन ॥ " पिच्छबर्हे नपुंसके " इत्यमरः ॥ गोपवेषस्य विष्णोर्गोपालस्य कृष्णस्य श्यामं वपुरिव । अतितरां कान्तिं शोभामापत्स्यते प्राप्स्यति ॥

१६. त्वयीति ॥ कृषेर्हलकर्मणः फलं सस्यं त्वयि ॥ अधिकरणविवक्षायां

15. Here rises in front from the mouth of an anthill, a piece of Indra's bow as fine-looking as an intermingling of the rays of jewels; whereby thy dark body will attain to a great splendour as that of *Vishnu* dressed as a cowherd does by means of a peacock's plumes . glittering lustre.

16. Being drunk in by the eyes, of the country dames, moist from

15. P. रत्नच्छायव्यतिकरः for रत्नच्छायाव्यतिकरः ; W. M. आलप्स्यते for आपत्स्यते.

16. C1. C2. K2. M. भ्रूविलासानभिज्ञैः for भ्रूविकारानभिज्ञैः. P. W. N. M. °सुरभिक्षेत्रं for °सुरभि क्षेत्रम्. K2. M. प्रवलय गतीं for व्रज लघुगतिः ; W. G1. N. M. किञ्चिदेव for भूय एव.

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

सप्तमी ॥ आयत्तमधीनम् ॥ " अधीनो निघ्न आयत्तः " इत्यमरः ॥ इति हेतोः प्रीत्या स्निग्धैः। अकृत्रिमप्रेमार्द्रैरित्यर्थः। भ्रूविकाराणां भ्रूविलासानामनभिज्ञैः। पामरत्वादिति शेषः । जनपदवधूनां पल्लीयोषितां लोचनैः पीयमानः सादरं वीक्ष्यमाणः सन् । मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम् ॥ "मालमुन्नतभूतलम्" इत्युत्पलमालायाम् ॥ सद्यस्तत्कालमेव सीरैर्हलैरुत्कषणेन कर्षणेन सुरभि घ्राणतर्पणं यथा तथारुह्य । तत्राभिवृष्येत्यर्थः ॥ " सुरभिर्घ्राणतर्पणः " इत्यमरः ॥ किंचित्पश्चाद् व्रज गच्छ ॥ लघुगतिस्तत्र निर्वृष्टत्वात्क्षिप्रगमनः सन् ॥ " लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरः ॥ भूयः पुनरप्युत्तरेणैवोत्तरमार्गेणैव व्रज ॥ तृतीयाविधाने "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् " इति तृतीया ॥ यथा कश्चिद्बहुवल्लभः पतिः कुत्रचित्क्षेत्रे कलत्रे गूढं विहृत्य ॥ " क्षेत्रं शरीरकेदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः" इति विश्वः ॥ दाक्षिण्यभङ्गभयान्नीचमार्गेण निर्गत्य पुनः सर्वाध्यक्षं संचरति तद्वदिति ध्वनिः ॥

१७. त्वामिति ॥ आम्राश्चूताः कूटेषु शिखरेषु यस्य स आम्रकूटो नाम सानुमान्पर्वतः ॥ " आम्रश्चूतो रसालोऽसौ" इति । " कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्" इति चामरः ॥ आसारो धारावृष्टिः ॥ "धारासंपात आसारः " इत्यमरः ॥ तेन प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्निर्येन तम् । कृतोपकारमित्यर्थः । अध्वश्रमेण परिगतं व्याप्तं त्वां साधु सम्यङ्मूर्ध्ना वक्ष्यति वोढा ॥ वहेर्लृट् ॥ तथाहि । क्षुद्रः कृपणोऽपि ॥ "क्षुद्रो दरिद्रे कृपणे नृशंसे "इति यादवः॥ संश्रयाय संश्रयणाय मित्रे सुहृदि ॥ " अथ मित्रं सखा सुहृत्" इत्यमरः ॥ प्राप्ते आगते सति । प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वोपकारपर्यालोचनया विमुखो न भवति । यस्तथा तेन प्रकारेणोच्चैरुन्नतः स

---

affection and ignorant of the amorous sportings of the eye-brows because the fruit of husbandry depends upon thee, mount instantly to the elevated hilly spot called *Mala* so as to make it fragrant by reason of the upturning of the plough; and having gone a little westward proceed again in the northernly direction at a quick pace.

17. On its summit the mountain *Amrakuta* will well bear thee (who art) overcome by the fatigue of the journey and whose showers have allayed (its) forest conflagration; even a low man, out of regard to former favours done, turns not his back on a friend who comes (to him) for refuge, much less will one so exalted.

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥
स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

आम्रकूटः किं पुनर्विमुखो न भवतीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ एतेन प्रथमावसथे सौख्यलाभात्ते कार्यसिद्धिरस्तीति सूचितम् । तदुक्तं निमित्तनिदाने— " प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिलेऽध्वनि । शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशुभं ध्रुवम्" इति ॥

१८. छन्नेति ॥ हे मेघ । परिणतैः परिपक्वैः फलैर्द्योतन्त इति तथोक्तैः । आषाढे वनचूताः फलन्ति पच्यन्ते च मेघवातेनेत्याशयः । काननाम्रैर्वनचूतैश्छन्नोपान्त आवृतपार्श्वोऽचल आम्रकूटाद्रिः स्निग्धवेणीसवर्णे मसृणकेशबन्धच्छाये । श्यामवर्ण इत्यर्थः ॥ " वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ" इति यादवः ॥ त्वयि शिखरं शृङ्गमारूढे सति ॥ "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" इति सप्तमी ॥ मध्ये श्यामः शेषे मध्यादन्यत्र विस्तारे परितः पाण्डुर्हरिणः ॥ "हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः " इत्यमरः ॥ भुवः स्तन इव । अमरमिथुनानाम् । खेचराणामिति भावः । प्रेक्षणीयां दर्शनीयामवस्थां नूनं यास्यति । मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्तनत्वेनोत्प्रेक्षा संभवतीति कृतम् । यथा परिश्रान्तः कश्चित्कामी कामिनीनां कुचकलशे विश्रान्तः सन्स्वपिति तद्वद्भवानपि भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः॥

१९. स्थित्वेति ॥ हे मेघ । वने चरन्ति ते वनचराः ॥ " तत्पुरुषे कृ-

18. When thou, resembling an oiled plait of hair, hast mounted on its top, the mountain, with its sides covered with forest-mango-trees glittering with ripe fruit, wilt, like the earth's breast dark in the middle and white on the rest of its surface, surely attain to a condition worthy of being gazed at by the pairs of celestial beings.

19. After resting for a short time on that (mountain) having

18. M. मेघश्यामः for मध्ये श्यामः ;

19. P. तस्मिन्स्थित्वा for स्थित्वा तस्मिन. W. G1. G2. B. K1. M. तोयोत्सर्गाद्द्रुततर°, M. तोयोत्सर्गाल्लघुतर° for तोयोत्सर्गद्रुततर°. R. M. वन्ध्यपादे M. वन्ध्यपादे for विन्ध्यपादे.

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

ति बहुलम् " इति बहुलग्रहणादलुङ्भवति ॥ तेषां वधूभिर्भुक्ताः कुञ्जा लतागृहा यत्र तस्मिन् ॥ " निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे " इत्यमरः ॥ तत्र ते नयनविनोदोऽस्तीत्यर्थः । तस्मिन्नाम्रकूटे । मुहूर्तमल्पकालम् । न तु चिरं स्वकार्यविरोधादिति भावः ॥ " मुहूर्तमल्पकाले स्याद्घटिकाद्वितयेऽपि च " इति शब्दार्णवे ॥ स्थित्वा विश्रम्य । तोयोत्सर्गेण " त्वामासार—" इत्युक्तवर्षेण द्रुततरगतिर्लाघवाद्धेतोरतिक्षिप्रगमनः सन् । तस्मादाम्रकूटात्परमनन्तरं तत्परं वर्त्म मार्गं तीर्णोऽतिक्रान्तः । उपलैः पाषाणैर्विषमे विन्ध्यस्याद्रेः पादे प्रत्यन्तपर्वते ॥ " पादाः प्रत्यन्तपर्वताः " इत्यमरः ॥ विशीर्णां समन्ततो विस्रमराम् ॥ एतेन कस्याश्चित्कामुक्याः प्रियतमचरणपातोऽपि ध्वन्यते ॥ रेवां नर्मदाम् ॥ " रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेखलकन्यका " इत्यमरः ॥ गजस्याङ्गे शरीरे भक्तयो रचनाः । रेखा इति यावत् ॥ " भक्तिर्निषेवणे भागे रचनायाम् " इति शब्दार्णवे ॥ तासां छेदैर्भङ्गिभिर्भागैर्विरचितां भूतिं शृङ्गारमिव भसितामिव वा ॥ " भूतिर्मातङ्गशृङ्गारे जातौ भस्मनि संपदि " इति विश्वः ॥ द्रक्ष्यसि । अयमपि महांस्ते नयनकौतुकलाभ इति भावः

२०. तस्या इति ॥ हे मेघ । वान्तवृष्टिरुद्गीर्णवर्षः सन् । कृतवमनश्च व्यज्यते । तिक्तैः सुगन्धिभिस्तिक्तरसवद्भिश्च ॥ " तिक्तो रसे सुगन्धौ च " इति विश्वः ॥ वनगजमदैर्वासितं सुरभितं भावितं च । हिमवद्विन्ध्यमलया गजानां प्रभवा इति विन्ध्यस्य गजप्रभवत्वादिति भावः । जम्बूकुञ्जैः प्रतिहतरयं प्रतिबद्धवे-

bowers enjoyed by foresters' wives, thou crossing over to the road next to it at a pace quickened by the discharge of water, wilt see the (river) *Narmada* spread out at the foot of the mountain *Vindhya* uneven on account of rocks, like a decoration on an elephant's body made by scattered marks of painted streaks.

20. With thy rain vomited (i. *e.* discharged), thou canst proceed after having sucked the water of the river which is scented with the fragrant ichor of wild elephants and the current of which is retarded by clusters of *Jambu* trees; the wind will not be able, O cloud, to shake thee (thus) full of substance; for every thing becomes light when empty, while fullness contributes to solidity.

20. R. M. तीक्ष्णैः for तिक्तैः; K2. M. जम्बूखण्ड° for जम्बूकुञ्ज°.

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

गम् । सुखपेयमित्यर्थः । अनेन लघुत्वं कषायभावना च व्यज्यते । तस्या रेवायास्तोयमादाय गच्छेर्व्रज । हे घन मेघ । अन्तः सारो बलं यस्य तं त्वामनिल आकाशवायुः । शरीरस्थश्च गम्यते । तुलयितुं न शक्ष्यति शक्तो न भविष्यति । तथाहि । रिक्तोऽन्तःसारशून्यः सर्वोपि लघुर्भवति । प्रकम्प्यो भवतीत्यर्थः । पूर्णता सारवत्ता गौरवायाप्रकम्प्यत्वाय भवतीत्यर्थः ॥ अयमत्र ध्वनिः । आदौ वमनशोधितस्य पुंसः पश्चाच्छ्लेष्मशोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्लब्धबलस्य वातप्रकोपो न स्यादिति । यथाह वाग्भटः— " कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः । किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः ॥ कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः । वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिनः " इति ॥

२१. नीपमिति ॥ सारङ्गा मतङ्गजाः कुरङ्गा वा ॥ " सारङ्गश्चातके भृङ्गे कुरङ्गे च मतङ्गजे " इति विश्वः ॥ अर्धरूढैरेकदेशोद्गतैः केसरैः किञ्जल्कैर्हरितं पालाशवर्णं कपिशं श्यामवर्णम् । श्यामारुणमिति यावत् ॥ " पालाशो हरितो हरित् " इति । "श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इति चामरः ॥ हरितं च तत्कपिशं च । " वर्णो वर्णेन " इति समासः ॥ नीपं स्थलकदम्बकुसुमम् ॥ " अथ स्थलकदम्बके । नीपः स्यात्पुलके " इति शब्दार्णवे ॥ दृष्ट्वा संप्रेक्ष्य । विदित्वेति यावत् । तथा कच्छेष्वनूपेष्वनुकच्छम् ॥ " अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ॥ " जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः " इत्यमरः ॥ आविर्भूताः प्रथमाः प्रथमोत्पन्ना मुकुला यासां ताः कन्दलीर्भूमिकदलीः ॥ " द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यपि " इति शब्दार्णवे ॥ जग्ध्वा भक्षयित्वा ॥ "अदो जग्धिः—" इति जग्ध्यादेशः ॥ अरण्येष्वधिकसुरभिमतिघ्राणतर्पणम् ॥ " दग्धारण्येषु " इति पाठे " दग्धम् "

---

21. After seeing the *Kadamba* flower green and brown on account of its halfgrown filaments; after eating on every bank the plantain trees on which first buds have appeared; and after smelling the very fragrant odour of the ground in forests, the elephants (or antelopes) will indicate the path of thee, the sprinkler of waterdrops.

---

21. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M.
दग्धारण्येषु for जग्ध्वारण्येषु. M. नवजलमुचः for जललवमुचः.

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥
उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

इत्यधिकविशेषणम् ॥ अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्ट्वेत्यन्वयो द्रष्टव्यः ॥ उर्व्या भूमेर्गन्धमाघ्राय जललवमुचो मेघस्य ते तव मार्गं सूचयिष्यन्त्यनुमापयिष्यन्ति । यत्र यत्र वृष्टिकार्यं नीपकुसुमादिकं दृश्यते तत्र तत्र त्वया वृष्टमित्यनुमीयत इति भावः ॥

प्रक्षिप्तमपि व्याख्यायते—

२२. अम्भ इति ॥ अम्भोबिन्दूनां वर्षोदबिन्दूनां ग्रहणे । "सर्वसद्यापतितमम्बु न चातकस्य हितम्" इति शास्त्राद्भूस्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वादन्तराल एव स्वीकारे । चतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः कौतुकात्पश्यन्तः श्रेणीभूता बद्धपङ्क्तीः ॥ अभूततद्भावे च्विः ॥ बलाका बकपङ्क्तीः परिगणनयैका द्वे तिस्र इति संख्यानेन निर्दिशन्तो हस्तेन दर्शयन्तः सिद्धाः स्तनितसमये त्वद्गर्जितकाले सोत्कण्ठान्युत्कण्ठापूर्वकाणि प्रियसहचरीणां संभ्रमेणालिङ्गितान्यासाद्य । स्वयंग्रहणाश्लेषसुखमनुभूयेत्यर्थः । त्वां मानयिष्यन्ति । त्वन्निमित्तत्वात्सुखलाभस्येति भावः ।

२३ उत्पश्यामीति ॥ हे सखे मेघ । मत्प्रियार्थं यथा तथा द्रुतं क्षिप्रम् ॥

22. The *Siddhas*, marking the *Châtaka* birds expert in catching the drops of rainwater, and pointing out the female cranes arranged in rows by counting (them one by one), will think highly of thee after receiving at the time of thy thundering, eager and hurried embraces from their dear wives.

23. I foresee thy delay, O friend, on every mountain fragrant with *Kutaja* flowers, though (thou art) desirous of going speedily for my

22. W. G1. G2. K1. R. N. M. °ग्रहणरभसान् for °ग्रहणचतुरान्. W. C2. M. सोत्कंपानि for सोत्कण्ठानि. K1. M. संभ्रमालिंगनानि for संभ्रमालिंगितानि.

23. M. सनयनजलैः for सजलनयनैः ; K1. M. प्रत्युद्गातः for प्रत्युद्यातः

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २४ ॥

" लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् " इत्यमरः ॥ यियासोर्यातुमिच्छोरपि ॥ यातेः सन्नन्तादुप्रत्ययः ॥ ते तव ककुभैः कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिनि ॥ " ककुभः कुटजेऽर्जुने " इति शब्दार्णवे ॥ पर्वते पर्वते प्रतिपर्वतम् ॥ वीप्सायां द्विरुक्तिः ॥ कालक्षेपं कालविलम्बम् ॥ "क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्" इति विश्वः ॥ उत्पश्याम्युत्प्रेक्षे ॥ विलम्बहेतुं दर्शयन्नाशुगमनं प्रार्थयते—शुक्लेति ॥ सजलानि सानन्दबाष्पाणि नयनानि येषां तैः शुक्लापाङ्गैर्मयूरैः ॥ " मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिखावलः " इति यादवः ॥ केकाः स्ववाणीः ॥ " केका वाणी मयूरस्य " इत्यमरः ॥ स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्यातः प्रत्युद्गतः । मयूरवाणीकृतातिथ्य इत्यर्थः । भवान्कथमपि यथाकथंचिदाशु गन्तुं व्यवस्येदुद्युञ्जीत ॥ प्रार्थने लिङ् । " शेषे प्रथमः " इति प्रथमपुरुषः । शेषश्चायं भवच्छब्दो युष्मदस्मच्छब्दव्यतिरेकात् ॥ " स्वागतीकृत्य केकाः " इत्यत्र केकास्वारोप्यमाणस्य स्वागतवचनस्य प्रकृतप्रत्युद्गमनोपयोगात्परिणामालंकारः । तदुक्तमलंकारसर्वस्वे— " आरोप्यमाणस्यप्रकृतोपयोगित्वे परिणामः" इति ॥

२४. पाण्ड्विति ॥ हे मेघ । त्वय्यासन्ने संनिकृष्टे सति दशार्णा नाम जनपदाः सूचिभिन्नैः सूचिषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैर्विकसितैः ॥ " केतकीमुकुलाग्रेषु सूचिः स्यात् " इति शब्दार्णवे ॥ केतकैः केतकीकुसुमैः पाण्डुच्छाया हरिणवर्णा उपवनानां वृतयः कण्टकशाखावरणा येषु ते तथोक्ताः ॥ " प्राकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः " इत्यमरः ॥ तथा गृहबलिभुजां काकादिग्रामपक्षिणां नीडारम्भैः कुलायनिर्माणैः ॥ "कुलायो नीडमस्त्रियाम्" इत्यमरः ॥ चित्याया इमानि चैत्यानि रथ्यावृक्षाः ॥ "चैत्यमायतने बुद्धबिम्बे चोद्देशपादपे" इति विश्वः ॥ आकुलानि संकीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते तथोक्ताः । तथा

---

good: greeted by the peacocks with their eyes full of (joyful) tears, and their cries having been made (by them) into a welcome, thou must try somehow or other to move on rapidly.

24. Whilst thou art near, the country of *Dasârna* will become lovely by (having) *Jambu* forests dark-coloured with ripe fruit, will have the hedges of its groves white-coloured with *Ketaka* flowers open at

---

24. W. M. नीडारम्भे for नीडारम्भैः. W. K2. M. फलपरिणतिश्याम°, N. M. परिणतिफलश्याम° for परिणतफलश्याम°.

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
गर्जितं तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यत्त-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ २५ ॥

परिणतैः पक्वैः फलैः श्यामानि यानि जम्बूवनानि तैरन्ता रम्याः ॥ " मृताववसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते " इति शब्दार्णवे ॥ तथा कतिपयेष्वेव दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते तथोक्ता एवंविधाः संपत्स्यन्ते भविष्यन्ति ॥ " पोटायुवतिस्तोककतिपय— "इत्यादिना कतिपयशब्दस्योत्तरपदत्वेऽपि न तच्छब्दस्योत्तरत्वमस्त्यस्य शास्त्रस्य प्रायिकत्वात् ॥

२५. तेषामिति ॥ दिक्षु प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम् ॥ " लक्षणं नाम्नि चिह्ने च " इति विश्वः ॥ तेषां दशार्णानां संबन्धिनीम् । धीयन्तेऽस्यामिति धानी ॥ " करणाधिकरणयोश्च " इति ल्युट् ॥ राज्ञां धानी राजधानी ॥ " कृद्योगा च षष्ठी समस्यते " इति वक्तव्यात्समासः ॥ तां प्रधाननगरीम् ॥ " प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते " इति शब्दार्णवे ॥ गत्वा प्राप्य सद्यः कामुकत्वस्य विलासितायाः ॥ " विलासी कामुकः कामी स्त्रीपरो रतिलम्पटः " इति शब्दार्णवे ॥ अविकलं समग्रं फलं प्रयोजनं लब्धा लप्स्यते । त्वयेति शेषः ॥ कर्मणि लुट् ॥ कुतः । यद्यस्मात्कारणात् तत् स्वादु मधुरम् । चला ऊर्मयो यस्य तच्चलोर्मि तरङ्गितं वेत्रवत्या नाम नद्याः पयः सभ्रूभङ्गं भ्रुकुटियुक्तम् । दशनपीडयेति भावः । मुखमिवाधरमिवेत्यर्थः । तीरोपान्ते तटप्रान्ते यत्स्तनितं गर्जितं तेन सुभगं यथा तथा स्तनितशब्देन मणितमपि व्यपदिश्यते । " ऊर्ध्वमुच्चलितकण्ठनासिकं हुङ्कृतं स्तनितमल्पघोषवत् " इति लक्षणात् ॥ पास्यसि । पिबतेर्लृट् ॥ " कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते " इति भावः ॥

---

the apex, the sacred trees in its villages full of the nest-formations of domestic birds, (and) the swans staying there for some days.

25. On arriving at its capital, bearing the name *Vidiśá* renowned in all the quarters, thou wilt forthwith attain fully the object of being a lover, for thou wilt drink of the *Vetravati's* water sweet and having trembling waves, like a face having contracted eyebrows, in a manner pleasant by thy thundering on the edge of the bank.

---

25. P. फलमपि महत्, W. M. फलमतिमहत् for फलमविकलं. N. M. लब्ध्वा for लब्धा. P. M. स्वादु यत्र, W. B. K2. M. स्वादु युक्तं, C1. C2. M. स्वादु यस्मात् for स्वादु यत्तत्. P. चलोर्म्याः for चलोर्मि.

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २६ ॥

२६. नीचैरिति ॥ हे मेघ । तत्र विदिशासमीपे । विश्रामो विश्रमः खेदापनयः ॥ भावार्थे घञ्प्रत्ययः ॥ स एव हेतुः तस्य विश्रामहेतोः विश्रामकारणात् । विश्रामार्थमित्यर्थः ॥ "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी ॥ विश्रामेत्यत्र "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः" इति पाणिनीये वृद्धिप्रतिषेधेऽपि "विश्रामो वा" इति चन्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धिविधानाद्रूपसिद्धिः ॥ प्रौढपुष्पैः प्रबुद्धकुसुमैः कदम्बैर्नीपवृक्षैस्त्वत्संपर्कात्तव सङ्गात् । पुलका अस्य जाताः पुलकितमिव संजातपुलकमिव स्थितम् ॥ तारकादित्वादितच्प्रत्ययः ॥ नीचैरित्याख्या यस्य तं नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः । गिरौ वसेरित्यर्थः ॥ "उपान्वध्याङ्वसः" इति कर्मत्वम् ॥ यो नीचैर्गिरिः । पण्याः क्रेयाः पण्यस्त्रियो वेश्याः ॥ "वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीविनी" इति शब्दार्णवे ॥ तासां रतिषु यः परिमलो गन्धविशेषः ॥ "विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे" इत्यमरः ॥ तमुद्गिरन्त्याविष्कुर्वन्तीति तथोक्तानि तैः । शिलावेश्मभिः कन्दरैर्नागराणां पौराणामुद्दामान्युत्कटानि यौवनानि प्रथयति प्रकटयति ॥ उत्कटयौवनाः कचिदनुरक्ता वाराङ्गना विश्रम्भविहाराकाङ्क्षिण्यो मात्रादिभयान्निशीथसमये कंचन विविक्तं देशमाश्रित्य रमन्ते । तच्चात्र बहुलमस्तीति प्रसिद्धिः ॥ अत्रोद्गारशब्दो गौणार्थत्वान्न जुगुप्सावहः । प्रत्युत काव्यस्यातिशोभाकर एव । तदुक्तं दण्डिना—"निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते" इति ॥

---

26. There thou mayst, for repose, rest on a mountain called *Nichais* bristling, as it were, with *Kadamba* trees having full-blown flowers, at thy touch; which (mountain) bespeaks the ungoverned youth of the townsmen by means of its stony-houses emitting perfumes (used) in sports with harlots.

---

26. P. विश्रान्तिहेतोः for विश्रामहेतोः.

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २७ ॥

२७. विश्रान्त इति ॥ विश्रान्तः संस्तत्र नीचैर्गिरौ विनीताध्वश्रमः सन् । अथ विश्रान्तेरनन्तरम् । वनेऽरण्ये या नद्यस्तासां तीरेषु जातानि स्वयंरूढानि । अकृत्रिमाणीत्यर्थः " नदनदी—" इति पाठे " पुमान्स्त्रिया " इत्येकशेषो दुर्वारः ॥ तेषामुद्यानानामारामाणां संबन्धीनि यूथिकाजालकानि मागधीकुसुममुकुलानि ॥ " अथ मागधी । गणिका यूथिका " इत्यमरः ॥ "कोरकजालककलिकाकुड्मलमुकुलानि तुल्यानि " इति हलायुधः ॥ नवजलकणैः सिञ्चन्नार्द्रीकुर्वन् ॥ अत्र सिञ्चतेरार्द्रीकरणार्थत्वाद्द्रवद्रव्यस्य करणत्वम् । यत्र तु क्षरणमर्थस्तत्र द्रवद्रव्यस्य कर्मत्वम् । यथा " रेतः सिक्त्वा कुमारीषु " । "मुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि " इत्येवमादि । एवं किरतीत्यादीनामपि " रजः किरति मारुतः " । " अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः " इत्यादिष्वर्थभेदाश्रयणेन रजोलाजादीनां कर्मत्वकरणत्वे गमयितव्ये ॥ तथा गण्डयोः कपोलयोः स्वेदस्यापनयनेन प्रमार्जनेन या रुजा पीडा ॥ भिदादित्वादङ्प्रत्ययः । तया क्लान्तानि म्लानानि कर्णोत्पलानि येषां तेषां तथोक्तानाम् । पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः पुष्पावचायिकाः स्त्रियः ॥ " कर्मण्यण् " । " टिड्ढाणञ्—" इत्यादिना ङीप् ॥ तासां मुखानि । छायाया अनातपस्य दानात् । कान्तिदानं च ध्वन्यते ॥ " छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः " इत्यमरः ॥ कामुकदर्शनात्कामिनीनां मुखविकाशो भवतीति भावः । क्षणपरिचितः क्षणं संसृष्टः सन् । न तु चिरम् । व्रज गच्छ ॥

27. Being (thus) refreshed proceed,—sprinkling with fresh water-drops the buds of the great-flowered jasmine sprung up (spontaneously) on the banks of the forest rivers, and by casting a shadow, coming into momentary contact with the faces of female flower-gatherers having their ear-lotuses withered by injury (caused) by the wiping of the sweat from their cheeks.

27. P. वननदीतीरजानां निषिञ्चन्, W. R. N. K2. M. नगनदीतीरजातानि सिञ्चन्, G1. G2. K1. M. नवनदीतीरजातानि सिञ्चन् for वननदीतीरजातानि सिञ्चन्. K1. N. M. गल्ल° for गण्ड°. M. °छायादानक्षण° for° छायादानात्क्षण°.

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २८ ॥
वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २९ ॥

२८. वक्र इति ॥ उत्तराशामुदीचीं दिशं प्रति प्रस्थितस्य भवतः पन्था उज्जयिनीमार्गो वक्रो यदपि । दूरो यद्यपीत्यर्थः ॥ विन्ध्यादुत्तरवाहिन्या निर्विन्ध्यायाः प्राग्भागे कियत्यपि दूरे स्थितोज्जयिनी । उत्तरपथस्तु निर्विन्ध्यायाः पश्चिम इति वक्रत्वम् ॥ तथाप्युज्जयिन्या विशालानगरस्य ॥ "विशालोज्जयिनी समा" इत्युत्पलः ॥ सौधानामुत्सङ्गेषूपरिभागेषु प्रणयः परिचयः ॥ "प्रणयः स्यात्परिचये याञ्चायां सौहृदेऽपि च" इति यादवः ॥ तस्य विमुखः पराङ्मुखो मा स्म भूः । न भवेरित्यर्थः ॥ "स्मोत्तरे लङ् च" इति चकारादाशीरर्थे लुङ् । "न माङ्योगे" इत्यडागमप्रतिषेधः ॥ तत्रोज्जयिन्यां विद्युद्दाम्नां विद्युल्लतानां स्फुरितेभ्यः स्फुरणेभ्यश्चकितैर्भीतैर्लोलापाङ्गैश्चञ्चलकटाक्षैः पौराङ्गनानां लोचनैर्न रमसे यदि तर्हि त्वं वञ्चितः प्रतारितोऽसि । जन्मवैफल्यं भवेदित्यर्थः ॥

संप्रत्युज्जयिनीं गच्छतस्तस्य मध्येमार्गं निर्विन्ध्यासंबन्धमाह—

२९. वीचीति ॥ हे सखे । पथ्युज्जयिनीपथे वीचिक्षोभेण तरङ्गचलनेन

---

28. Though the road is a circuitous one for thee who hast set forth on a journey to the North, yet do not be averse to forming an acquaintance with the roofs of the palaces of उज्जयिनी; if thou art not gratified by the eyes of the townswomen there, having tremulous outercorners frightened by the flashes of lightning-streaks, thou art (indeed) defrauded (of the object of thy life).

29. Meeting on thy way the river निर्विन्ध्या, which has for its

---

28. G2. K1. M. उत्तरस्यां, N. उत्तरायां for उत्तराशाम्. W. M. मा च भूः for मा स्मः भूः. W. K2. M. °स्फुरणचकितैः for स्फुरितचकितैः P. यत्र for तत्र P. वञ्चितः स्याः for वञ्चितोऽसि.

29. R. N. M. वीची° for वीचि°. M. °क्वणित° for °स्तनित°.

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः । falling
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३० ॥

स्तनितानां मुखराणाम् ॥ कर्तरि क्तः ॥ विहगानां हंसानां श्रेणिः पङ्क्तिरेव काञ्चीगुणो यस्यास्तस्याः स्खलितेनोपलस्खलनेन मदस्खलितेन च सुभगं यथा तथा संसर्पन्त्याः प्रवहन्त्या गच्छन्त्याश्च तथा दर्शिता प्रकटिता आवर्तोऽम्भसां भ्रम एव नाभिर्यया ॥ "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः॥ निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या नाम नदी ॥ "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" इति समासः । "द्विगुप्राप्तापन्नालम्–" इत्यादिना परवल्लिङ्गताप्रतिषेधः ॥ तस्या नद्याः संनिपत्य संगत्य । रसो जलमभ्यन्तरे यस्य सः । अन्यत्र रसेन शृङ्गारेणाभ्यन्तरोऽन्तरङ्गो भव । सर्वथा तस्या रसमनुभवेत्यर्थः ॥ "शृङ्गारादौ जले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयोः । तिक्तादावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ ॥ आस्वादे च रसं प्राहुः" इति शब्दार्णवे ॥ ननु तत्प्रार्थनामन्तरेण कथं तत्रानुभवो युज्यत इत्यत आह––स्त्रीणामिति ॥ स्त्रीणां प्रियेषु विषये विभ्रमो विलास एवाद्यं प्रणयवचनं प्रार्थनावाक्यं हि ॥ स्त्रीणामेष स्वभावो यद्विलासैरेव रागप्रकाशनम् । न तु कण्ठत इति भावः ॥ विभ्रमश्चात्र नाभिसंदर्शनादिरुक्त एव ॥

निर्विन्ध्याया विरहावस्थां वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयते—

३०. वेणीति ॥ अवेणी वेणीभूतं वेण्याकारं प्रतनु स्तोकं च सलिलं यस्याः

---

girdle-string, rows of birds noisy by the tumult of the waves, which glides onward in a manner charming on account of (its) stumbling (against rocks), and which displays its navel-like-eddies, partake of its waters; for amorous sports are women's first expression of desire to their lovers.

30. By thee alone, O amiable one, that measure can be adopted by which this river, — having its scanty water for a braid of hair, bearing

---

W. G2. K1. R. N. M. रसाभ्यन्तरं for रसाभ्यन्तरः N. M. प्रणयि वचनं for प्रणयवचनं.

30. P. W. G1. G2. K2. R. N. M. °सलिला तामतीतस्य, K1. M. B. °सलिला सात्वतीतस्य, M. °सलिला साप्यतीतस्य, M. °सलिलां तामतीतस्य for °सलिलासावतीतस्य. M. सिन्धुम् for सिन्धुः. W. K2. M. शीर्णपर्णैः, R. M. जीर्णपत्रैः for जीर्णपर्णैः. M. असुभग° for सुभग. K2. M. व्यञ्जयन्तीम् for व्यञ्जयन्ती.

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-
न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥ ३१ ॥

सा तथोक्ता। अन्यत्र वेणीभूतकेशपाशेति च ध्वन्यते। रोहन्तीति रुहाः ॥ इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः॥ तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तथोक्तैः। जीर्णपर्णैः शुष्कपत्रैः पाण्डुच्छाया पाण्डुवर्णा । अत एव हे सुभग । विरहावस्थया पूर्वोक्तप्रकारया ॥ करणेन ॥ अतीतस्यैतावन्तं कालमतीत्य गतस्य । प्रोषितस्येत्यर्थः । ते तव सौभाग्यं सुभगत्वम् ॥ " हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च " इत्युभयपदवृद्धिः ॥ व्यञ्जयन्ती प्रकाशयन्ती । स खलु सुभगो यमङ्गनाः कामयन्त इति भावः । असौ पूर्वोक्ता सिन्धुर्नदी निर्विन्ध्या ॥ " स्त्री नद्यां ना नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे " इति वैजयन्ती ॥ येन विधिना व्यापारेण कार्श्यं त्यजति स विधिस्त्वयैवोपपाद्यः । कर्तव्य इत्यर्थः । स च विधिरेकत्र वृष्टिरन्यत्र संभोगस्तदभावनिबन्धनत्वात्कार्श्यस्येति भावः ॥ इयं पञ्चमी मदनावस्था । तदुक्तं रतिरहस्ये—" नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ संकल्पः । निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः ॥ उन्मादो मूर्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः " इति ॥ " त्वामतीतस्य " इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यानं तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति । नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते ॥

३१. प्राप्येति ॥ विदन्तीति विदाः॥ इगुपधलक्षणः कः॥ ओकसो वेश्मस्थानस्य विदाः कोविदाः॥ ओकारलोपः पृषोदरादित्वात्साधुः ॥ उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां वासवदत्ताहरणाद्यद्भुतोपाख्यानानां कोविदास्तत्त्वज्ञा ग्रामेषु ये वृद्धास्ते सन्ति येषु तानवन्तींस्तन्नामजनपदान्प्राप्य तत्र पूर्वोद्दिष्टां पूर्वोक्तां " सौधो-

---

a pale complexion on account of the withered leaves fallen from the trees growing on its banks and (thus) manifesting by its condition during separation the good fortune of thee who hast been away (so long) — casts off its draught (emaciation).

31. On reaching the country of the *Avantis*, having its old villagers well-versed in the legends of *Udayana*, proceed to the aforesaid city of *Ujjayini* great in wealth, another brilliant portion of

---

31. W. M. अवन्तीम् for अवन्तीन्. B. M. ज्ञानवृद्धान्, W M. ग्रामवृद्धाम् for ग्रामवृद्धान्. P. उपसर for अनुसर. K2. स्वचरित° for सुचरित°. P. K1. कृतमिव for हृतमिव.

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३२ ॥

न्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्मभूरुज्जयिन्याः " इत्युक्तां श्रीविशालां संपत्तिमहतीम् । "शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते "इति शाश्वतः । विशालां पुरीमुज्जयिनीमनुसर व्रज ॥ कथमिव स्थिताम् । सुचरितफले पुण्यफले स्वर्गोपभोगलक्षणे स्वल्पीभूते । अत्यल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः । गां भूमिं गतानाम् ॥ " गौरिला कुम्भिनी क्षमा" इत्यमरः ॥ पुनरपि भूलोकगतानामित्यर्थः । स्वर्गिणां स्वर्गवतां जनानां शेषैर्भुक्तशिष्टैः पुण्यैः सुकृतैर्हृतमानीतम् । स्वर्गार्थानुष्ठितकर्मशेषाणां स्वर्गदानावश्यंभावादिति भावः । कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमदुज्ज्वलम् । सारभूतमित्यर्थः । एकं भुक्तादन्यत् ॥ " एके मुख्यान्यकेवलाः " इत्यमरः ॥ दिवः स्वर्गस्य खण्डमिव स्थितामित्युत्प्रेक्षा । एतेनातिक्रान्तसकलभूलोकनगरसौभाग्यसारत्वमुज्जयिन्या व्यज्यते ॥

३२. दीर्घीकुर्वन्निति ॥ यत्र विशालायां प्रत्यूषेष्वहर्मुखेषु ॥ " प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम् " इत्यमरः ॥ पटु प्रस्फुटम् । मदकलं मदेनाव्यक्तमधुरम् ॥ " ध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलः " इत्यमरः ॥ सारसानां पक्षिविशेषाणाम् ॥ " सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः " इति यादवः ॥ यद्वा सारसानां हंसानाम् ॥ " चक्राङ्गः सारसो हंसः " इति शब्दार्णवे ॥ कूजितं रुतं दीर्घीकुर्वन् । संतानयन्नित्यर्थः । यावद्वातं शब्दानुवृत्तेरिति भावः । एतेन प्रियतमः स्वचाटुवाक्यानुसारि क्रीडापक्षिकूजितमविच्छिन्नीकुर्वन्निति च गम्यते । स्फुटितानां विकसितानां कमलानामामोदिन परिमलेन सह या मैत्री

---

heaven, as it were, brought down by the remaining merits of those who had dwelt in heaven and come down (again) to the earth when the fruit of their virtuous deeds had diminished.

32. Where, at dawn, the breeze from the (river) *S'iprâ* prolonging the shrill cry of *Sârasa* birds sweet and indistinct through intoxication (of passion), sweet-scented by its contact with the fragrance of blown lotuses, (and) agreeable to the body, dissipates the languor of women (brought on) by enjoyment, like a lover who uses coaxing when soliciting enjoyment.

---

32. K1. R. N. M. पटुमदकलं for पटु मदकलं. M. स्फुरित॰ for स्फुटित॰. P. W. K1. K2. R. N. M. सिप्रावातः for शिप्रावातः.

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गा-
न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥३३॥

संसर्गस्तेन कषायः सुरभिः ॥ " रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे " इति यादवः ॥ अन्यत्र विमर्दगन्धीत्यर्थः ॥ " विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे । आमोदः सोऽतिनिर्हारी " इत्यमरः ॥ अङ्गानुकूलो मान्द्यात् गात्रसुखस्पर्शः । अन्यत्र गाढालिङ्गनदत्तगात्रसंवाहन इत्यर्थः । भवभूतिना चोक्तम्—" अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि " इति ॥ संवाह्यन्ते च सुरतश्रान्ताः प्रियैर्युवतयः । एतत्कविरेव वक्ष्यति—" संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम् " इति ॥ शिप्रा नाम काचित्तत्रत्या नदी तस्या वातः शिप्रावातः ॥ शिप्राग्रहणं शैत्यद्योतनार्थम् ॥ प्रार्थना सुरतस्य याच्ञा तत्र चाटु करोतीति तथोक्तः । पुनः सुरतार्थं प्रियवचनप्रयोक्तेत्यर्थः ॥ कर्मण्यण्प्रत्ययः ॥ प्रियतमो वल्लभ इव स्त्रीणां सुरतग्लानिं संभोगखेदं हरति नुदति । चाटूक्तिभिर्विस्मृतपूर्वरतिखेदाः स्त्रियः प्रियतमप्रार्थनां सफलयन्तीति भावः ॥ " प्रार्थनाचाटुकारः " इत्यत्र " खण्डितनायिकानुनीता " इति व्याख्याने सुरतग्लानिहरणं न संभवति । तस्याः पूर्वं सुरताभावात्पश्चात्तनसुरतग्लानिहरणं तु नेदानीन्तनकोपशमनार्थचाटुवचनसाध्यमित्युपेक्षैवोचिता विवेकिनाम् ॥ "ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता " इति दशरूपके ॥

इतः परं प्रक्षिप्तमपि श्लोकत्रयं व्याख्यायते—

33. हारानिति ॥ यस्यां विशालायां कोटिशो विपणिषु पण्यवीथिकासु ॥ " विपणिः पण्यवीथिका " इत्यमरः ॥ रचितान्प्रसारितान् ॥ इदं विशेषणं यथालिङ्गं सर्वत्र संबध्यते ॥ ताराञ्छुद्धान् ॥ " तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके " इति विश्वः ॥ तरलगुटिकान्मध्यमणीभूतमहारत्नान् ॥ " तरलो

33. And where having seen in crores brilliant central gems, pearl-strings, conches and shells, (and) emeralds green as young grass and with the shoots of their rays jetting forth, and pieces of corals spread in market-places we imagine the oceans to have only water remaining to them.

33. P. तरलघटिकान्, G2. K1. R. M. तरलगुलिकान् for तरलगुटिकान्. M. शुक्तिशंखान् for शंखशुक्तीः. R. K1. M. यस्यां दृष्ट्वा, M. दृष्ट्वा यस्याः for दृष्ट्वा यस्यां. M. तोयमात्रा विशेषाः for तोयमात्रावशेषाः.

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ३४ ॥

हारमध्यगः"इत्यमरः ॥ " पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिका बद्धपारदे " इति शब्दार्णवे । हारान्मुक्तावलीः । तथा कोटिशः शङ्खांश्च शुक्तीश्च मुक्तास्फोटांश्च ॥ " मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः शङ्खः स्यात्कम्बुरस्त्रियौ " इत्यमरः ॥ शष्पं बालतृणं तद्वच्छ्यामान् ॥ " शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम् " इत्यमरः ॥ उन्मयूखप्ररोहानुद्गतरम्याङ्कुरान्मरकतमणीन्गारुडरत्नानि । तथा विद्रुमाणां भङ्गान्प्रवालखण्डांश्च दृष्ट्वा सलिलनिधयः समुद्रास्तोयमात्रमवशेषो येषां ते तादृशाः संलक्ष्यन्ते । तथानुमीयन्त इत्यर्थः । रत्नाकरादप्यतिरिच्यते रत्नसंपद्भिरिति भावः ॥

३४. प्रद्योतस्येति ॥ अत्र प्रदेशे वत्सराजो वत्सदेशाधीश्वर उदयनः । प्रद्योतस्य नामोज्जयिनीनायकस्य राज्ञः प्रियदुहितरं वासवदत्तां जह्रे जहार । अत्र स्थले तस्यैव राज्ञः प्रद्योतस्य हैमं सौवर्णं तालद्रुमवनमभूत् । अत्र नलगिरिर्नामेन्द्रदत्तस्तदीयो गजो दर्पान्मदात्स्तम्भमालानमुत्पाट्योद्धृत्योद्भ्रान्त उत्पत्य भ्रमणं कृतवान् । इतीत्थंभूताभिः कथाभिरित्यर्थः । अभिज्ञः पूर्वोक्तकथाभिज्ञः कोविदो जन आगन्तून्देशान्तरादागतान् ॥ औणादिकस्तुन्प्रत्ययः ॥ बन्धून्यत्र विशालायां रमयति विनोदयति ॥ अत्र भाविकालंकारः । तदुक्तम्—" अतीतानागतं यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्ष्यते । अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदाहृतम् " इति ॥

---

34. And where the people versed (in legends) amuse their foreign brethren with stories like the following:—That here the king of the *Vatsas* (*Udayana*) carried away the darling daughter of *Pradyota*, that here the same king had a golden palm-grove; that here, forsooth, the elephant *Nalagiri* tearing out through fury the post (to which it was tied), roamed about in a wild manner.

---

34. G1. G2. K1. K2. R.N.M. नडागिरिः for नलगिरिः. G1. उन्मूल्य for उत्पाट्य. R. M. गमयति for रमयति.

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ३५ ॥
जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३६ ॥

३५. पत्रेति ॥ हे जलद । यत्र विशालायां वाहा हयाः पत्रश्यामाः पलाशवर्णा अत एव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पास्तथा शैलोदग्राः शैलवदुन्नताः करिणः प्रभेदान्मदस्रावाद्धेतोस्त्वमिव वृष्टिमन्तः । अग्रं नयन्तीत्यग्रण्यः ।। " सत्सूद्विष—" इत्यादिना क्विप् ॥ " अग्रग्रामाभ्यां नयतेः " इति वक्तव्याण्णत्वम् ।। योधानामग्रण्यो भटश्रेष्ठाः संयुगे युद्धे प्रतिदशमुखमभिरावणं तस्थिवांसः स्थितवन्तः । अत एव चन्द्रहासस्य रावणासेर्व्रणान्क्षतान्येवङ्काश्चिह्नानि तैः ॥ " चन्द्रहासो रावणासावसिमात्रेऽपि च क्वचित् " इति शाश्वतः ।। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः । शस्त्रप्रहारा एव वीराणां भूषणमिति भावः ।। अत्रापि भाविकालंकारः ॥

३६. जालोद्गीर्णैरिति ।। जालोद्गीर्णैर्गवाक्षमार्गनिर्गतैः।। " जालं गवाक्ष आ-

35. (And) where there are horses as green as the leaf (of a tree) and (therefore) rivalling with those of the sun, elephants as big as mountains and raining like thee by reason of the flowing ot ichor (from their temples), (and) best warriors who had on the battlefield held tneir own against the ten-faced (*Râvana*) and the lustre of whose ornaments has been obscured by the scars of wounds (caused) by *Chandrahâsa* (the sword of Râvana).

36. With thy body swollen by the incense (used) for perfuming the hair and escaping through the casements, with the presents (in the form) of dances given (to thee) by peacocks through fraternal

36. K1. R. N. M. °संस्कारधूमैः for °संस्कारधूपैः, G1. भुवन° for भवन°. P. नृत्तोपहारः, M. नृत्तोपचारः for नृत्योपहारः. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अध्वखिन्नान्तरात्मा for अध्वखेदं नयेथाः P. G1. G2. K1. R. N. M. नीत्वा खेदं, K2. M. मुक्त्वा खेदं, W. M. त्यक्त्वा खेदं, M. रात्रिं नीत्वा for लक्ष्मीं पश्यन्.

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३७ ॥

नाये जालके कपटे गणे " इति यादवः ॥ केशसंस्कारधूपैः । वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धद्रव्यधूपैरित्यर्थः ॥ अत्र संस्कारधूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत्प्रकृतिविकारत्वाभावादश्वघासादिवत्षष्ठीसमासो न चतुर्थीसमासः ॥ उपचितवपुः परिपुष्टशरीरः । तथा बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीत्या भवनशिखिभिर्गृहमयूरैर्दत्तो नृत्यमेवोपहार उपायनं यस्मै स तथोक्तः ॥ " उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा " इत्यमरः ॥ कुसुमैः सुरभिषु सुगन्धिषु ॥ ललितवनिताः सुन्दरस्त्रियः ॥ " ललितं त्रिषु सुन्दरम् " इति शब्दार्णवे ॥ तासां पादरागेण लाक्षारसेनाङ्कितेषु चिह्नितेषु हर्म्येषु धनिकभवनेष्वस्या उज्जयिन्या लक्ष्मीं पश्यन्नध्वनाध्वगमनेन खेदं क्लेशं नयेथा अपनय ॥

३७. भर्तुरिति ॥ भर्तुः स्वामिनो नीलकण्ठस्य भगवतः कण्ठस्येव छविर्यस्यासौ कण्ठच्छविरिति हेतोर्गणैः प्रमथैः॥ " गणस्तु गणनायां स्याद्गणेशे प्रमथे चये " इति शब्दार्णवे ॥ सादरं यथा तथा वीक्ष्यमाणः सन् । प्रियवस्तुसादृश्यादतिप्रियत्वं भवेदिति भावः । त्रयाणां भुवनानां समाहारास्त्रिभुवनम् ॥ " तद्धितार्थ—" इत्यादिना समासः ॥ तस्य गुरोस्त्रैलोक्यनाथस्य चण्डीश्वरस्य कात्यायनीवल्लभस्य पुण्यं पावनं धाम महाकालाख्यं स्थानं याया गच्छ ॥ विध्यर्थे

---

affection, thou shouldst dispel the fatigue of the journey, seeing the beauty of their (city) in palaces scented with flowers and marked with the foot-prints of lovely women.

37. Being respectfully gazed at by the attendants (of *Siva*) as being possessed of the complexion of their master's throat, thou shouldst visit the holy abode of the husband of *Chandi*, lord of three worlds, having its gardens shaken by the *Gandhavati's* breezes bearing the fragrance of the lotus pollen and smelling of the materials (used) in baths by young women engaged in water-sports.

---

37. M. दृश्यमानः, M. वीक्षमाणः for वीक्ष्यमाणः. N. M. जायाः for यायाः. W. M. चण्डेश्वरस्य for चण्डीश्वरस्य. N. M. धौतोद्यानं for धूतोद्यानं. W. M. तोयक्रीडाविरत° for तोयक्रीडानिरत°.

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

लिङ् ॥ श्रेयस्करत्वात्सर्वथा यातव्यामीति भावः ॥ उक्तं च स्कान्दे—"आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् । मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्" इति ॥ न केवलं मुक्तिस्थानमिदं किंतु विलासस्थानमपीत्याह—धूतेति ॥ कुवलयरजोगन्धिभिरुत्पलपरागगन्धवद्भिस्तोयक्रीडासु निरतानामासक्तानां युवतीनां स्नानं स्नानीयं चन्दनादि ॥ करणे ल्युट् ॥ "स्नानीयेऽभिषवे स्नानम्" इति यादवः॥ तेन तिक्तैः सुरभिभिः ॥ "कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः" इति हलायुधः॥ सौगन्ध्यातिशयार्थं विशेषणद्वयम् । गन्धवत्या नाम नद्यास्तत्रत्याया मरुद्भिर्मारुतैर्धूतोद्यानं कम्पिताक्रीडामिति धाम्नो विशेषणम् ॥

३८. अपीति ॥ हे जलधर । महाकालं नाम पूर्वोक्तं चण्डीश्वरस्थानमन्यस्मिन्संध्यातिरिक्तेऽपि काल आसाद्य प्राप्य ते तव स्थातव्यम् । त्वया स्थातव्यमित्यर्थः ॥ "कृत्यानां कर्तरि वा" इति षष्ठी ॥ यावद्यावता कालेन भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति । आ अस्तमयात् स्थातव्यमित्यर्थः ॥ यावदित्येतदवध्यर्थे । "यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे" इत्यमरः ॥ किमर्थमत आह—कुर्वन्निति ॥ श्लाघनीयां प्रशस्यां शूलिनः शिवस्य संध्यायां बलिः पूजा तत्र पटहतां कुर्वन्संपादयन्नामन्द्राणामीषद्गम्भीराणां गर्जितानामविकलमखण्डं फलं लप्स्यसे प्राप्स्यसि ॥ लभेः कर्तरि लृट् ॥ महाकालनाथबलिपटहत्वेन विनियोगात्ते गर्जितसाफल्यं स्यादित्यर्थः ॥

---

38. Though arriving at *Mahâkâla* (the abode of *Siva*) at any other time (than the evening), thou shouldst stay (there), O cloud, until the sun passes beyond the range of sight; (since) performing the noble function of a drum at the evening worships of *Siva* thou wilt reap the full fruit of thy low thunderings.

---

38. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अभ्येति for अत्येति; M. आमंत्राणां, M. आमद्राणाम् for आमन्द्राणाम्.

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३९॥

३९. पादन्यासेति ॥ तत्र संध्याकाले पादन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्नृत्याङ्गैः क्वणिताः शब्दायमाना रशना यासां तास्तथोक्ताः ॥ क्वणतेरकर्मकत्वात् " गत्यर्थाकर्मक—" इत्यादिना कर्तरि क्तः ॥ लीलया विलासेनावधूतैः कम्पितै रत्नानां कङ्कणमणीनां छायया कान्त्या खचिता रूषिता वलयश्चामरदण्डा येषां तैः ॥ " वलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि " इति विश्वः ॥ चामरैर्वालव्यजनैः क्लान्तहस्ताः ॥ एतेन दैशिकं नृत्यं सूचितम् । तदुक्तं नृत्यसर्वस्वे—"खड्गकन्दुकवस्त्रादिदण्डिकाचामरस्रजः । वीणां च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्यं तद्देशिकं भवेत्" इति ॥ वेश्या महाकालनाथमुपेत्य नृत्यन्त्यो गणिकास्त्वत्तो नखपदेषु नखक्षतेषु सुखान्सुखकरान् ॥ " सुखहेतौ सुखे सुखम् " इति शब्दार्णवे ॥ वर्षस्याग्रबिन्दून्प्रथमबिन्दून्प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षानपाङ्गानामोक्ष्यन्ते । " परैरुपकृताः सन्तः सद्यः प्रत्युपकुर्वते " इति भावः । कामिनीदर्शनीयत्वलक्षणं शिवोपासनाफलं सद्यो लप्स्यस इति ध्वनिः ॥

39. On receiving from thee the first drops of rain soothing to their nail-sores, the dancing-girls there who have their girdles jingling by the movements of their feet (in the dance) (and) their hands wearied by the *Chowries* waved playfully and possessed of handles inlaid with the lustre of gems, will shower on thee side-glances long as the rows of bees.

39. C1. C2. M. पादन्यासैः for पादन्यास°. P. W. G2. M. K1. R. N. M. °रसनाः for °रशनाः. M. °रचित° for °खचित°. °कान्त° for क्लान्त°. M. नखमणि° for नखपद°. W, आमोक्ष्यान्ति, N. M. अमोक्षन्ते for आमोक्ष्यन्ते.

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ४० ॥

४०. पश्चादिति ॥ पश्चात्संध्याबल्यनन्तरं पशुपतेः शिवस्य नृत्यारम्भे ताण्डवप्रारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं प्रत्यग्रजपाकुसुमारुणं संध्यायां भवं सान्ध्यं तेजो दधानः । उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवस्तेषां वनं मण्डलेन मण्डलाकारेणाभिलीनोऽभिव्याप्तः सन् ॥ कर्तरि क्तः ॥ भवान्या भवपत्न्या ॥ "इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्" इति ङीष् । आनुगागमश्च ॥ शान्त उद्वेगो गजाजिनदर्शनभयं ययोस्ते अत एव स्तिमिते निश्चले नयने यस्मिन्कर्मणि तत्तथोक्तम् ॥ "उद्वेगस्त्वरिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि" इति शब्दार्णवे ॥ भक्तिः पूज्येष्वनुरागः ॥ भावार्थे क्तिन्प्रत्ययः ॥ दृष्टं दृष्टा वा भक्तिर्यस्य स दृष्टभक्तिः सन् पशुपतेरार्द्रं शोणितार्द्रं यन्नागाजिनं गजचर्म ॥ "अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री" इत्यमरः ॥ तत्रेच्छां हर निवर्तय । त्वमेव तत्स्थाने भवेत्यर्थः । गजासुरमर्दनानन्तरं भगवान्महादेवस्तदीयमार्द्राजिनं भुजमण्डलेन बिभ्रत्ताण्डवं चकारेति प्रसिद्धिः ॥ दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः । दृष्टशब्दस्य "स्त्रियाः पुंवद्—" इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूरणीप्रियादिष्विति निषेधात् । भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति । तदेतच्चोद्यम् । दृढभक्तिरिति शब्दमाश्रित्य प्रतिविहितं गणव्याख्याने दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम् । अदाढर्यनिवृत्तिपरत्वे दृढशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात्स्त्रीत्वमविवक्षितमिति ॥ भोजराजस्तु— "भक्तौ च कर्मसाधनायामित्यनेन सूत्रेण भज्यते सेव्यत इति कर्मार्थत्वे भवानीभक्तिरित्यादि भवति । भावसाधनायां तु स्थिरभक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति" इत्याह । तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघुवंशसंजीविन्यां "दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे" इत्यत्र । तस्माद्दृढभक्तिरित्यत्रापि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन च रूपसिद्धिरस्तीति स्थितम् ॥

इत्थं महाकालनाथस्य सेवाप्रकारमभिधाय पुनरपि नगरसंचारप्रकारमाह—

---

40. Afterwards when *Siva's* dance begins, resting in a circular form on the lofty forest of his tree-like arms and assuming a twilight spledour red as fresh *Japâ* flowers remove Siva's desire for the elephant's skin wet (with blood) whilst thy devotion is being witnessed by *Pârvati* with eyes steady (because) free from fear.

---

40. G1. G2. K1. R. N. M. विकसितजपा°, W. C1. C2. M. प्रतिनवजवा° for प्रतिनवजपा°. M. °पुष्परत्नं for °पुष्परक्तं. P. नृत्तारंभे for नृत्यारंभे. R. N. M. °भवान्याः for भवान्या.

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥४१॥
तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ४२ ॥

४१. गच्छन्तीनामिति ॥ तत्रोज्जयिन्यां नक्तं रात्रौ रमणवसतिं प्रियभवनं प्रति गच्छन्तीनां योषिताम् । अभिसारिकाणामित्यर्थः । सूचिभिर्भेद्यैः । अतिसान्द्रैरित्यर्थः । तमोभी रुद्धालोके निरुद्धदृष्टिप्रसारे नरपतिपथे राजमार्गे कनकस्य निकषो निकष्यत इति व्युत्पत्त्या निकष उपलगतरेखा तस्येव स्निग्धं तेजो यस्यास्तया ॥ " स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि " इति शब्दार्णवे ॥ सुदाम्नाद्रिणैकदिक्सौदामनी विद्युत् ॥ " तेनैकदिक् " इत्यण्प्रत्ययः ॥ तयोर्वीं मार्गं दर्शय । किं च तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानो मा स्म भूः । कुतः । ता योषितो विक्लवा भीरवः । ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थः ॥ नात्र तोयोत्सर्गे स्तनितमिति विग्रहः । विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात् । न च द्वन्द्वपक्षेऽल्पाच्तरपूर्वनिपातशास्त्रविरोधः । " लक्षणहेत्वोः क्रियायाः " इति सूत्र एव विपरीत निर्देशेन पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनादिति ॥

४२. तामिति ॥ चिरं विलसनात्स्फुरणात्खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य स भ-

---

41. Illumine with lightning having lustre resembling the streaks of gold (on a touch-stone), the ground for the women proceeding then by night to the abodes of their lovers along the high street where the sight is obstructed by darkness penetrable with a needle, (but) do not be noisy by thundering and discharging water, because they are timid.

42. Having passed that night on the terrace of some house, where

---

41. W. M. रात्रौ for नक्तम्. M. रुद्धालोकैः for रुद्धालोके W. G1. G2. K1. K2. R. M. सौदामिन्या for सौदामन्या. W. M. °छायया, G2. स्पर्धया for स्निग्धया. M. तोयोत्सर्गात् for तोयोत्सर्ग°. M. °विमुखः for मुखरः P. W. M. मा च भूः for मास्म भूः.

42. K1. N. M. भुवनवलभौ, W. N. M. भवनवडभौ for भवन॰ वलभौ. G2. K1. R. N. M. °पारापतायां for °पारावतायां.

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४३ ॥

वान्सुप्ताः पारावताः कलरवा यस्यां तस्याम् । विविक्तायामित्यर्थः ॥ "पारावतः कलरवः कपोतः" इत्यमरः ॥ जनसंचारस्तत्रासंभावित एवेति भावः । कस्यांचिद्भवनस्य वलभी । आच्छादने उपरिभाग इत्यर्थः ॥ "आच्छादनं स्याद्वलभी-गृहाणाम्" इति हलायुधः ॥ तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे सति । उदिते सतीत्यर्थः । पुनरप्यध्वशेषं वाहयेव । तथाहि सुहृदां मित्राणामभ्युपेताङ्गीकृतार्थस्य प्रयोजनस्य कृत्या क्रिया येत्ते । अभ्युपेतसुहृदर्था इत्यर्थः ॥ सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । "कृत्या क्रियादेवतयोः कार्ये स्त्रीकुपिते त्रिषु" इति यादवः ॥ "कृञः श च" इति चकारात्क्यप् ॥ न मन्दायन्ते खलु न मन्दा भवन्ति हि । न विलम्बन्त इत्यर्थः ॥ "लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इति क्यष् । "वा क्यषः" इत्यात्मनेपदम् ॥

४३. तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्काले पूर्वोक्ते सूर्योदयकाले प्रणयिभिः प्रियतमैः खण्डितानां योषितां नायिकाविशेषाणाम् ॥ "ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता" इति दशरूपके ॥ नयनसलिलं शान्तिं नेयं नेतव्यम् ॥ नयतिर्द्विकर्मकः ॥ अतो हेतोर्भानोर्वर्त्माशु शीघ्रं त्यज । तस्यावरको मा भूरित्यर्थः ॥ विपक्षेऽनिष्टमाचष्टे—सोऽपि भानुः । नलान्यम्बुजानि यस्याः सन्तीति नलिनी पद्मिनी ॥ "तृणेऽम्बुजे नलं ना तु राज्ञि नाले तु न स्त्रियाम्" इति शब्दार्णवे ॥ तस्याः स्वकान्तायाः कमलं स्वकुसुममेव वदनं तस्मात्प्रालेयं हिममेवास्रमश्रु हर्तुं शमयितुं प्रत्यावृत्तः प्रत्यागतः । नलिन्याश्च भर्तुर्भानोर्देशा-

pigeons roost with thy lightning-spouse fatigued by continual playing, thou shouldst go over the rest of thy journey when the sun rises; for those who have undertaken the accomplishment of any business for their friends, do not tarry.

43. The tears of women angry with their lovers have at that time to be wiped off; therefore quit the path of the sun quickly; for he also, having returned to remove the dew-tears from the lotus-face of the lotus plant, would be not a little incensed against thee obstructing his rays.

43. R. N. M. प्रालेयाश्रु, G2. W. K1. M. प्रालेयाश्रं for प्रालेयास्रं. M. कमलनयनात् for कमलवदनात्.

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४४ ॥

न्तरे नलिन्यन्तरगमनात्खण्डितात्वमित्याशयः । ततस्त्वयि । करानंशून्रुण-द्धीति कररुद् । क्विप् । तस्मिन्कररुधि सति । हस्तरोधिनी सतीति च गम्यते॥ " बलिहस्तांशवः कराः " इत्यमरः ॥ अनल्पाभ्यसूयोऽधिकविद्वेषः स्यात् । प्रायेणेच्छाविशेषविघाताद्वेषो रोषविशेषश्च कामिनां भवतीति भावः । किं च " ब्रह्माणं वार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जनः । श्रेयांसि तस्य नश्यन्ति रौरवं च भवेद्ध्रुवम्" इति निषेधात्कार्यहानिर्भविष्यतीति ध्वनिः ॥

४४ गम्भीराया इति ॥ गम्भीरा नाम सरित् ॥ उदात्तनायिका च ध्वन्यते ॥ तस्याः प्रसन्नेऽनुरक्तत्वाद्दोषरहिते चेतसीव प्रसन्नेऽतिनिर्मले पयसि । प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगः सुन्दरः ॥ " सुन्दरेऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे । तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः " इति शब्दार्णवे ॥ ते तव छाया चासावात्मा च सोऽपि प्रतिबिम्बशरीरं वा प्रवेशं लप्स्यते । अपिशब्दात् साक्षात्प्रवेशमनिच्छोरपीति भावः। तस्माच्छायाद्वारापि प्रवेशावश्यंभावित्वादस्या गम्भीरायाः । कुमुदवद्विशदानि धवलानि चटुलानि शीघ्राणि शफराणां मीनानामुद्वर्तनान्युल्लुण्ठनान्येव प्रेक्षितान्यवलोकनानि ॥ " त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम् " इति विश्वः ॥ एतावदेव गम्भीराया अनुरागलिङ्गम् । धैर्याद्धाष्टर्यात् । वैयात्यादिति यावत् । मोघीकर्तुं विफलीकर्तुं नार्हसि। नानुरक्ता विप्रलब्धव्येत्यर्थः ॥ धूर्तलक्षणं तु—"क्लिश्नाति नित्यं दयितामङ्कस्थामतिसुन्दरः । अन्यत्यरक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुञ्चति" इति ॥

---

44. Yet thy self in the form of a shadow, naturally handsome, will enter the pellucid water of the *Gambhîrâ* (river) as into a pure heart; thou dost not, therefore, deserve by impudence on thy part, to disappoint its glances consisting of the rapid gambols of fish and as white as lotuses.

---

44. M. तस्मात्तस्याः for तस्मादस्याः . G2. K2. चपल° for चटुल°. W. M. °सफर° for °शफर°.

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४५ ॥
त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४६ ॥

४५. तस्या इति ॥ हे सखे । प्राप्ता वानीरशाखा वेतसशाखा येन तत्तथोक्तमत एव किंचिदीषत्करधृतं हस्तावलम्बितमिव स्थितम् । मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम् ॥ " नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ" इति यादवः ॥ नीलं कृष्णवर्णं तस्या गम्भीरायाः सलिलमेव वसनं । नीलाम्बरधारणं विरहतापनिवारणमिति प्रसिद्धम् ॥ हृत्वापनीय लम्बमानस्य पीतसलिलभराल्लम्बमानस्य । अन्यत्र जघनारूढस्य । ते तव प्रस्थानं प्रयाणं कथमपि कृच्छ्रेण भावि ॥ कृच्छ्रत्वे हेतुमाह—ज्ञातेति ॥ ज्ञातास्वादोऽनुभूतरसः कः पुमान्विवृतं प्रकटीकृतं जघनं कटिस्तत्पूर्वभागो वा यस्यास्ताम् ॥ " जघनं स्यात्कटौ पूर्वश्रोणिभागापरांशयोः " इति यादवः ॥ विहातुं त्यक्तुं समर्थः । न कोऽपीत्यर्थः ॥

४६. त्वदिति ॥ त्वन्निष्यन्देन तव वृष्ट्योच्छ्वसिताया उपबृंहिताया वसु-

45. After taking away its dark garment in the form of water which, having left the loins in the form of the bank and clung to the branches of the reeds, is, as it were, slightly held up by the hand, thou, Oh friend, hanging down (on account of the weight of water drunk) wilt depart with great difficulty:—(for) who that has (once) experienced the pleasure is able to leave a woman with her hips uncovered?

46. A cool wind pleasant on account of contact with the smell of

45. M. नीत्वा for हृत्वा. K1. N. M. लब्धास्वादः for ज्ञातास्वादः. W. M पुलिनजघनां, G1. G2. K1. K2. N. M. विपुलजघनां, M. फुलितजघनां for विवृतजघनां.

46. W. M. G2. °निस्यंदो°, M. °निष्पन्दो°, K1. K2. R. N. M. °निस्पंदो° for °निष्यन्दो°. W. K2. M. °पुण्यः for °रम्यः . W. G2. K1. R. N. M. °श्रोतोरन्ध्र° for स्रोतोरन्ध्र°. P. °मधुरं for° सुभगं. P. M. वातः for वायुः. P. M. काननौदुम्बराणां, W. M. काननोदुम्बराणां, M. काननोदम्बराणां for काननोदुम्बराणाम्.

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४७ ॥

धाया भूमेर्गन्धस्य संपर्केण रम्यः । सुरभिरित्यर्थः ॥ स्रोतःशब्देनेन्द्रियवाचिना तद्विशेषो घ्राणं लक्ष्यते ॥ "स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः" इति विश्वः ॥ स्रोतोरन्ध्रेषु नासाग्रकुहरेषु यद्ध्वनितं शब्दस्तेन सुभगं यथा तथा दन्तिभिर्गजैः पीयमानः । वसुधागन्धलोभादाघ्रायमाण इत्यर्थः । अनेन मान्द्यमुच्यते । काननेषु वनेषूदुम्बराणां जन्तुफलानाम् ॥ "उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः" इत्यमरः ॥ परिणमयिता परिपाचयिता ॥ "मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वः ॥ शीतो वायुः देवपूर्वं देवशब्दपूर्वं गिरिम् । देवगिरिमित्यर्थः । उपजिगमिषोरुपगन्तुमिच्छोः ॥ गमेः सन्नन्तादुप्रत्ययः ॥ ते तव नीचैः शनैर्वास्यति । त्वां वीजयिष्यतीत्यर्थः ॥ संबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी ॥ "देवपूर्वं गिरिम्" इत्यत्र देवपूर्वत्वं गिरिशब्दस्य । न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति । संज्ञायाः संज्ञित्वाभावादवाच्यवचनं दोषमाहुरालंकारिकाः । तदुक्तमेकावल्याम्— "यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत्" इति ॥ समाधानं तु देवशब्दविशेषितेन गिरिशब्देन शब्दपरेण मेघोपगमनयोग्यो देवगिरिर्लक्ष्यत इति कथंचित्संपाद्यम् ॥

४७. तत्रेति ॥ तत्र देवगिरौ नियता वसतिर्यस्य तम् । नित्यसंनिहितमित्यर्थः ॥ पुरा किल तारकाख्यासुरविजयसंतुष्टः सुरप्रार्थनावशाद्भगवान्भवानीनन्दनः स्कन्दो नित्यमहमिह सह शिवाभ्यां वसामीत्युक्त्वा तत्र वसतीति प्रसिद्धिः ॥ स्कन्दं कुमारं स्वामिनम् । पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः । पुष्पमेघीकृतात्मा कामरूपत्वात्पुष्पवर्षुकमेघीकृतविग्रहः सन्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः । पुष्पासारैः पुष्पसंपातैः ॥ "धारासंपात आसारः" इत्यमरः ॥ भवान्स्वयमेव स्नपयत्वभिषिञ्च-

---

the ground increased by thy showers, drunk in by eleph.nts in a manner pleasant on account of sounds in the apertures of their trunks, the ripener of the forest figs, will gently blow for thee, desirous of proceeding to *Devagiri*.

47. Turning thyself into a flower-cloud thou shouldst sprinkle *Skanda*, having a permanent residence there, with showers of blossoms moistened with the water of the Celestial Ganges:—For, that (*Skanda*) is the sun-excelling lustre placed by the bearer of the young moon (*Siva*) in the mouth of *Agni* (god of fire) for the protection of Indra's hosts.

---

47. M. वसूनां for चमूनां. G2. N. M. तद्वितेजः for तद्धि तेजः.

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४८ ॥

तु । स्वयं पूजाया उत्तमत्वादिति भावः ॥ तथा च शंभुरहस्ये—" स्वयं यजाति चेद्देवमुत्तमा सोदरात्मजैः । मध्यमा या यजेद्भृत्यैरधमा याजनक्रिया " इति ॥ स्कन्दस्य पूज्यत्वसमर्थनेनार्थेनार्थान्तरं न्यस्यति—रक्षेति ॥ तद्भगवान् । स्कन्द इत्यर्थः ॥ विधेयप्राधान्यान्नपुंसकनिर्देशः ॥ वासवस्येमा वासव्यः ॥ " तस्येदम् " इत्यण् ॥ तासां वासवीनामैन्द्रीणां चमूनां सेनानां रक्षा एव हेतुः तस्य रक्षाहेतो रक्षया कारणेन । रक्षार्थमित्यर्थः ॥ " षष्ठी हेतुप्रयोगे " इति षष्ठी ॥ नवशशिभृता भगवता चन्द्रशेखरेण । वहतीति वहः ॥ पचाद्यच् ॥ हुतस्य वहो हुतवहो वह्निस्तस्य मुखे संभृतं संचितम् । आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यम् ॥ " अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितियया " इति समासः ॥ तेजो हि साक्षाद्भगवतो हरस्यैव मूर्त्यन्तरमित्यर्थः । अतः पूज्यमिति भावः । मुखग्रहणं तु शुद्धत्वसूचनार्थम् । तदुक्तं शंभुरहस्ये—" गवां पश्चाद्द्विजस्याङ्घ्रिर्योगिनां हृत्कवेर्वचः । परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्निवाजिनाम् " इति ॥

४८. ज्योतिरिति ॥ ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयस्तासां वलयं मण्डलं यस्यास्तीति तथोक्तम् । गलितं भ्रष्टम् । न तु लील्यात्स्वयं छिन्नमिति भावः । यस्य मयूरस्य बर्हं पिच्छम् ॥ " पिच्छबर्हे नपुंसके " इत्यमरः ॥ भवानी गौरी । पुत्रप्रेम्णा पुत्रस्नेहेन कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्रापि तद्योगि यथा तथा कर्णे करोति । दलेन सह धारयतीत्यर्थः । यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि दलार्हे कर्णे करोति ॥ क्विबन्तात्सप्तमी ॥ दलं परिहृत्य तत्स्थाने बर्हं धत्ते

48. Afterwards, by means of (thy) thunderings (made) intense by being reverberated by the mountain, thou shouldst make that *Skanda's* peacock dance, which has the corners of its eyes whitened by the light of Siva's moon, and whose molting plume covered with circlets of streaks of lustre, *Pârvati* places on her ear, in such a manner as to come in contact with the lotus-leaf (already resting there) through affection for her son.

48. M. °वलयगलितं for °वलयि गलितं. M, पुत्रस्नेहात्, K2. M. पुत्रप्रीत्या for पुत्रप्रेम्णा. K2. M. कुवलयपद° for कुवलयदल°. M. °क्षेपि, N. °स्पर्शि for °प्रापि. W. M. प्याययेः, M. आप्याययेः for पावकेः.

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य-
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ४९॥

इत्यर्थः ॥ नाथस्तु " कुवलयदलक्षेपि " इति पाठमनुसृत्य " क्षेपो निन्दापसारणं वा " इति व्याख्यातवान् ॥ हरशशिरुचा हरशिरश्चन्द्रिकया धौतापाङ्गं स्वतोऽपि शौक्ल्यादतिधवलितनेत्रान्तम् ॥ " अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ" इत्यमरः ॥ पावकस्याग्नेरपत्यं पावकिः स्कन्दः ॥" अत इञ्" इति इञ् ॥ तस्य तं पूर्वोक्तं मयूरं पश्चात्पुष्पाभिषेचनानन्तरमद्रेर्देवगिरेः ॥ कर्तुः ॥ ग्रहणेन गुहासंक्रमणेन गुरुभिः । प्रतिध्वानमहद्भिरित्यर्थः । गर्जितैर्नर्तयेथा नृत्यं कारय । मार्दङ्गिकभावेन भगवन्तं कुमारमुपास्स्वेति भावः ॥ " नर्तयेथाः " इत्यत्र " अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् " इत्यात्मनेपदापवादः " निगरणचलनार्थेभ्यश्च" इति परस्मैपदं वा न भवति तस्य " न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः " इति प्रतिषेधात् ॥

४९. आराध्येति ॥ एनं पूर्वोक्तं शरा बाणतृणानि ॥ " शरो बाणतृणे बाणे " इति शब्दार्णवे ॥ तेषां वनं शरवणम् ॥ " प्रनिरन्तःशरे– " इत्यादिना णत्वम् ॥ तत्र भवो जन्म यस्य तं शरवणभवम् देवं स्कन्दम् ॥" शरजन्मा षडाननः" इत्यमरः ॥" अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः " इति वामनः । अवर्ज्योऽगतिकत्वादाश्रणीय इत्यर्थः ॥ आराध्योपास्य वीणिभिर्वीणावद्भिः ॥ व्रीह्यादित्वादिनिः ॥ सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः । भगवन्तं स्कन्दमुपवीणयितुमागतैरिति भावः । जलकणभयात् । जलसेकस्य वीणाक्कणनप्रतिबन्धकत्वादिति भावः । मुक्तमार्गस्त्यक्तवर्त्मा सन्नुल्लङ्घिताध्वा । कियन्तमध्वानं गतः

49. After paying thy respects to the god (Skanda) born in a forest of reeds thou, with thy path being left by the pairs of *Siddha's* bearing lutes (in their hands) from fear of drops of water, having traversed the road (a little further), shouldst stop (there) desirous of doing honour to Rantideva's fame sprung from the slaughter of the daughters of *Surabhi* (cows) and transformed into a river (*Charmanvati* by name) on the earth.

49. K2. एवं for एनं. W. M. शरवन° for शरवण°. G2. K2. R. N. M. °भुवं for °भवं. W. M. दत्तमार्गः, M. दत्तवर्त्मा, K2. त्यक्तमार्गः for मुक्तमार्गः. G2. K1. N. R. M. श्रोतोमूर्त्या for स्रोतोमूर्त्या. M. परिणितां for परिणतां.

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ५० ॥

इत्यर्थः । सुरभितनयानां गवामालम्भेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् । भुवि लोके स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम् । चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः । मानयिष्यन्सत्कारिष्यन्व्यालम्बेथाः । आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः ॥ पुरा किल राज्ञो रन्तिदेवस्य गवालम्भेष्वेकत्र संभृताद्रक्तनिष्यन्दाच्चर्मराशेः काचिन्नदी सस्यन्दे । सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति ॥

५०. त्वयीति ॥ शार्ङ्गिणः कृष्णस्य वर्णस्य कान्तेश्चौरे वर्णचौरे । तत्तुल्यवर्ण इत्यर्थः । त्वयि जलमादातुमवनते सति पृथुमपि दूरभावात् दूरत्वात्तनुं सूक्ष्मतया प्रतीयमानं तस्याः सिन्धोश्चर्मण्वत्याख्यायाः प्रवाहम् । गगने गतिर्येषां ते गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः ॥ अयमपि बहुव्रीहिः पूर्ववज्जन्मादुत्तरपदेषु द्रष्टव्यः ॥ नूनं सत्यं दृष्टीरावर्ज्य नियम्यैकमेकयष्टिकं स्थूलो महान्मध्यो मध्यमणीभूत इन्द्रनीलो यस्य तं भुवो भूमेर्मुक्तागुणं मुक्ताहारमिव प्रेक्षिष्यन्ते ॥ अत्रात्यन्तनीलमेघसंगतस्य प्रवाहस्य भूकण्ठमुक्तागुणत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षैवेयमितीवशब्देन व्यज्यते । निरुक्तकारस्तु " तत्र तत्रोपमा यत्र इवशब्दस्य दर्शनम् " इतीवशब्ददर्शनादत्राप्युपमैवेति बभ्राम ॥

50. While thou, pilferer of the hue of *Krishna* art bending down to take water (from the river) the sky-goers, having turned their eyes down will really look upon the stream of that river, though large, (appearing to be) small owing to distance, as if it were the earth's single-stringed pearl-necklace with a large sapphire in the centre.

50. K1. दूरदेशात् for दूरभावात्. G1. G2. R. N. K2. M. दूरं for नूनं. M. आबध्य for आवर्ज्य. M. वृष्टीः for दृष्टीः.

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ५१ ॥

५१. तामिति ॥ तां चर्मण्वतीमुत्तीर्य भ्रुवो लता इव भ्रूलताः ॥ उपमितिसमासः ॥ तासां विभ्रमा विलासाः परिचिताः क्लृप्ता येषु तेषां पक्ष्माणि नेत्रलोमानि ॥ " पक्ष्म सूत्रादिसूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमनि " इति विश्वः ॥ तेषामुत्क्षेपादुन्नमनाद्धेतोः । कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीलशबलाः ॥ " वर्णो वर्णेन " इति समासः ॥ " कृष्णरक्तासिताः शाराः " इति यादवः ॥ ततश्च शारशब्दादेव सिद्धे कार्ष्ण्ये पुनः कृष्णपदोपादानं कार्ष्ण्यप्राधान्यार्थम् । रक्तत्वं तु न विवक्षितमुपमानानुसारात्तस्य स्वाभाविकस्य स्त्रीनेत्रेषु सामुद्रिकविरोधादितरस्याप्रसङ्गात् । क्वचिद्भावकथनं तूपपत्तिविषयम् ॥ उपरि विलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभा येषां तेषाम् । कुन्दानि माघ्यकुसुमानि ॥ " माघ्यं कुन्दम् " इत्यमरः ॥ तेषां क्षेप इतस्ततश्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो ये मधुकरास्तेषां श्रियं मुष्णन्तीति तथोक्तानाम् । क्षिप्यमाणकुन्दानुविधायिमधुकरकल्पानामित्यर्थः । दशपुरं रन्तिदेवस्य नगरं तत्र वध्वः स्त्रियः ॥ " वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च " इत्यमरः ॥ तासां नेत्रकौतूहलानां नेत्राभिलाषाणाम् । साभिलाषदृष्टीनामित्यर्थः । आत्मबिम्बं स्वमूर्तिं पात्रीकुर्वन्विषयीकुर्वन्व्रज गच्छ ॥

---

51. Crossing that (river) proceed:—making thy body, the object of curiosity of the *Dashapura* women's eyes, acquainted with the (graceful) movements of the creeper-like eyebrows, having dark and variegated lights flashing up by reason of the uplifting of the eyelashes, and therefore stealing (as it were) the beauty of bees following the movements of *Kunda* flowers.

---

51. P. W. G1. G2. K1. R. N. M. °कृष्णसार° for °कृष्ण-शार°. G2. M. कुन्दोत्क्षेपा° for कुन्दक्षेपा°. W. M. °श्रीजुषां, M. °श्रीयुषां° G2. N. M. °श्रीमुखां for °श्रीमुषाम्.

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ५२ ॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमसि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५३ ॥

५२. ब्रह्मावर्तमिति ॥ अथानन्तरं ब्रह्मावर्तं नाम जनपदं देशम् ॥ अत्र मनुः—“ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ” इति ॥ छाययानातपमण्डलेन गाहमानः प्रविशन्न तु स्वरूपेण । “पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत् ” इति वचनात् । क्षत्रप्रधनपिशुनम् । अद्यापि शिरःकपालादिमत्तया कुरुपाण्डवयुद्धसूचकमित्यर्थः ॥ “ युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्” इत्यमरः ॥ तत्प्रसिद्धं कुरूणामिदं कौरवं क्षेत्रं भजेथाः । कुरुक्षेत्रं व्रजेत्यर्थः। यत्र कुरुक्षेत्रे गाण्ड्यस्यास्तीति गाण्डीवं धनुर्विशेषः ॥ “गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम् ” इति मत्वर्थीयो वप्रत्ययः ॥ “ कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डिवौ पुंनपुंसकौ ” इत्यमरः ॥ तद्धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वार्जुनः ॥ “ वा संज्ञायाम् ” इत्यनङादेशः ॥ शितशरशतैर्निशितबाणसहस्रै राजन्यानां राज्ञां मुखानि धाराणामुदकधाराणां पातैः कमलानि त्वमिवाभ्यवर्षदभिमुखं वृष्टवान् । शरवर्षणशिरांसि चिच्छेदेत्यर्थः ॥

५३. हित्वेति ॥ बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवस्नेहेन । न तु भयेन। समरविमुखो

---

52. Then entering the country (called) *Brahmâvarta* by (thy) shadow, thou shouldst visit the field of the *Kurus*, indicative of the war between the *Kshatriyas* in which, the bearer of the *Gândiva* bow (Arjuna) covered the faces of the *Kshatriya* princes with hundreds of sharp arrows, as thou dost the lotuses with heavy showers.

53. Having made use, O friend, of the waters of the *Sarasvati*,

---

52. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अधः, M. अदः, M. अदुः for अथ. M. सितशर° for शितशर°. G1. K1. N. M. गाङ्गिव° for गाण्डीव°. W. M. अभ्याषिञ्चन् for अभ्यवर्षन्.

53. M. कृत्वा, M. छित्वा, M. भूत्वा, K1. त्यक्त्वा for हित्वा. P. N. M. बन्धुस्नेहात् for बन्धुप्रीत्या. P. G1. K2. M. अधिगमम् for अभिगमम्. W. C1. C2. G1. G2. K1. K2. R. N. M. त्वमपि for त्वमसि. G1. M. भवसि for भविता.

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५४ ॥

बुद्धिनिःस्पृहः । लाङ्गलमस्यास्तीति लाङ्गली हलधरः । अभिमतरसामभीष्टस्वादां तथा रेवत्याः स्वप्रियाया लोचने एवाङ्कः प्रतिबिम्बितत्वाच्चिह्नं यस्यास्तां हालां सुराम् ॥ " सुरा हलिप्रिया हाला " इत्यमरः ॥ " अभिप्रयुक्तं देशभाषापदमित्यत्र सूत्रे हालेति देशभाषापदमप्यतीव कविप्रयोगात्साधु " इत्युदाजहार वामनः ॥ हित्वा त्यक्त्वा । दुस्त्यजामपीति भावः । याः सारस्वतीरपः सिषेवे । हे सौम्य सुभग । त्वं तासां सरस्वत्या नद्या इमाः सारस्वत्यस्तासामभिगमं सेवां कृत्वान्तोऽन्तरात्मनि शुद्धो निर्मलो निर्दोषो भविता ॥ " ण्वुल्तृचौ " इति तृच् ॥ असि सद्य एव पूतो भविष्यसीत्यर्थः ॥ " वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा " इति वर्तमानप्रत्ययः ॥ वर्णमात्रेण वर्णेनैव कृष्णः श्यामः । न तु पापेनेत्यर्थः । अन्तःशुद्धिरेव संपाद्या न तु बाह्या । बहिःशुद्धोऽपि सूतवधप्रायश्चित्तार्थं सारस्वतसलिलसेवी तत्र भगवान्बलभद्र एव निदर्शनम् । अतो भवतापि सरस्वती सर्वथा सेवितव्येति भावः ॥

५४. तस्मादिति ॥ तस्मात्कुरुक्षेत्रात्कनखलस्याद्रेः समीपेऽनुकनखलम् ॥ " अनुर्यत्समया " इत्यव्ययीभावः ॥ शैलराजाद्धिमवतोऽवतीर्णां सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिम् । स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतामित्यर्थः । जह्नोर्नाम राज्ञः कन्यां जाह्नवीं गच्छेर्गच्छ ॥ विध्यर्थे लिङ् ॥ या जाह्नवी गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटिरचना सापत्न्यरोषाद्भ्रूभङ्गकरणं ॥ तां फेनैर्विहस्यहसित्वेव ॥ धावल्यात्फेनानां हासत्वेनोत्प्रेक्षा ॥ इन्दौ शिरोमाणिक्यभूते लग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्याः सेन्दुलग्नोर्मिहस्ता सती शंभोः केशग्रहणमकरोत् । यथा काचित्प्रौढा नायिका

which the bearer of the plough (Balarâma), refraining from the wine, possessed of an agreeable flavour (and) bearing the marks of *Revati's* eyes (through reflection) partook of, when he turned his face away from the battle field, out of regard for his kinsmen, thou (thus) purified within, wilt be dark only in colour.

54. Thence thou shouldst go by the side of *Kanakhala* to Jahnu's daughter (the Ganges), descended from the Lord of mountains (The Himâlaya), (and) forming a flight of steps ta heaven for *Sagara's*

54. W. M. वक्रभ्रुकुटि° for वक्त्रभ्रुकुटि°. W. N. M. विहस्यैव, M. विहस्यैाच° for विहस्येव. N. °लग्नोर्मि° for लग्नोर्मि°.

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५५ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५६ ॥

सपत्नीमसहमाना स्ववाल्लभ्यं प्रकटयन्ती स्वभर्तारं सह शिरोरत्नेन केशेष्वाकर्षति तद्वदिति भावः ॥ इदं च पुरा किल भगीरथप्रार्थनया भगवतीं गगनपथात्पतन्तीं गङ्गां गङ्गाधरो जटाजूटेन जग्राहेति कथामुपजीव्योक्तम् ॥

५५. तस्या इति ॥ सुरगज इव कश्चिद्दिग्गज इव व्योम्नि पश्चादर्धं पश्चार्धः । पश्चिमार्धमित्यर्थः ॥ पृषोदरादित्वात्साधुः ॥ तेन लम्बत इति पश्चार्धलम्बी सन्पश्चार्धभागेन व्योम्नि स्थित्वा । पूर्वार्धेन जलोन्मुख इत्यर्थः । अच्छस्फटिकविशदं निर्मलस्फटिकावदातं तस्या गङ्गाया अम्भस्तिर्यक्तिरश्चीनं यथा तथा पातुं त्वं तर्कयेर्विचारयेश्चेत् । सपदि स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या संक्रामन्त्या भवतश्छायया प्रतिबिम्बेनासौ गङ्गा अस्थाने प्रयागादन्यत्रोपगतः प्राप्तो यमुनासंगमो यया सा तथाभूतेवाभिरामा स्यात् ॥

५६. आसीनानामिति ॥ आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरिकामृगा-

sons; which (river) laughing, as it were, with its foam at the frowns on Gourî's face, seized the hair of Siva with her wave-hand touching the moon on his head.

55. Shouldst thou think of drinking obliquely of its water—clear as pure crystal, with thy hinder part resting on the sky, like a celestial elephant, then owing to thy shadow moving along on the stream, it (the river) would at once be as beautiful as if it had been joined by the *Yamunâ* at a place other than Prayâga.

55. On reaching the mountain, the source of the same river (the

55. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. पूर्वार्धलम्बी for पश्चार्धलम्बी. R. M. °स्फुटिक° for °स्फटिक°. M. संतर्पन्त्या, W. संसर्पन्त्याः for संसर्पन्त्या. P. G1. G2. K1. K2. B. R. N. M. छायया सा for छाययासौ. M. °उपनत° for °उपगत°. W. G1. G2. K1. K2. N. M. °संगमेन G. M. °संगमे च for °संगमेव. M. अभिरम्या G1. अभिरामं for अभिरामा.

56. M. शुभ्राम्, K2. M. रम्यां for शुभ्र°. M. तुखारैः for तुषारैः.

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५७ ॥

णाम् ॥ अन्यथा नाभिगन्धानुपपत्तेः ॥ नाभिगन्धैः कस्तूरीगन्धैस्तेषां तदुद्भवत्वात् । अत एव मृगनाभिसंज्ञा च ॥ " मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च " इत्यमरः ॥ अथवा नाभयः कस्तूर्यः ॥ " नाभिः प्रधाने कस्तूरीमदे च क्वचिदीरितः " इति विश्वः ॥ तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभीकृताः शिला यस्यतं तस्या गङ्गाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । तुषारैर्गौरं सितम् ॥ " अवदातः सितो गौरः " इत्यमरः ॥ अचलं प्राप्य । विनीयतेऽनेनेति विनयनम् ॥ करणे ल्युट् ॥ अध्वश्रमस्य विनयनेऽपनोदके तस्य हिमाद्रेः शृङ्गे निषण्णः सन् । शुभ्रो यस्त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषो वृषभः ॥ " सुकृते वृषभे वृषः " इत्यमरः ॥ तेनोत्खातेन विदारितेन पङ्केन सहोपमेयामुपमातुमर्हां शोभां वक्ष्यसि वोढासि ॥ वहतेर्लृट् ॥ " त्रिनयन—" इत्यत्र " पूर्वपदात्संज्ञायामगः " इति णत्वं न भवति " क्षुभ्नादिषु च " इति निषेधात् ॥ तस्याः प्रभवमित्यादिना हिमाद्रौ मेघस्य वैवाहिको गृहविहारो ध्वन्यते ॥

५७. तमिति ॥ वायौ वनवाते सरति वाति सति सरलानां देवदारुद्रुमाणां स्कन्धाः प्रदेशविशेषाः ॥ " अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः " इत्यमरः ॥ तेषां संघट्टनेन संघर्षणेन जन्म यस्य स तथोक्तः ॥ जन्मोत्तरपदत्वाद्व्यधिकरणोऽपि बहुव्रीहिः साधुरित्युक्तम् ॥ उल्काभिः स्फुलिङ्गैः क्षपिता निर्दग्धाश्चमरीणां बालभाराः केशसमूहा येन । दव इत्यग्निर्दवाग्निर्वनवह्निः ॥ " वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते " इति यादवः ॥ तं हिमाद्रिं बाधेत चेत्पीडये-

Ganges) white with snow, and with its rocks scented by the musk of the deer lying (there), (and) seated on its crest, remover of the fatigue of the journey, thou wilt have a beauty comparable to the mud dug up by the white bull of the three-eyed god (Síva).

57. If the forest conflagration, which is caused by the mutual friction of the trunks of the *Sarala* trees whilst the wind is blowing and which with its flames destroy the bushy tails of the *Chamaris*, should injure that (mountain), it behoves thee to completely extinguish it with thousands of water-showers; for the resources of the great, have for their end, (only) the alleviation of the miseries of the distressed.

57. P. त्वं चेद् for तं चेद्. G1. K2.R. N. M. वहति, M. स्फुरति for सरति. W. M. °क्षयित° for °क्षपित.°

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मि-
न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णा-
न्के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५८॥

यदि । एनं दवाग्निं वारिधारासहस्रैः शमयितुमर्हसि ॥ युक्तं चैतदित्याह—उत्तमानां महतां संपदः समृद्धय आपन्नानामार्त्तानामार्त्तिप्रशमनमापन्निवारणमेव फलं प्रयोजनं यासां तास्तथोक्ता हि । अतो हिमाचलस्य दावानलस्त्वया शमयितव्य इति भावः ॥

५८. य इति ॥ तस्मिन्हिमाद्रौ संरम्भः कोपः ॥ " संरम्भः संभ्रमे कोपे" इति शब्दार्णवे ॥ तेनोत्पतन उत्प्लवने रभसो वेगो येषां ते तथोक्ताः ॥ "रभसो वेगहर्षयोः" इति विश्वः ॥ ये शरभा अष्टापदमृगविशेषाः ॥ " शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे " इति विश्वः ॥ मुक्तोऽध्वा शरभोत्प्लवनमार्गो येन तं भवन्तं सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः ॥ संभावनायां लिङ् ॥ भवतोऽतिदूरत्वात्स्वाङ्गभङ्गातिरिक्तं फलं नास्ति लङ्घनस्येत्यर्थः ॥ ताञ्शरभांस्तुमुलाः संकुलाः करका वर्षोपलाः ॥ " वर्षोपलस्तु करका " इत्यमरः॥ तासां वृष्टिस्तस्याः पातेनावकीर्णान्विक्षिप्तान्कुर्वीथाः कुरुष्व ॥ विध्यर्थे लिङ् ॥ क्षुद्रोऽप्याधिक्षिपन्प्रतिपक्षः सद्यः प्रतिक्षेप्तव्य इति भावः । तथाहि ॥ आरभ्यन्त इत्यारम्भाः कर्माणि तेषु यत्न उद्योगः स निष्फलो येषां ते तथोक्ताः । निष्फलकर्मोपक्रमा इत्यर्थः । अतः के वा परिभवपदं तिरस्कारपदं न स्युर्न भवन्ति । सर्वे एव भवन्तीत्यर्थः ॥ यदत्र " घनोपलस्तु करक " इति यादववचनात्करकशब्दस्य नियतपुंलिङ्गताभिप्रायेण " करकाणामावृष्टिः " इति केषांचिद्व्याख्यानं तदन्ये

58. Those *Sàrabha's* there, who, impetuous in their angry jump may on a sudden (attempt to) outstrip thee, removed from their path (only) to injure their own bodies, thou shouldst scatter by means of tumultuous showers hail-stones;—who indeed that strive in vain in their undertakings, would not become an object of contempt?

58. W. K2. M. त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः for संरंभोत्पतनरभसाः. M. कायभंगाय for स्वांगभंगाय. W. K2. M. दर्पोत्सेकादुपरि, R. N. M. मुक्तध्वानं सपदि for मुक्ताध्वानं सपदि. G1. G2. K1. R. N. M. सरभाः for शरभाः. W. K2. M. लंघयिष्यन्त्यलंघ्यम्, M. लंभयेयुर्भवन्तम् for लंघयेयुर्भवन्तम्, W. G1. G2. K2. R. N. M. °वृष्टिहासाव° for °वृष्टिपाताव°. P. केषां न for के वा न. M. °पाशाः for °यत्नाः

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५९ ॥

नानुमन्यन्ते । "वर्षोपलस्तु करका" इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामिना "कमण्डलौ च करकः सुगते च विनायक" इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति वदतोभयलिङ्गताप्रकाशनात् । यादवस्य तु पुंलिङ्गताविधाने तात्पर्यं न तु स्त्रीलिङ्गतानिषेध इति न तद्विरोधोऽपि । "करकस्तु करङ्के स्याद्दाडिमे च कमण्डलौ । पक्षिभेदे करे चापि करका च घनोपलं" इति विश्वप्रकाशवचने तूभयलिङ्गता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता । अत एव रुद्रः—"वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृश्यते" इति ॥

५९. तत्रेति ॥ तत्र हिमाद्रौ दृषदि कस्यांचिच्छिलायां व्यक्तं प्रकटं शश्वत्सदा सिद्धैर्योगिभिः ॥ "सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः" इति विश्वः ॥ उपचितबलिं रचितपूजं ॥ "बलिः पूजोपहारयोः" इति यादवः ॥ अर्धश्चासाविन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः ॥ "अर्धः खण्डे समांशेऽर्धम्" इति विश्वः ॥ स मौलौ यस्य तस्येश्वरस्य चरणन्यासं पादविन्यासम् ॥ भक्तिः पूज्येष्वनुरागस्तया नम्रः सन्परीयाः प्रदक्षिणं कुरु ॥ परिपूर्वादिणो लिङ् ॥ यस्मिन्पादन्यासे दृष्टे सत्युद्धूतपापा निरस्तकल्मषाः सन्तः श्रद्दधाना विश्वसन्तः पुरुषाः । श्रद्धा विश्वासः । आस्तिक्यबुद्धिरिति यावत् ॥ "श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिर्वक्तव्या" इति श्रत्पूर्वाद्दधातेः शानच् ॥ करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागानन्तरम् ॥ "करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इत्यमरः ॥ स्थिरं शाश्वतं गणानां प्रमथानां पदं स्थानम् ॥ "गणाः प्रमथसंख्यौघाः" इति वैजयन्ती ॥ तस्य प्राप्तये कल्पिष्यन्ते समर्था भविष्यन्ति ॥ क्लृतेः पर्याप्तिवचनस्यालमर्थत्वात्तद्योगे

---

59. Bending down in adoration thou shouldst circumambulate the foot-mark of *Siva*, wearing the half-moon on his head, visible there on a rock, and perpetually covered over with offerings, by devotees; on seeing which, the faithful, freed from their sins, will become fit to attain to the permanent position of *Ganas* after their separation from the body.

---

59. P. G1. G2. K1. K2. R. N. M. उपहृत°, M. उपहित°, M. उपहृत° for उपचित°. W. G1. G2. K1. M. दूरं for ऊर्ध्वम्. C1. C2. G1. G2. K1. R. N. M. संकल्पन्ते, W. K2. M. कल्पन्तऽस्य for कल्पिष्यन्ते. G2. M, दृष्टे यस्मिन् for यस्मिन्दृष्टे.

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किंनरीभिः ।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्या-
त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ६० ॥

" नमःस्वस्ति—" इत्यादिना चतुर्थी ॥ " अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् " इति भाष्यकारः ॥ " अव्यक्तो व्यञ्जयामास शिवः श्रीचरणद्वयम् ॥ हिमाद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ दृष्ट्वा श्रीचरणन्यासं साधकः स्थिरयेत्तनुम् । इच्छाधीनशरीरो हि विचरेच्च जगत्त्रयम् " इति शंभुरहस्ये ॥

६०. शब्दायन्त इति ॥ हे मेघ । अनिलैः पूर्यमाणाः कीचका वेणुविशेषाः ॥ " वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः " इत्यमरः ॥ " कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे " इति विश्वः ॥ मधुरं श्रुतिसुखं यथा तथा शब्दायन्ते शब्दं कुर्वन्ति । स्वनन्तीत्यर्थः ॥ " शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे " इति क्यङ् ॥ अनेन वंशवाद्यसंपत्तिरुक्ता । संसक्ताभिः संयुक्ताभिर्वंशवाद्यानुषक्ताभिर्वा ॥ " संरक्ताभिः " इति पाठे संरक्तकण्ठीभिरित्यर्थः ॥ किंनरीभिः किंनरस्त्रीभिः । त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम् ॥ "तद्धितार्थोत्तरपद—" इति समासः । पात्रादित्वान्नपुंसकत्वम् ॥ तस्य विजयो गीयते । कन्दरेषु दरीषु ॥ " दरी तु कन्दरो वा स्त्री " इत्यमरः ॥ ते तव निर्ह्रादो मुरजे वाद्यभेदे ध्वनिरिव । मुरजध्वनिरिवेत्यर्थः । स्याच्चेत्तर्हि तत्र चरणसमीपे पशुपतेर्नित्यं संनिहितस्य शिवस्य । नृत्ये इति शेषः । संगीतं सम्यग् गीतं ॥ " तौर्यत्रिकं तु संगीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके । तूर्याणां त्रितये च " इति शब्दार्णवे ॥ तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतवस्तु ॥ " अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु " इत्यमरः ॥ समग्रः संपूर्णो भावी ननु भविष्यति खलु ॥ " भविष्यति गम्यादयः " इति भविष्यदर्थे णिनिः ॥

---

60. The bamboos filled with wind are making a sweet sound, the conquest of Tripura, is being sung by the wives of the *Kinnaras*, united (in chorus) and if thou shouldst be thundering in the caves so as to be) in the place of the sound of a drum, will not the aparatus for Siva's concert be complete there?

---

60. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. संरक्ताभिः for संसक्ताभिः. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. निर्ह्रादी ते for निर्ह्रादस्ते. P. मुरव इव, G1. G2. M. मरुज इव N. M. मुरज इव for मुरज इव. K2. M. कन्दरासु for कन्दरेषु. P. K2. M. N. समस्तः for समग्रः.

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषा-
न्हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः॥६१॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यंबकस्याट्टहासः ॥ ६२ ॥

६१. प्रालेयेति ॥ प्रालेयाद्रेर्हिमाद्रेरुपतटं तटसमीपे ॥ " अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिना समीपार्थेऽव्ययीभावः ॥ तांस्तान् ॥ वीप्सायां द्विरुक्तिः ॥ विशेषान्द्रष्टव्यार्थान् ॥"विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि " इति शब्दार्णवे ॥ अतिक्रम्य दर्शं दर्शमतीत्येत्यर्थः । अनुसरेरित्यनागतेन संबन्धः ॥ हंसानां द्वारं हंसद्वारम् ॥ मानसप्रस्थायिनो हंसाः क्रौञ्चरन्ध्रेण संचरन्त इत्यागमः ॥ भृगुपतेर्जामदग्न्यस्य यशोवर्त्म । यशःप्रवृत्तिकारणमित्यर्थः । यत्क्रौञ्चस्याद्रे रन्ध्रमस्ति तेन क्रौञ्चबिलेन बलेर्दैत्यस्य नियमने बन्धनेऽभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोर्व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पाद इव तिर्यगायामेन क्षिप्रप्रवेशनार्थं तिरश्चीनदैर्घ्येण शोभत इति तथाविधः सन्नुदीचीमुत्तरां दिशमनुसरेरनुगच्छ॥ पुरा किल भगवतो देवाद्धूर्जटेर्धनुरुपनिषदमधीयानेन भृगुनन्दनेन स्कन्दस्य स्पर्धया क्रौञ्चशिखरिणमतिनिशितविशिखमुखेन हेलया मृत्पिण्डभेदं भित्त्वा तत एव क्रौञ्चक्रोडादिव सद्यः समुज्जृम्भिते कस्मिन्नपि यशःक्षीरनिधौ निखिलमपि जगज्जालमाप्लावितमिति कथा श्रूयते ॥

६२. गत्वेति ॥ क्रौञ्चबिलनिर्गमनानन्तरमूर्ध्वं च गत्वा दशमुखस्य राव-

61. On passing by the various wonders on the slopes of the *Himalaya*, thou looking beautiful by expanding (thyself) slantingly like the black foot of *Vishnu* intent on the overthrow of *Bali*, shouldst proceed to the North by way of the pass in (mount) *Krauncha*, the outlet for the flamingoes (and) the path of the glory of the Lord of the *Brigus* (*Parashurama*).

62. Then going upwards, thou shouldst be the guest of (the

61. M. उपक्रम्य for अतिक्रम्य. P. अनुपतेः for अनुसरेः. P. R. बलिनियमनेऽभ्युद्यतस्य, M. बलिनियमनायोद्यतस्य, G1. G2. N. M. बलिनियमनाभ्युद्युतस्य for बलिनियमनाभ्युद्यतस्य.

62. M. °दर्शनस्य for °दर्पणस्य. W. M. तुंगोच्छ्रायैः for शृंगोच्छ्रायैः. M. कुसुम° for कुमुद°. K1. K2. W. R. G1. G2. N. M.प्रतिदिशम् for प्रतिदिनम्.

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६३ ॥

णस्य भुजैर्बाहुभिरुच्छ्वासिता विश्लेषिताः प्रस्थानां सानूनां संधयो यस्य तस्य ॥ एतेन नयनकौतुकसद्भाव उक्तः ॥ त्रिर्दशपरिमाणमेषामस्तीति त्रिदशाः ॥ " संख्ययाव्यया—" इत्यादिना बहुव्रीहिः ॥ " बहुव्रीहौ संख्येये डच्—" इत्यादिना समासान्तो डजिति क्षीरस्वामी ॥ त्रिदशानां देवानां वनितास्तासां दर्पणस्य ॥ कैलासस्य स्फटिकत्वाद्रजतत्वाद्वा बिम्बग्राहित्वेनेदमुक्तम् ॥ कैलासस्यातिथिः स्याः । यः कैलासः कुमुदविशदैर्निर्मलैः शृङ्गाणामुच्छ्रायैरौन्नत्यैः खमाकाशं वितत्य व्याप्य प्रतिदिनं दिने दिने राशीभूतत्र्यम्बकस्य त्रिलोचनस्याट्टहासोऽतिहास इव स्थितः ॥ " अट्टावतिशयक्षौमौ " इति यादवः॥ धावल्याद्धासत्वेनोत्प्रेक्षा । हासादीनां धावल्यं कविसमयसिद्धम् ॥

६३. उत्पश्यामीति ॥ स्निग्धं मसृणं भिन्नं मर्दितं च यदञ्जनं कज्जलं तस्यामेवाभा यस्य तस्मिंस्त्वयि तटगते सानुं गते सति सद्यः कृत्तस्य छिन्नस्य द्विरददशनस्य गजदन्तस्य छेदवद्गौरस्य धवलस्य तस्याद्रेः कैलासस्य मेचके श्यामले ॥ " कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः " इत्यमरः ॥ वाससि वस्त्रेऽसन्यस्ते सति हलभृतो बलभद्रस्येव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रेक्षणीयां शोभां भवित्रीं भाविनीमुत्पश्यामि । शोभा भविष्यतीति तर्कयामीत्यर्थः॥ श्रौती पूर्णोपमालंकारः ॥

---

mount) *Kailasa*, the looking--glass of the wives of the gods, having the joints of its elevated parts upheaved by the arms of the ten-faced demon (*Râvana*); which (mount) extending into the sky its lofty peaks, white as the lotus, stands as it were, the loud laughter of the three-eyed God (*Siva*), accumulated day by day.

63. When thou, shining like glossy powdered antimony, hast stood over its slopes, I foresee, that the beauty of that mountain (*Kailasa*), white as a newly-cut piece of ivory, will be worthy of being looked at with motionless eyes, like that of the bearer of the plough (*Balarâma*) when dark-blue garments are thrown over his shoulders.

---

63. P. °रदन° for °दशन°. P. M. K2. लीलामद्रेः for शोभामद्रेः. M. तिमिर° for स्तिमित°. K1. K2. W. G1. G2. R. N. M. अंशन्यस्ते for अंसन्यस्ते.

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी ।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥ ६४ ॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्या-
त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥ ६५ ॥

६४. हित्वेति ॥ तस्मिन्क्रीडाशैले कैलासे ॥ "कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः । क्रीडार्थं निर्मिताः शंभोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन्" इति शंभुरहस्ये ॥ शंभुना शिवेन भुजग एव वलयः कङ्कणं हित्वा गौर्या भीरुत्वात्त्यक्त्वा दत्तहस्ता सती गौरी पादचारेण विचरेद्यदि तर्ह्यग्रयायी पुरोगतस्तथा स्तम्भितो घनीभावं प्रापितोऽन्तर्जलस्यौघः प्रवाहो यस्य स तथाभूतः । भङ्गीनां पर्वणां भक्त्या रचनया विरचितवपुः कल्पितशरीरः सन् । मणीनां तटं मणितटं तस्यारोहणाय सोपानत्वं कुरु । सोपानभावं भजेत्यर्थः ॥

६५. तत्रेति ॥ तत्र कैलासेऽवश्यं सर्वथा सुरयुवतयो वलयकुलिशानि

64. And if *Gouri* supported by *Siva* with his hand, after casting away the snake-bracelet, should move about on foot on that mountain of sport, go on before her, with the flow of (thy) water restrained within thee and with thy body moulded into the form of wave-like steps (and) become a ladder for the ascent of the jewelled slopes.

65. The heavenly damsels there will assuredly use thee as a shower-

64. P. G2. K1. R. M. तस्मिन् हित्वा, K2. M. हित्वा नीलं for हित्वा तस्मिन्. K2. M. तु for च. K2. P. W. B. विहरेत् for विचरेत्. G2. M. सूचित° for स्तंभित°. W. M. व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु, M. कुरु सुखपदारोहणायाग्रयायी, P. कुरु मणितटारोहणायाग्रचारी, M. K2. कुरु मणिशिलारोहणायाग्रयायी for कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी.

65. G1. G2. K1. K2. R. N. M. कुलिशवलय° for वलयकुलिश°. M. जनितसलिलोद्गारमन्तःप्रवेशम् for वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्. M. K2. नेष्यन्ते for नेष्यंति. K2. M. त्यागः for मोक्षः. P. यदि तव for तव यदि. M. शर्मशून्य for घर्मशून्य. P. B. K2. M. भीषयेः, G1. G2. K1. R. N. M. भापयेः for भाययेः.

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६६ ॥

कङ्कणकोटयः ॥ शतकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते ॥ तैरुद्घट्टनानि प्रहारास्तैरुद्गीर्णमुत्सृष्टं तोयं येन तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहत्वं कृत्रिमधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति ॥ हे सखे मित्र । घर्मे निदाघे लब्धस्य ॥ घर्मलब्धत्वं चास्य देवभूमिषु सर्वदा सर्वर्तुसमाहारात्प्राथमिकमेघत्वाद्वा । यथोक्तम्—" आषाढस्य प्रथम—" इति ॥ तव ताभ्यः सुरयुवतिभ्यो मोक्षो न स्याद्यदि तदा क्रीडालोलाः क्रीडासक्ताः । प्रमत्ता इत्यर्थः । ताः सुरयुवतीः श्रवणपरुषैः कर्णकटुभिर्गर्जितैः करणैर्भाययेस्त्रासयेः ॥ अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपदं पुगागमः षुगागमश्च न ॥

६६. हेमेति ॥ हे जलद । हेमाम्भोजानां प्रसवि जनकम् ॥ " जिद्दक्षि—" इत्यादिनेनिप्रत्ययः ॥ मानसस्य सरसः सलिलमाददानः । पिबन्नित्यर्थः । तथैरावतस्येन्द्रगजस्य । कामचारित्वाद्वा शिवसेवार्थमिन्द्रागमनाद्वा समागतस्येति भावः । क्षणे जलादानकाले मुखे पटेन या प्रीतिस्तां कुर्वन् । तथा कल्पद्रुमाणां किसलयानि पल्लवभूतान्यंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणीव ॥ " अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात्परिधानोत्तरीययोः । सूक्ष्मवस्त्रे नातिदीप्तौ " इति शब्दार्णवे ॥ वातैर्मेघवातैर्धुन्वन् । नाना बहुविधाश्चेष्टास्तोयपानादयो येषु तैर्ललितैः क्रीडितैः ॥ " ना भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे । अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातपल्लवे " इति शब्दार्णवे ॥ तं नगेन्द्रं कैलासं कामं यथेष्टं निर्विशेः समुपभुङ्क्ष्व ॥ " निर्वेशो भृतिभोगयोः " इत्यमरः ॥ यथेच्छविहारो मित्र-

---

bath with thy water let out in consequence of the friction caused by the points of their arm-lets but if, O friend, thou acquired (by them) in the hot season canst not escape from them, thou must terrify them engaged in sports, with thunders disagreeable to the ear.

66. Taking the water of the *Mânasa* lake, producive of golden-lotuses,—procuring for *Airâvata* (Indra's elephant) the gratification of a veil for his face during the time (of drinking) and shaking, like garments, the shoots of the *Kalpa* tree with thy breezes—with amusements (like these) of various kinds, thou O cloud, enjoy that lord of mountains to thy heart's content.

---

66. W. K2. M. कामाव for कामम्, P. G1. G2. K2. M. ऐरावणस्य for ऐरावतस्य P. स्ववातैः, M. प्रवातैः for इव वातैः. K2. W. G1. M. वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि छायाभिन्नस्फटिकाविशदम्, M. वातैः सजलनयनैः कल्पवृक्षांशुकानि छायाभिन्नस्फटिकविशदम्, K2. कल्पद्रुमकिशलयान्यंशुकानीव वातैश्छायाभिन्नस्फटिकविशदम् for कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातैर्नानाचेष्टैर्जलदललितैः. M. G1. पर्वतं तं for तं नगेन्द्रम्.

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६७॥

गृहेषु मैत्र्याः फलम् । सहजमित्रं च ते कैलासः । मेघपर्वतयोरब्जसूर्ययोरब्धिचन्द्रयोः शिखिजीमूतयोः समीराग्न्योर्मित्रता स्वयमिति भावः ॥

६७. तस्येति ॥ प्रणयिनः प्रियतमस्येव तस्य कैलासस्योत्सङ्ग उर्ध्वभागे ऊरौ च ॥ " उत्सङ्गो मुक्तसंयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि च " इति मालतीमालायाम् ॥ गङ्गा दुकूलं शुभ्रवस्त्रमिवेत्युपमितसमासः ॥ " दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे स्यादुत्तरीये सितांशुके " इति शब्दार्णवे ॥ अन्यत्र तु गङ्गेव दुकूलम् ॥ तत्स्रस्तं यस्यास्तां तथोक्तामलकां कुबेरनगरीं दृष्ट्वा । कामिनीमिवेति शेषः । हे कामचारिन् । त्वं पुनस्त्वं तु न ज्ञास्यस इति न । किं तु ज्ञास्यस एवेत्यर्थः॥ कामचारिणस्ते पूर्वमपि बहुकृत्वो दर्शनसंभवादज्ञानमसंभावितमेवेति निश्चयार्थे नञ्द्वयप्रयोगः । तदुक्तम्—" स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः " इति ॥ उच्चैरुन्नतानि विमानानि सप्तभूमिकभवनानि यस्यां सा ॥ " विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि " इति यादवः ॥ मेघसंवाहनस्थानसूचनार्थमिदं विशेषणम् ॥ अन्यत्र विमाना निष्कोपा । यालका । वो युष्माकं काले । मेघकाल इत्यर्थः ॥ कालस्य सर्वमेघसाधारण्याद्व इति बहुवचनम् ॥ सलिलमुद्गिरतीति सलिलोद्गारम् । स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः ॥ अभ्रवृन्दं मेघकदम्बकं कामिनी स्त्री मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैर्ग्रथितं प्रत्युप्तम् ॥ " पुंश्चल्यां मौक्तिके मुक्ता " इति यादवः ॥ अलकमिव चूर्णकुन्तलानीव ॥ जातावेकवचनम् ॥ " अलकाश्चूर्णकुन्तलाः " इत्यमरः ॥ वहति बिभर्ति ॥ अत्र कैलासस्यानुकूलनायकत्वमलकायाश्च स्वाधीनपतिकाख्यनायिकात्वं ध्वन्यते ।(" एकायत्तोऽनुकूलः स्यात् " इति । " प्रियोपलालिता नित्यं स्वाधीनपतिका मता " इति च लक्षयन्ति । उदाहरन्ति च—" लालयन्नलकप्रान्तान्रचयन्पत्रमञ्जरीम् । एकां विनोदयन्कान्तां छायावदनुवर्तते " इति ॥)

इति श्रीमहामहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनासमाख्यया व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासविरचिते मेघदूते काव्ये पूर्वमेघः समाप्तः ।

---

67. On seeing *Alakâ*, thou, wanderer at thy will, wilt not, but recognise it with its garment-like Ganges fallen on the slope of that (mount) as on the lap of a lover, which (city) possessed of lofty palaces supports, in thy season (i. e. rainy season) a host of water-shedding clouds as a beautiful woman (supports) her hair wreathed with strings of pearls.

---

67. K2. M. व्योमचारिन् for कामचारिन्. W. G1. G2. K1. K2. R.N. M. °विमानैः for °विमाना.

उत्तरमेघः ।

---ooo---

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

१ विद्युत्वन्तमिति ॥ यत्रालकायां ललिता रम्या वनिताः स्त्रियो येषु ते । सह चित्रैर्वर्तन्त इति सचित्राः ॥ " आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम् " इत्यमरः ॥ " तेन सहेति तुल्ययोगे " इति बहुव्रीहिः । " वोपसर्जनस्य " इति सहशब्दस्य सभावः ॥ संगीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजास्ताडितमृदङ्गाः ॥ " मुरजा तु मृदङ्गे स्याड्ढक्कामुरजयोरपि " इति शब्दार्णवे ॥मणिमया मणिविकारा भुवो येषु । अभ्रं लिहन्तीत्यभ्रंलिहान्यभ्रंकषाणि ॥ " वहाभ्रे लिहः " इति खश्प्रत्ययः । " अरुर्द्विष— " इत्यादिना मुमागमः ॥ अग्राणि शिखराणि येषां ते तथोक्ताः । अतितुङ्गा इत्यर्थः ॥ प्रासादा देवगृहाणि ॥ " प्रासादो देवभूभुजाम् " इत्यमरः ॥ विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युत्वन्तम् । सेन्द्रचापमिन्द्रचापवन्तम् । स्निग्धः श्राव्यो गम्भीरो घोषो गर्जितं यस्य तम् । अन्तरन्तर्गतं तोयं यस्य तम् । तुङ्गमुन्नतं त्वां तैस्तैर्विशेषैर्ललितवनितत्वादिधर्मैस्तुलयितुं समीकर्तुमलं पर्याप्ताः ॥ " अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् " इत्यमरः ॥ अत्रोपमानोपमेयभूतमेघप्रासादधर्माणां विद्युद्वनितादीनां यथासंख्यमन्योन्यसादृश्यान्मेघप्रासादयोः साम्यसिद्धिरिति बिम्बप्रतिबिम्बभावेनेयं पूर्णोपमा । वस्तुतो भिन्नयोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोः पृथगुपादानाद्बिम्बप्रतिबिम्बभावः ॥

संप्रति सर्वदा सर्वर्तुसंपत्तिमाह—

---

1. Where (in *Alakâ*) the palaces with beautiful women and pictures, with drums beaten for singing and dancing, with jewelled floors and cloud-licking tops, are able to compete with thee, having lightning and rainbow, having a deep and pleasant sound, having water inside and loftiness, in the various particulars (respectively).

---

1. P. °मुरवाः, M. °मरुजाः, G1. N. M.° मुरुजाः for °मुरजाः. P. K2. M. स्निग्धपर्जन्यघोषम् for स्निग्धगंभीरघोषम्.

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

२. हस्त इति ॥ यत्रालकायां वधूनां स्त्रीणां हस्ते लीलार्थं कमलं लीलाकमलम् ॥ शरल्लिङ्गमेतत् । तदुक्तम्—" शरत्पङ्कजलक्षणा " इति ॥ अलके कुन्तले ॥ जातावेकवचनम् ॥ अलकेष्वित्यर्थः । बालकुन्दैः प्रत्यग्रमाघ्यकुसुमैरनुविद्धम् । अनुवेधो ग्रन्थनम् ॥ नपुंसके भावे क्तः ॥ यद्यपि कुन्दानां शैशिरत्वमस्ति " माघ्यं कुन्दम् " इत्यभिधानात्तथापि हेमन्ते प्रादुर्भावः शिशिरे प्रौढत्वमिति व्यवस्थाभेदेन हैमन्तकार्यत्वमित्याशयेन बालेति विशेषणम् ॥ " अलकम् " इति प्रथमान्तपाठे सप्तमीप्रक्रमभङ्गः स्यात् । नाथस्तु नियतपुंलिङ्गताहानिश्चेति दोषान्तरमाह । तदसत् । " स्वभाववक्राण्यलकानि तासाम् " । " निर्धूतान्यलकानि पाटितमुरः क्षतोऽधरः खण्डितः " इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुंसकलिङ्गतादर्शनात् ॥ आनने मुखे लोध्रप्रसवानां लोध्रपुष्पाणां शैशिराणां रजसां परागेण ॥ " प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोचने " इति विश्वः ॥ पाण्डुतां नीता श्रीः शोभा । चूडापाशे केशपाशे नवकुरबकं वासन्तः पुष्पविशेषः । कर्णे चारु पेशलं शिरीषं ग्रैष्मः पुष्पविशेषः । सीमन्ते मस्तककेशवीथ्याम् ॥ " सीमन्तमस्त्रियां मस्तकेशवीथ्यामुदाहृतम् " इति शब्दार्णवे ॥ तवोपगमः । मेघागम इत्यर्थः । तत्र जातं त्वदुपगमजम् । वार्षिकमित्यर्थः । नीपं कदम्बकुसुमम् । सर्वत्रास्तीति शेषः । अस्तिर्भवन्तिपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति न्यायात् । इत्थं कमलकुन्दादि तत्तत्कार्यसमाहाराभिधानादर्थात्सर्वर्तुसमाहारसिद्धिः। कारणं विना कार्यस्यासिद्धेरिति भावः॥

---

2. Where the women have lotuses in (their) hands for sport, the inlaying of young *Kunda* flowers in (their) hair, beauty made yellowish-white by the pollen of *Lodhra* blossom on (their) faces, fresh *Kurabaka* flowers in (their) braids of hair, charming *Shirisha* flowers in (their) ears, and *Kadamba* flowers springing up at thy approach in the partings of (their) hair.

---

2. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अलकं for अलके. M. °कुन्दानुवेधः for कुन्दानुविद्धम्. R. G1. G2. K1. K2. N. W. M. रोध्र° for लोध्र°. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. आननश्रीः for आनने श्रीः M. W. °कुरुवकं, G1. G2. K1. R. कुरबकं for कुरबकम्. M. कर्णे करोति for कर्णे शिरीषं. W. M. सीमन्तेऽपि for सीमन्ते च.

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥३॥
आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥४॥

३. यत्रेति ॥ यत्रालकायां पादपा वृक्षाः । नित्यानि पुष्पाणि येषां ते तथा । न त्वृतुनियमादिति भावः । अत एवोन्मत्तैर्भ्रमरैर्मुखराः शब्दायमानाः । नलिन्यः पद्मिन्यो नित्यानि पद्मानि यासां तास्तथा । न तु हेमन्तवर्जितमित्यर्थः । अत एव हंसश्रेणीभी रचितरशनाः । नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थः । भवनशिखिनः क्रीडामयूरा नित्यं भास्वन्तः कलापा बर्हाणि येषां ते तथोक्ताः । न तु वर्षास्वेव । अत एव केकाभिरुत्कण्ठा उद्ग्रीवाः । प्रदोषा रात्रयो नित्या ज्योत्स्ना येषां ते । न तु शुक्लपक्ष एव । अत एव प्रतिहता तमसां वृत्तिर्व्याप्तिर्येषां ते च ते रम्याश्चेति तथोक्ताः ॥

४. आनन्देति ॥ यत्रालकायां वित्तेशानां यक्षाणाम् ॥ “ वित्ताधिपः कुबेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः ” इति शब्दार्णवे ॥ आनन्दोत्थमानन्दजन्य-

---

3. Where the trees are ever-blossming and noisy with intoxicated bees, the lotus-ponds have lotuses ever (blooming) and girdles formed of the rows of swans, the domestic peacocks have (their) tails ever-shining and (their) necks uplifted by (their) cries, and evenings are ever moonlit and pleasant on account of the course of darkness being obstructed.

4. Where indeed the gods of wealth (*Yakshas*) have tears proceeding from joy and from no other causes, no other pain than that

---

3. G1. यस्यां मत्त° for यत्रोन्मत्त°. P. °भ्रमरनिकराः for °भ्रमरमुखराः. K1. K2. G1. R. P. N. M. °रसना for °रशना P. G1. K1, R. N. M. °ज्योत्स्नाप्रतिहत° for °ज्योत्स्नाः प्रतिहत°.

4. G2. M. इष्टसंयोगसाध्यः for इष्टसंयोगसाध्यात्. P. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अन्यत्र for अन्यस्मात्. P. G2. K1. R. N. M. न खलु च for न च खलु.

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ५ ॥

मेव नयनसलिलम् । अन्यैर्निमित्तैः शोकादिभिर्न । इष्टसंयोगेन प्रियजनसमागमेन साध्यान्निवर्तनीयात् । न त्वप्रतीकार्यादित्यर्थः । कुसुमशरजान्मदनशरजन्यतापादन्यस्तापो नास्ति । प्रणयकलहादन्यस्मात्कारणाद्विप्रयोगोपपत्तिर्विरहप्राप्तिरपि नास्ति । किं च यौवनादन्यद्वयो वार्धकं नास्ति खलु ॥ श्लोकद्वयं प्रक्षिप्तम् ॥

५. यस्यामिति । यस्यामलकायां यक्षा देवयोनिविशेषा उत्तमस्त्रीसहाया ललिताङ्गनासहचराः सन्तः सितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तमयानि वा । अत एव ज्योतिषां तारकाणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमानि तै रचितानि परिष्कृतानि ॥ " ज्योतिस्ताराग्निभाज्वालादृक्पुत्रार्थाध्वरात्मसु " इति वैजयन्ती ॥ एतेन पानभूमेरम्लानशोभत्वमुक्तम् । हर्म्यस्थलान्येत्य प्राप्य । त्वद्गम्भीरध्वनिरिव ध्वनिर्येषां तेषु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु ॥ " पुष्करं करिहस्ताग्रेवाद्यभाण्डमुखे जले " इत्यमरः ॥ शनकैर्मन्दमाहतेषु सत्सु ॥ एतच्च नृत्यगीतयोरप्युपलक्षणम् ॥ कल्पवृक्षप्रसूतं कल्पवृक्षस्य काङ्क्षितार्थप्रदत्वान्मध्वपि तत्र प्रसूतम् । रतिः फलं यस्य तद्रतिफलाख्यं मधु मद्यमासेवन्ते । आदृत्य पिबन्तीत्यर्थः ॥ " तालक्षीरसितामृतामलगुडोन्मत्तास्थिकालाह्वयादर्विन्द्रद्रुममोरटेक्षुकदलीगुग्गुलुप्रसूनैर्युतम् । इत्थं चेन्मधुपुष्पभङ्ग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतं क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु " इति मदिरार्णवे ॥

---

arising from the flower-arrowed God (Cupid) and removable by union with the desired (persons), where separation is brought about by no other cause than love-quarrels and where there is no other period of life than youth.

5. Where the *Yakshas* accompanied by best women repair to the chambers of (their) palaces made of crystals and adorned with flower-like reflections of stars, and taste (eagerly) the wine called *Ratiphala* produced from the *Kalpa* tree, whilst drums are being gently beaten, with sounds as deep as thine (are).

---

5. P. G2. K2. N. M. °रचनानि for °रचितानि. W. M. रतिरसम् for रतिफलम्. M. °गंभीरोद्घानिषु for °गंभीरध्वनिषु. M. P. मधुरं for शनकैः.

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ ६ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा-
न्ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ७ ॥

६. मन्दाकिन्या इति ॥ यत्रालकायाममरैः प्रार्थिताः । सुन्दर्य इत्यर्थः । कन्या यक्षकुमार्यः ॥ " कन्या कुमारिकानार्योः " इति विश्वः ॥ मन्दाकिन्या गङ्गायाः सलिलेन शिशिरैः शीतलैर्मरुद्भिः सेव्यमानाः सत्यः । तथानुतटं तटेषु रोहन्तीत्यनुतटरुहः ॥ क्विप् ॥ तेषां मन्दाराणां छाययानातपेन वारितोष्णाः शमितातपाः सत्यः कनकस्य सिकतासु मुष्टिभिर्निक्षेपेण गूढैः संवृतैरत एवान्वेष्टव्यैर्मृग्यैर्मणिभी रत्नैः संक्रीडन्ते ।गूढमणिसंज्ञया दैशिकक्रीडया सम्यक्क्रीडन्तीत्यर्थः ॥ " क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च " इत्यात्मनेपदम् ॥ " रत्नादिभिर्वालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः । कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना गूढमणिः स्मृता ॥ रासक्रीडा गूढमणिर्गुप्तकेलिस्तु लायनम् । पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दैशिककेलयः " इति शब्दार्णवे ॥

७. नीवीति ॥ यत्रालकायामनिभृतकरेषु चपलहस्तेषु प्रियेषु । नीवी व-

---

6. Where maidens sought (in marriage) by the Gods, waited upon (i. e. fanned) by the breezes cooled by the water of the *Ganges*, screened from the sun by the shade of the *Mandâra* trees growing on the banks, sport with jems which are (first) hidden by being thrust with closed hand amongst the golden sands and have (then) to be searched for.

7. Where the handfuls of powder, of the *Bimba—lipped* (women)

---

6. B. C1. M. पयसि for सलिल°. P. तटवन°, M. उपतट° for अनुतट°. M, G2. अमरैः for अमर°.

7. M. °उच्छ्वसन° for °उच्छ्वसित°. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. यक्षांगनानाम् for बिम्बाधराणाम्.; W. M. वासःकामात् for क्षौमं रागात्. W M. अभिमुखगतान् for अभिमुखमपि. G1. M. विफलप्रेरणः, M. विफलप्रेरितः, G1. G2. K1. K2. R. N. M. विफलः प्रेरितः for विफलप्रेरणा.

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां सलिलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशो जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ८ ॥

स्तनग्रन्थिः ॥ " नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससः " इति विश्वः ॥ नीवीति बन्धो नीवीबन्धः ॥ चूतवृक्षवदपौनरुक्त्यम् ॥ तस्योच्छ्वसितेन त्रुटितेन शिथिलं क्षौमं दुकूलं रागादाक्षिपत्स्वाहरत्सु सत्सु ह्रीमूढानां लज्जाविधुराणाम् । बिम्बं बिम्बिकाफलम् ॥ " बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले " इति विश्वः ॥ बिम्बमिवाधरो यासां तासां बिम्बाधराणां स्त्रीविशेषाणाम् । " विशेषाः कामिनीकान्ताभीरुबिम्बाधराङ्गनाः " इति शब्दार्णवे ॥ चूर्णस्य कुङ्कुमादेर्मुष्टिः । अर्चिभिर्मयूखैस्तुङ्गान् ॥ " अर्चिर्मयूखशिखयोः " इति विश्वः ॥ रत्नान्येव प्रदीपानभिमुखं यथा तथा प्राप्यापि विफलप्रेरणा दीपनिर्वापणाक्षमत्वान्निष्फलक्षेपा भवति ॥ अत्राङ्गनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते ॥

८. नेत्रेति ॥ हे मेघ । नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना ॥ " मातरिश्वा सदागतिः " इत्यमरः ॥ यद्विमानाग्रभूमीः यस्या अलकाया विमानानां सप्तभूमिकभवनानामग्रभूमीरुपरिभूमिका नीताः प्रापिताः । त्वामिव पश्यन्ति यान् ते त्वादृशः । त्वत्सदृशा इत्यर्थः ॥ " त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च " इति कञ्प्रत्ययः ॥ जलमुचो मेघाः ॥ आलेख्यानां सचित्राणाम् ॥ " चित्रं

---

overcome by shame whilst their lovers with tremulous hands—cast aside, through passion, (their) silken garments loosened by the untying of their knots, are flung in vain at the high—lustred jewel—lamps, even though they (the handfuls) get them within their reach.

8. Being led by their guide the wind, to the palace-terraces of which (city), clouds like thee after causing harm with drops of water to the paintings (there) become at once overcome by fear as it were, and being skilled in imitating the escape of smoke,—depart, broken into parts, through the openings of lattices.

---

8. W.M. ये for यद्°. P. B. C1. C2. R. M. स्वजलकणिका°, K1. W. M. सजलकणिकाः, M. नवजलकणैः, N. स्वजलकणिकैः for सलिलकणिका°. M. जललवमुचः for इव जलमुचः. P. W. B. C1. C2. G1. G2. K1. N. M. त्वादृशा यत्र जालैः, R. M. त्वादृशा यंत्रजालैः for त्वादृशो जालमार्गैः. M. K2. °निपुणम् for °निपुणा. G2. R. M. निःपतंति for निष्पतंति.

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गिताना-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चंद्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥९॥

लिखितरूपाद्यं स्यादालेख्यं तु यत्नतः । निर्मितं तु महाचित्रं" इति शब्दार्णवे ॥ सलिलकणिकाभिः जलकणैर्दोषं स्फोटनमुत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टा इव सापराधत्वाद्भयाविष्टा इव ॥ "शङ्का वितर्कभययोः" इति शब्दार्णवे ॥ धूमोद्गारस्य धूमनिर्गमस्यानुकृतावनुकरणे निपुणाः कुशला जर्जरा विशीर्णाः सन्तो जालमार्गैर्गवाक्षरन्ध्रैर्निष्पतन्ति निष्क्रामन्ति ॥ यथा केनचिदन्तःपुरसंचारवता दूतेन गूढवृत्त्या रहस्यभूमिं प्रापितास्तत्र स्त्रीणां व्यभिचारदोषमुत्पाद्य सद्यः साशङ्काः क्लृप्तवेशान्तरा जाराः क्षुद्रमार्गैर्निष्क्रामन्ति तद्वदिति ध्वनिः । प्रकृतार्थे शङ्कास्पृष्टा इवेत्युत्प्रेक्षा ॥

९. यत्रेति ॥ यत्रालकायां निशीथेऽर्धरात्रे ॥ "अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ" इत्यमरः ॥ त्वत्संरोधस्य मेघावरणस्यापगमेन विशदैर्निर्मलैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रमरीचिभिः ॥ "पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः" इत्यमरः ॥ स्फुटजललवस्यन्दिन उल्बणाम्बुकणस्राविणस्तन्तुजालावलम्बा वितानलम्बिसूत्रपुञ्जाधाराः । तद्गुणगुम्फिता इत्यर्थः । चन्द्रकान्ताश्चन्द्रकान्तमणयः । प्रियतमानां भुजैरुच्छ्वासितानि । श्रान्त्या जलसेकाय वा प्रशिथिलितान्यालिङ्गितानि यासां तासां स्त्रीणां सुरतजनिताङ्गग्लानिं शरीरखेदम् । अवयवानां ग्लानतामिति यावत् । व्यालुम्पन्त्यपनुदन्ति ॥

---

9. Where at midnight, the moon-gems hanging in net-works of thread and dropping particles of water bursting out through (the influence of) the moon's rays clear on the removal of thy obstruction, dispel the languor caused by amorous pleasures in the bodies of the women, with embraces loosened by the arms of their lovers.

---

9. G1. G2. K1. K2. R. N. M. °भुजालिंगनोच्छ्वासितानां, M. °भुजालिंगितोच्छ्वासितानां, B. C1. C2. M. °भुजोच्छ्वासितालिंगनानां for °भुजोच्छ्वासितालिंगितानाम्. G2. M. यंत्रजालावलम्बा for तन्तुजालावलम्बाः. P. इन्दुपादैर्निशीथे,. W. G1. G2. K1. N. M. प्रेरिताश्चन्द्रपादैः, M. चोदिताश्चन्द्रपादैः, M. प्रेरितैश्चन्द्रपादैः, M. चोदितैश्चन्द्रपादैः, M. द्योतितैश्चन्द्रपादैः, K2. M. द्योतिताश्चन्द्रपादैः, M. च्योतिताश्चन्द्रपादैः for चन्द्रपादैर्निशीथे. M. स्फुटनवजलस्पंदिनः, G2. K1. K2. N. R. M. स्फुटजललवस्पंदिनः, for स्फुटजललवस्यन्दिनः.

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किंनरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥

१०. अक्षय्येति ॥ यत्रालकायाम् । क्षेतुं शक्याः क्षय्याः ॥ "क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे" इति निपातः । ततो नञ्समासः ॥ भवनानामन्तरन्तर्भवनम् ॥ "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिनाव्ययीभावः ॥ अक्षय्या अन्तर्भवनं अन्तर्भवने निधयो येषां ते तथोक्ताः ॥ यथेच्छभोगसंभावनार्थमिदं विशेषणम् ॥ विबुधवनिता अप्सरसस्ता एव वारमुख्या वेश्यास्ता एव सहाया येषां ते तथोक्ताः॥ "वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाथ साजनैः । सत्कृता वारमुख्या स्यात्" इत्यमरः ॥ बद्धालापाः संभावितसंलापाः कामिनः कामुकाः प्रत्यहमहन्यहनि ॥ "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिना समासः ॥ "अनश्च—" इति समासान्तष्टच् "अह्नष्टखोरेव—" इति टिलोपः ॥ रक्तो मधुरः कण्ठः कण्ठध्वनिर्येषां तैः सुन्दरकण्ठध्वनिभिर्धनपतियशः कुबेरकीर्तिमुद्गायद्भिरुच्चैर्गायनशीलैः । देवगायनस्य गान्धारग्रामत्वात्तारतरं गायद्भिरित्यर्थः ॥ किंनरैः सार्धं सह । विभ्राजस्येदं वैभ्राजम् । वैभ्राजमित्याख्या यस्य तद्वैभ्राजाख्यम् ॥ "विभ्राजेन गणेन्द्रेण जातं वैभ्राजमाख्यया" इति शंभुरहस्ये ॥ चैत्ररथस्य नामान्तरमेतत् । बहिरुपवनं बाह्योद्यानं निर्विशन्त्यनुभवन्ति ॥

---

10. Where the lovers possessed of inexhaustible treasures in their houses, accompanied by the celestial damsels (as) the best of harlots and engaged in conversation, enjoy every day the outer garden called *Vaibhrája*, along with the sweet-voiced *Kinnaras* singing aloud the glory of the God of wealth (*Kubera*).

---

10. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अक्षीण° for अक्षय्य°. G1. G2. K1. K2. M. °भुवन° for °भवन°. M. बद्धालापाः, G1. G2. K1. K2. R. N. M. बद्धापानं for बद्धालापाः.

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ११ ॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १२ ॥

११. गतीति ॥ यत्रालकायां कामिनीनामभिसारिकाणाम्। निशि भवो नैशो मार्गः सवितुरुदये सति गत्या गमनेनोत्कम्पश्चलनं तस्माद्धेतोरलकेभ्यः पतितैर्मन्दारपुष्पैः सुरतरुकुसुमैः। तथा पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः। पतितैरिति शेषः। तथा कर्णेभ्यो विभ्रश्यन्तीति कर्णविभ्रंशीनि तैः कनकस्य कमलैः॥ षष्ठ्या विवक्षितार्थलाभे सति मयटा विग्रहेऽध्याहारदोषः। एवमन्यत्राप्यनुसंधेयम्॥ तथा मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैः। शिरोनिहितैरित्यर्थः। तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते। मार्गपतितमन्दारकुसुमादिलिङ्गैरयमभिसारिकाणां पन्था इत्यनुमीयत इत्यर्थः॥

१२. मत्वेति ॥ यत्रालकायां मन्मथः कामः। धनपतेः कुबेरस्य सखेति

---

11. Where, at sunrise, the path of women (taken) at night, is indicated, by *Mandâr* flowers fallen from (their) hair owing to the shaking caused by walk, by pieces of leaves, and golden lotuses dropping from (their) ears, by strings of pearls, and necklaces, the threads of which are broken on the regions of their breasts.

12. Where *Cupid*, knowing the God (*Siva*) friend of the God of

---

11. B. C1. M. गत्योत्कंपात् for गत्युत्कंपात्. W. M. क्लृप्तच्छेदैः, G1. G2. K1. K2. R. N. M. पत्रच्छेद्यैः for पत्रच्छेदैः. W. M. °नलिनैः for °कमलैः.; G1. G2. K1. K2. R. N. M. °विस्रंसिभिः for विभ्रंशिभिः. M. मुक्तालग्नैः, G1. मुक्तालग्न° for मुक्ताजालैः. P. स्तनपरिचितच्छिन्न°, G1. लग्नस्तनपरिमलैश्छिन्न°, G2. M. °लग्नस्तनपरिसरच्छिन्न°, M. °जालस्तनपरिमलच्छिन्न°, K2. M. °लग्नस्तनपरिमलच्छिन्न°, K1. °जालस्तनपरिचयाच्छिन्न° for स्तनपरिसरच्छिन्न°.

12. P. G2. K1. K2. R. N. M. सभ्रूभंगं for सभ्रूभंग°. K2. M. कामलक्षेषु for कामिलक्ष्येषु. K2. M. अवन्ध्यैः for अमोघैः. W. M. चटुल° for चतुर°.

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ १३ ॥

धनपतिसखः ॥ " राजाहःसखिभ्यष्टच् " ॥ तं देवं महादेवं साक्षाद्वसन्तं सखिस्नेहान्निजरूपेण वर्तमानं मत्वा ज्ञात्वा भयाद्धालेक्षणभयात्षट्पदा एव ज्या मौर्वी यस्य तं चापं प्रायः प्राचुर्येण न वहति न बिभर्ति ॥ कथं तर्हि तस्य कार्यसिद्धिरत आह—सभ्रूभङ्गेति ॥ तस्य मन्मथस्यारम्भः कामिजनविजयव्यापारः सभ्रूभङ्गं प्रहितानि प्रयुक्तानि नयनानि दृष्टयो येषु तैस्तथोक्तैः कामिन एव लक्ष्याणि तेष्वमोघैः । सफलप्रयोगैरित्यर्थः ॥ मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि मोघः स्यादिति भावः ॥ चतुराश्च ता वनिताश्च तासां विभ्रमैर्विलासैरेव सिद्धो निष्पन्नः यदनर्थकरं। पाक्षिकफलं च तत्प्रयोगाद्वरं निश्चितसाधनप्रयोग इति भावः॥

" कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम् । चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम् " इति रसाकरे । तदेवैतदाह—

१३. वास इति ॥ यस्यामलकायां चित्रं नानावर्णं वासो वसनम् । परिधेयमण्डनमेतत् नयनयोर्विभ्रमाणामादेश उपदेशे दक्षम् । अनेन विभ्रमद्वारा मधुनो मण्डनत्वमनुसंधेयम् तच्च मण्डनादिवद्देहधार्येऽन्तर्भाव्यम् । मधु मद्यम् । किसलयैः पल्लवैः सह पुष्पोद्भेदम् । उभयं चेत्यर्थः ॥ इदं तु कचधार्यम् । भूषणानां विकल्पान्विशेषान् । देहधार्यमेतत् । तथा चरणकमलयोर्न्यासस्य समर्पणस्य योग्यम् । रज्यतेऽनेनेति रागो रञ्जकद्रव्यम् । लाक्षैव रागस्तं लाक्षारागं

wealth (to be) living (there) in person does not, through fear, wield his bow with its string of bees (since) his purpose is accomplished by the very graceful movements of clever women,—never ineffectual, against lovers as their mark, (and) in which eyes are cast frowningly.

13. In which (*Alaka*) the *Kalpa* tree alone creates every decoration of women, (viz.) the many-coloured garment, the wine skilled in teaching graceful movements to the eyes, the opening of flowers with sprouts, various kinds of ornaments, and the lac-dye fit for application to the lotus-like feet.

13. M. °देशलक्षं for °देशदक्षं. G2. K2. R. M. किशलयैः for किसलयैः. P. विकल्पं, M. विशेषान् for विकल्पान्. P. यस्मिन् for यस्याम्.

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १४ ॥

इदं चाङ्गरागादिविलेपनमण्डनोपलक्षणं ॥ सकलं सर्वम् । चतुर्विधमपीत्यर्थः । अबलामण्डनं योषित्प्रसाधनजातमेकः कल्पवृक्ष एव सूते जनयति । न तु नानासाधनसंपादनप्रयास इत्यर्थः ॥

इत्थमलकां वर्णयित्वा तत्र स्वभवनस्याभिज्ञानमाह—

१४. तत्रेति ॥ तत्रालकायां धनपतिगृहात् कुबेरगृहादुत्तरेणोत्तरस्मिन्नदूरदेशे । " एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः " इत्येनप्प्रत्ययः । " एनपा द्वितीया " इति द्वितीया ॥ " गृहाः पुंसि च भूम्न्येव " इत्यमरः ॥ धनपतिगृहादिति पाठे " उत्तरेण " इति नैनप्प्रत्ययान्तं किंतु " तोरणेन " इत्यस्य विशेषणं तृतीयान्तम् ॥ धनपतिगृहादुत्तरस्यां दिशि यत्तोरणं बहिर्द्वारं तेन लक्षितमित्यर्थः ॥ अस्माकमिदमस्मदीयम् ॥ " वृद्धाच्छः " इति छप्रत्ययः ॥ अगारं गृहम् । सुरपतिधनुश्चारुणा मणिमयत्वादभ्रंकषत्वाच्चेन्द्रचापसुन्दरेण तोरणेन बहिर्द्वारेण दूराल्लक्ष्यं दृश्यम् । अनेनाभिज्ञानेन दूरत एव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः ॥ अभिज्ञानान्तरमाह—यस्यागारस्योपान्ते प्राकारान्तःपार्श्वदेशे मे मम कान्तया वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः ॥ पुत्रत्वेनाभिमन्यमान इत्यर्थः ॥ हस्तेन प्राप्यैर्हस्तावचेयैः स्तबकैर्गुच्छैर्नमितः ॥ " स्याद्गुच्छकस्तु स्तबकः " इत्यमरः ॥ बालो मन्दारवृक्षः कल्पवृक्षोऽस्तीति शेषः ॥

इतः परं पञ्चभिः श्लोकैरभिज्ञानान्तरमाह—

---

14. There to the north of *Kubêra's* building, (stands) my house visible from afar, by the arched-door-way as beautiful as the rain-bow;—close to which (house) is a young *Mandâra* tree bent down by the clusters of flowers, within reach of hand and reared by my wife as an adopted son.

---

14. W. M. अत्र for तत्र. P. W. G1. G2. K1. R. N. M. °गृहात् for °गृहात्. P. त्वदमरधनुः° K1. M. तदमरधनुः° for सुरपतिधनुः°. P. W. G1. G2. K1. R. K2. N. M. उद्याने for उपान्ते. P. M. वर्धितः कान्तया for कान्तया वर्धितः. M. °विनतः for °नमितः.

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः॥१५॥
तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि॥ १६ ॥

१५. वापीति ॥ अस्मिन्मदीयागारे मरकतशिलाभिर्बद्धः सोपानमार्गो यस्याः सा तथोक्ता । विदूरे भवा वैदूर्याः ॥ " विदूराञ्ञ्यः " इति ञ्यप्रत्ययः ॥ वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि ॥ विकारार्थेऽण्प्रत्ययः ॥ स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैर्हैमैः सौवर्णैर्विकचकमलैश्छन्ना वापी च । अस्तीति शेषः ॥ यस्या वाप्यास्तोये कृतवसतयः कृतनिवासा हंसास्त्वां मेघं प्रेक्ष्यापि व्यपगतशुचो वर्षाकालेऽपि व्यपगतकलुषजलत्वाद्गतदुःखाः सन्तः संनिकृष्टं संनिहितम् । सुगममपीत्यर्थः । मानसं मानससरो नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठिष्यन्ति ॥ " आध्यानमुत्कण्ठास्मरणम् " इति काशिकायाम् ॥

१६. तस्या इति ॥ तस्या वाप्यास्तीरे पेशलैश्चारुभिः ॥ " चारौ दक्षे च पेशलः " इत्यमरः ॥ इन्द्रनीलै रचितशिखरः । इन्द्रनीलमणिमयशिखर इ-

15. And in it, there is a pool the way to which is a flight of steps made of emerald stones, and which is covered with blown golden lotuses with stalks (consisting) of glossy *Vaiduryas*; the swans residing in whose waters freed from sorrow, no longer long for the *Mânasa* (lake) which is near, even though they see thee.

16. On its bank stands a mountain of sport, the top of which is

15. P. स्फीता, K2. M. स्यूता for छन्ना. M. विकचकुसुमैः M. कनककमलैः, W. M. कमलमुकुलैः for विकचकमलैः. P. M. °दीर्घवैडूर्य°, G2. K1. K2. R. N. M. °स्निग्धवैडूर्य° for °स्निग्धवैदूर्य°. P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. न ध्यास्यन्ति, M. न ध्यायन्ति for नाध्यास्यन्ति. P. प्राप्य for प्रेक्ष्य.

16. W. K2. M. यस्याः for तस्याः. P. विहित°, K2. M. निचित° for रचित°. W. K1. M. °कदलीवेष्टनः, R. N. M. °कदलावेष्टित° for °कदलीवेष्टन°. P. °स्फुटिततटितं for स्फुरिततडितं.

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥१७॥

त्यर्थः । कनककदलीनां वेष्टनेन परिधिना प्रेक्षणीयो दर्शनीयः क्रीडाशैलः अस्तीति शेषः ॥ हे सखे । उपान्तेषु प्रान्तेषु स्फुरितास्तडितो यस्य तं तथोक्तम् ॥ इदं विशेषणं कदलीसाम्यार्थमुक्तम् ॥ इन्द्रनीलसाम्यं तु मेघस्य स्वाभाविकमित्यनेन सूच्यते ॥ त्वां प्रेक्ष्य मद्गेहिन्याः प्रिय इति हेतोः । तस्य शैलस्य मद्गृहिणीप्रियत्वाद्धेतोरित्यर्थः ॥ कातरेण भीतेन चेतसा ॥ भयं चात्र सानन्दमेव । " वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात् । श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत् " इति रसाकरे दर्शनात् ॥ तमेव क्रीडाशैलमेव स्मरामि ॥ एवकारो विषयान्तरव्यवच्छेदार्थः ॥ सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थः । अत एवात्र स्मरणाख्योऽलंकारः । तदुक्तम्—" सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते" इति ॥ निरुक्तकारस्तु " त्वां तमेव स्मरामि" इति योजयित्वा मेघे शैलत्वारोपमाचष्टे। तदसंगतम्। अनार्जवात्। अद्याकारारोपस्य पुरोवर्तिन्यनुभवात्मकत्वेन स्मरतिशब्दप्रयोगायोगात् ॥ शैलत्वभावनास्मृतिरित्यपि नोपपद्यते। भावनायाः स्मृतित्वे प्रमाणाभावादनुभवायोगात्सादृश्योपन्यासवैयर्थ्याच्च । विसदृशेऽपि शालग्रामे हरिभावनादर्शनादिति ॥

१७. रक्तेति ॥ अत्र क्रीडाशैले कुरबका एव वृतिरावरणं यस्य तस्य । मधौ वसन्ते भवा माधव्यस्तासां मण्डपस्तस्यातिमुक्तलतागृहस्य ॥ " अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लता " इत्यमरः ॥ प्रत्यासन्नौ संनिकृष्टौ

---

composed of beautiful sapphires and which is fine-looking on account of the enclosure of golden plantain trees; on seeing thee, O friend, with lightnings flashing about (thee), I recollect with a trembling heart, the self-same mountain as being dear to my wife.

17. Hereon are the red *Ashoka* with its waving sprouts, and the beautiful *Bakula* (tree), in the vicinity of the bower of the *Madhavi* (creepers) hedged in by *Kurabaka* plants; the former longs

---

17. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. °किशलयः for °किसलयः. W. M. तत्र for चात्र. W. M. प्रत्यासन्नः, M. प्रत्यासन्ने for प्रत्यासन्नौ. W. G2. K1. R. N. M. कुरुबक° for कुरबक°. K1. N. K2. M. वांछत्यन्यः for कांक्षत्यन्यः. P. वदनमादिराः for वदनमदिराम्. P. दौहद° for दोहद°.

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥१८॥

चलकिसलयश्चञ्चलपल्लवः । अनेन वृक्षस्य पादताडनाय प्राञ्जलित्वं व्यज्यते । रक्ताशोकः । रक्तविशेषणं तस्य स्मरोद्दीपकत्वादुक्तम् । " प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा । बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः " इत्यशोककल्पे दर्शनात् ॥ कान्तः कमनीयः केसरो बकुलश्च ॥ " अथ केसरे । बकुलो वञ्जुलः " इत्यमरः ॥ स्त इति शेषः ॥ एकस्तयोरन्यतरः । प्राथमिकत्वादशोक इत्यर्थः । मया सह तव सख्याः । स्वप्रियाया इत्यर्थः ॥ वामपादाभिलाषी । दोहदच्छद्मनेत्यत्रापि संबन्धनीयम् ॥ स चाहं च अभिलाषिणाविित्यर्थः ॥ अन्यः केसरः । दोहदो वृक्षादीनां प्रसवकारणं संस्कारद्रव्यम् ॥ " तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् । पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदः स्यात्तु तत्क्रिया " इति शब्दार्णवे ॥ तस्य छद्मना व्याजेन ॥ " कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे " इत्यमरः । अस्यास्तव सख्या वदनमदिरां गण्डूषमद्यं कांक्षति ॥ मया सहेत्यत्रापि संबन्धनीयम् ॥ अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनं गण्डूषमदिरा च दोहद इति प्रसिद्धिः ॥ " स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् । मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः " ॥

१८. तन्मध्य इति ॥ किं चेति चार्थः ॥ तन्मध्ये तयोर्वृक्षयोर्मध्येऽनति-

---

with me for thy friend's (i. e. my wife's) beautiful foot and the latter desires (with me) the wine from her mouth, under the pretext that it is an operation essential in causing their blossoming.

18. And between them, is a golden perch having a crystal slab and built at the bottom with jewels (emeralds) as shining as young bamboos; on which, at the close of day, sits thy blue-necked friend

---

18. M. तत्तन्मध्ये for तन्मध्ये च. G1. G2. K1. K2. R. N. M. स्फुटिकफलिका for स्फटिकफलका. M. नद्धा for बद्धा. P. M. सिञ्जद्वलय°, W. G2. K1. K2. R. N. M. शिञ्जद्वलय° for शिञ्जावलय°. G2. M. सभ्रूभंगे करतललयैर्नर्तितः, K1. सभ्रूभंगं करतललयैर्नर्तितः for तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः. P. K1. W. M. कान्तया नर्तितः, M. नर्तितैः कान्तया for नर्तितः कान्तया.

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्॥१९॥

प्रौढानामनतिकठोराणां वंशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैस्तरुणवेणुसच्छायैर्मणिभिर्मरकतशिलाभिर्मूले बद्धा कृतवेदिकेत्यर्थः ॥ स्फटिकं स्फटिकमयं फलकं पीठ यस्याः सा । काञ्चनस्य विकारः काञ्चनी सौवर्णी वासयष्टिर्निवासदण्डः । अस्तीति शेषः ॥ शिञ्जा भूषणध्वनिः ॥ " भूषणानां तु शिञ्जितम् " इत्यमरः॥ भिदादित्वादङ् ॥ शिञ्जिधातुरयं तालव्यादिर्न तु दन्त्यादिः ॥ शिञ्जाप्रधानानि वलयानि तैः सुभगा रम्यास्तैस्तालैः करतलवादनैर्मे मम कान्तया नर्तितो वो युष्माकं सुहृत्सखा नीलकण्ठो मयूरः ॥ " मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक् " इत्यमरः ॥ दिवसविगमे सायंकाले यां यष्टिकामध्यास्ते । यष्ट्यामास्त इत्यर्थः ॥ " अधिशीङ्स्थासां कर्म " इति कर्मत्वाद्द्वितीया ॥ " तत्रागारम् " इत्यारभ्य पञ्चसु श्लोकेषु समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तालंकारः । तदुक्तम्—" तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते " इति ॥ न चैष स्वभावोक्तिर्भाविकं वा तत्र यथास्थितवस्तुवर्णनात् । अत्र तु " कविप्रतिभोत्थापितसंभाव्यमानैश्वर्यशालिवस्तुवर्णनादारोपितविषयत्वमिति ताभ्यामस्य भेदः " इत्यलंकारसर्वस्वकारः ॥

१९. एभिरिति॥ हे साधो निपुण॥ "साधुः समर्थो निपुणो वा " इति काशिकायाम् । हृदयनिहितैः । अविस्मृतैरित्यर्थः ॥ एभिः पूर्वोक्तैर्लक्षणैस्तोरणादिभिरभिज्ञानैर्द्वारोपान्ते ॥ एकवचनमविवक्षितम् ॥ द्वारपार्श्वयोरित्यर्थः ॥ लिखिते वपुषी आकृती ययोस्तौ तथोक्तौ शङ्खपद्मौ नाम निधिविशेषौ ॥

(a peacock) made to dance by my wife with the clappings of the hands (rendered) charming by her jingling bracelets.

19. By means of these marks, treasured up in thy heart and on seeing *Sankha* & *Padma* (two of Kubera's treasures) whose figures are drawn on both the sides of the door, thou wilt, O clever one, recognise (my) house, now indeed with its lustre diminished by my absence; (for) at sunset, the lotus does not, forsooth, retain its beauty.

---

19. K1. K2. N. M. मनसि for हृदय° K2. M. लक्षणीयं for लक्षयेथाः. W. M. मन्द° for क्षाम°. M. K1. G1. N. R. अभिक्षां for अभिख्याम्.

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
line खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ २० ॥

" निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः " इत्यमरः ॥ दृष्ट्वा च नूनं सत्य-मधुनेदानीम् ॥ " अधुना " इति निपाः ॥ मद्वियोगेन मम प्रवासेन क्षाम-च्छायं मन्दच्छायमुत्सवापरमात्क्षीणकान्ति भवनं मद्गृहं लक्षयेथा निश्चिनुयाः । तथा हि । सूर्यापाये सति कमलं पद्मं स्वामात्मीयामभिख्यां शोभाम् ॥ " अ-भिख्या नामशोभयोः " इत्यमरः ॥ न पुष्यति नोपचिनोति खलु । सूर्यविरहितं पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभत इत्यर्थः ।

निजगृहनिश्चयानन्तरं कृत्यमाह—

२०. गत्वेति ॥ हे मेघ । शीघ्रसंपात एव हेतुस्तस्य । शीघ्रप्रवेशार्थमि-त्यर्थः ॥ " षष्ठी हेतुप्रयोगे " इति षष्ठी ॥ " संपातः पतने योगे प्रवेशे वेदसं-विदोः" इति शब्दार्णवे ॥ सद्यः सपदि कलभस्य करिपोतस्य तनुरिव तनुर्यस्य तस्य भावस्तामल्पशरीरतां गत्वा प्राप्य प्रथमकथिते " तस्यास्तीरे " इत्या दिना पूर्वोद्दिष्टे रम्यसानौ । निषदनयोग्य इत्यर्थः । क्रीडाशैले निषण्ण उपविष्टः सन् । अल्पाल्पा अल्पप्रकारा भाः प्रकाशो यस्यास्ताम् । " प्रकारे गुणवचनस्य " इति द्विरुक्तिः ॥ खद्योतानामाली तस्या विलसितेन स्फुरितेन निभां समानां वि-द्युदुन्मेषो विद्युत्प्रकाशः स एव दृष्टिस्तां भवनस्यान्तरन्तर्भवनं तत्र पतितां प्र-विष्टां कर्तुमर्हसि । यथा कश्चित्किंचिदन्विष्यन्क्वचिदुन्नते स्थित्वा शनैः शनै-स्तितरां द्राघीयसीं दृष्टिमिष्टदेशे पातयति तद्वदित्यर्थः ॥

संप्रति दृष्टिपातफलस्याभिज्ञानं श्लोकद्वयेनाह—

---

20. After assuming forthwith the size of a young elephant, for the purpose of quick entrance, thou, seated on the aforesaid beautiful-topped mountain of sport, shouldst be pleased to cast, inside the house, a glance in the form of a flash of lightning, of a very slight brilliancy and resembling the twinklings of a line of fireflies.

---

20. W. M. तत्परित्राण° for शीघ्रसंपात°. G2. M. °भासां for भासं. G2. M. °विलसन° for °विलसित°.

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ २१॥

२१. तन्वीति ॥ तन्वी कृशाङ्गी । न तु पीवरी ॥ "श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु" इत्यमरः ॥ "वोतो गुणवचनात्" इति ङीष् ॥ श्यामा युवतिः ॥ "श्यामा यौवनमध्यस्था" इत्युत्पलमालायाम् ॥ शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः कोटिमन्तः ॥ "शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु" इति विश्वः॥ शिखरिणो दशना दन्ता यस्याः सा । एतेनास्या भाग्यवत्त्वं पत्यायुष्करत्वं च सूच्यते । तदुक्तं सामुद्रिके—"स्निग्धाः समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः । दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम् ॥ ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासः समोदयाः । दन्ताः शिखरिणो यस्याश्चिरं जीवति तत्पतिः" इति ॥ पक्वं परिणतं बिम्बं बिम्बिकाफलमिवाधरोष्ठो यस्याः सा पक्वबिम्बाधरोष्ठी ॥ शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः" इति वामनः ॥ "नासिकोदरोष्ठ—" इत्यादिना ङीष् ॥ मध्ये क्षामा । कृशोदरीत्यर्थः । चकितहरिण्याः प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि दृष्टयो यस्याः सा तथोक्ता ॥ एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते । तदुक्तं रतिरहस्ये पद्मिनीलक्षणप्रस्तावे—"चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे" इति ॥ निम्ननाभिर्गम्भीरनाभिः ॥ अनेन नारीणां नाभिगाम्भीर्यान्मदनातिरेक इति कामसूत्रार्थः सूच्यते । श्रोणीभारादलसगमना मन्दगामिनी । न तु जघनदोषात् ॥ स्तनाभ्यां स्तोकनम्रेषदवनता । न तु वपुर्दोषात् ॥ युवतय एव विषयस्तस्मिन्युवतिविषये। युवतीरधिकृत्येत्यर्थः । धातुर्ब्रह्मण आद्या सृष्टिः प्रथमशिल्पमिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा ॥ प्रथमनिर्मिता युवतिरियमेवेत्यर्थः ॥ प्रायेण शिल्पिनां प्रथमनिर्माणे प्रयत्नातिशयवशाच्छिल्पनिर्माणसौष्ठवं दृश्यत इत्याद्यवि-

---

21. Slender, youthful, possessed of pointed teeth, and of lips like ripe *Bimba* (fruit), thin-waisted, possessed of eyes like those of a timid fawn, of deep navel, moving slowly on account of the weight of the hips, slightly bent down by the (two) breasts, (and) the first work, as it were, of the creator in the department of women;—who may be (of such a description) there.

---

21. G2. W. K1. R· N.M. शिखरदशना, G1.M. अशिखरिदशना for शिखरिदशना. M. अधरौष्ठी for अधरोष्ठी. M. क्षीणा for क्षामा. B. आस्ते for स्यात्. P. युवतिविषया for युवतिविषये. W. K1, M. आद्यैव for आद्येव.

तां जानीथाः परिमित ां शीघ्र ीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सह थते र ्वाकीमिवैकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दि ु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरम कर्तुं पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥२२॥

ां वि

शेषणम् । तथा चास्मिन्प्रपञ्चे न कु वेधरामणीयकं रमणीरत्नमस्तीति भावः । तदेवंभूता या स्त्री तत्रान्तर्भवने: याव । तत्र निवसेदित्यर्थः । तामित्युत्तरश्लोकेन संबन्धः ॥

२२. तामिति ॥ सहचरे सहचारिणि । अनेन वियोगासहिष्णुत्वं व्यज्यते । मयि दूरीभूते दूरस्थिते सति । सहचरे चक्रवाके दूरीभूते सति चक्रवाकीं चक्रवाकवधूमिव ॥ "जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्" इति ङीष् ॥ परिमितकथां परिमितवाचम् । एकामेकाकिनीं स्थितां तामन्तर्भवनगतां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः ॥ जीविततुल्यां मत्प्रेयसीमवगच्छेरित्यर्थः । "तन्वी" इत्यादिपूर्वलक्षणैरिति शेषः ॥ लक्षणानामन्यथाभावभ्रममाशङ्क्याह—गाढेति ॥ गाढोत्कण्ठां प्रबलविरहवेदनाम् । "रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या । संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः" इत्यभिधानात् ॥ बालां गुरुषु विरहमहत्त्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशिरकालेन मथितां पद्मिनीं वा पद्मिनीमिव ॥ "इववद्वायथाशब्दौ" इति दण्डी ॥ अन्यरूपां पूर्वविपरीताकारां जातां मन्ये । हिमहतपद्मिनीव विरहेणान्यादृशी जातेति तर्कयामीत्यर्थः । एतावता नेयमन्येति भ्रमितव्यमिति भावः ॥

---

22. Thou canst know her, (who is) taciturn, (and) in the absence of me, her companion, solitary like a *Chakravâki*, to be my second life (i. e. my wife); I imagine (that) young woman (filled) with ardent longing, to have become changed in appearance like a lotus-plant-blighted by winter, during these heavy days that are (now) passing.

---

22. P. R. W. K1. K2. G1. G2. N. M. जानीया: for जानीथाः. P. गाढोत्कण्ठा for गाढोत्कण्ठाम्. P. बाला जाता for बालाम् जाताम्. P. °मथिता पद्मिनीवान्यरूपा for °मथितां पद्मिनीं वान्यरूपां. K1. G1. N. M. K2. तुहिन° for शिशिर°.

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमस[illegible]क्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनु[illegible]कान्तेर्बिभर्ति ॥ २३ ॥

२३. नूनमिति ॥ प्रबलरुदितेन [illegible] स्तब्धे स्थगुटितपुटे नेत्रे यस्य तत् ॥ उच्छूनेति श्वयतेः कर्तरि क्तः ॥ "अ[illegible]तश्च" इति निष्ठा नत्वम् । "वचिस्वपि–" इत्यादिना संप्रसारणम् । "संप्रसारणाच्च" इति पूर्वरूपत्वम् । "हलः" इति दीर्घः ॥ "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इति ऊठ् आदेशे कृते रूपसिद्धिरिति वर्तमानसामीप्यप्रक्रिया प्रामादिकीत्युत्प्रेक्षा । तथा सति धातोरिकारस्य गत्यभावादूडादेशे छ्वोरन्त्यत्वेन विशेषणाच्चेति ॥ एतेन विषादो व्यज्यते । निःश्वासानामशिशिरतयान्तस्तापोष्णत्वेन भिन्नवर्णो विच्छायोऽधरोष्ठो यस्य तत् । हस्ते न्यस्तं हस्तन्यस्तम् । एतेन चिन्ता व्यज्यते ॥ लम्बालकत्वात्संस्काराभावाल्लम्बमानकुन्तलत्वादसकलव्यक्त्यसंपूर्णाभिव्यक्ति तस्याः प्रियाया मुखं त्वदनुसरणेन त्वदुपरोधेन । मेघानुसरणेनेति यावत् । क्लिष्टकान्तेः क्षीणकान्तेरिन्दोर्दैन्यं शोच्यतां बिभर्ति । नूनमिति वितर्के ॥ "नूनं तर्केऽर्थनिश्चये" इत्यमरः ॥ पूर्ववत्तथापि न भ्रमितव्यमिति भावः ॥

सर्वविरहिणीसाधारणानि लक्षणानि संभावनयोत्प्रेक्ष्याणीत्याह "आलोके" इत्यादिभिस्त्रिभिः—

---

23. Possibly that loved one's fan resting on her hand, with eyes swollen on account of excessive weeping, with lips deprived of their colour on account of the heat of the sighs, and partly visible owing to the hair hanging (loosely over it) wears the wretched appearance of the moon whose beauty has been impaired by thy persecution.

---

23. G1. G2. N. M. °उत्सून° for °उच्छून°. P. M. बहूनां for प्रियायाः. W. M. हस्ते न्यस्तम् for हस्तन्यस्तम्. M. G2, त्वदुपसरण° for त्वदनुसरण°. M. बिभर्तु for बिभर्ति.

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ २४॥

२४. आलोकेति ॥ हे मेघ । सा मत्प्रिया । बलिषु नित्येषु प्रोषितागमनार्थेषु च देवताराधनेषु व्याकुला व्यापृता वा । विरहेण तनु कृशं भावगम्यम् । तत्काश्यर्यस्यादृष्टचरत्वात्संप्रति संभावनयोत्प्रेक्ष्यमित्यर्थः । मत्सादृश्यं मदाकारसाम्यम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । यद्यपि सादृश्यं नाम प्रसिद्धवस्त्वन्तरगतमाकारसाम्यं तथापि प्रतिकृतित्वेन विवक्षितमितरथालेख्यत्वासंभवात् । अक्षय्यकोशे " आलेख्येऽपि च सादृश्यम् " इत्यभिधानात् ॥ लिखन्ती कचित्फलकादौ विन्यस्यन्ती वा चित्रदर्शनस्य विरहिणीविनोदोपायत्वादिति भावः ॥ एतच्च कामशास्त्रसंवादेन सम्यग्विवेचितमस्माभी रघुवंशसंजीविन्याम् " सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः " इत्यत्र । मधुरवचनां मंजुभाषिणीम् । अतएव पञ्जरस्थाम् । हिंस्रेभ्यः कृतसंरक्षणामित्यर्थः । सारिकां स्त्रीपक्षिविशेषम् । हे रसिक भर्तुः स्वामिनः स्मरसि कच्चित् ॥ " कच्चित्कामप्रवेदने " इत्यमरः ॥ भर्तारं स्मरसि किमित्यर्थः ॥ " अधीगर्थदयेशां कर्मणि " इति कर्मणि षष्ठी ॥ स्मरणे कारणमाह । हि यस्मात्कारणात्त्वं तस्य भर्तुः । प्रीणातीति प्रिया ॥ " इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः " इति कप्रत्ययः ॥ अतः प्रेमास्पदत्वात्स्मर्तुमर्हसीति भावः । इत्येवं पृच्छन्ती वा ॥ वाशब्दो विकल्पे ॥ " उपमायां विकल्पे वा" इत्यमरः ॥ ते तवालोके दृष्टिपथे पुरा निपतति । सद्यो निपतिष्यतीत्यर्थः ॥ " स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा " इत्यमरः ॥ " यावत्पुरानिपातयोर्लट् " इति लट् ॥

---

24. She will (just) come under thy notice, engaged in worship, or drawing my likeness emaciated by separation (and) conceivable in (her) imagination, or asking the sweet-voiced *Sarika* confined in the cage, " Do you, O sweet one remember your master, (i. e. my husband), for you were his pet. "

---

24. W. M. पुरे for पुरा. W. M. विरहतनुता° for विरहतनु वा P. M, मधुरवचनं for मधुरवचनां. W. M, K2. निभृते for रसिके.

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-
द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥२५॥

२५. उत्सङ्गेति ॥ हे सौम्य साधो । मलिनवसने । "प्रोषिते मलिना कृशा" इति शास्त्रादित्यर्थः ॥ उत्सङ्ग ऊरौ वीणां निक्षिप्य । मम गोत्रं नामाङ्कश्चिह्नं यस्मिंस्तन्मद्गोत्राङ्कं मन्नामाङ्कं यथा तथा ॥ "गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च" इत्यमरः ॥ विरचितानि पदानि यस्य तत्तथोक्तं गेयं गानार्हं प्रबन्धादि ॥ "गीतम्" इति पाठे स एवार्थः ॥ उद्गातुमुच्चैर्गातुं कामो यस्याः सा ॥ "तुं काममनसोरपि" इति मकारलोपः ॥ देवयोनित्वाद्गान्धारग्रामेण गातुकामेत्यर्थः । तदुक्तम्— "षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः । न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः" इति ॥ तथा नयनसलिलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिरार्द्रां तन्त्रीं कथंचित्कृच्छ्रेण सारयित्वा । आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्यान्यथा क्वणनासंभवादिति भावः । भूयो भूयः पुनः पुनः स्वयमात्मना कृतामपि । विस्मरणानर्हामपीत्यर्थः । मूर्च्छनां स्वरारोहावरोहक्रमम् । "स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि" इति संगीतरत्नाकरे ॥ विस्मरन्ती वा । "आलोके ते निपतति" इति पूर्वेणान्वयः ॥ विस्मरणं चात्र दयितगुणस्मृतिजनितमूर्च्छावशादेव ॥ तथा च रसरत्नाकरे— "वियोगायोगयोरिष्टगुणानां कीर्तनात्स्मृतेः । साक्षात्कारोऽथवा मूर्च्छा दशधा जायते तथा" इति ॥ मत्सादृश्यमित्यादिना मनःसङ्गानुवृत्तिः सूचिता ॥

---

25. Or having placed, O good one, the lute on her lap with a dirty garment, or desirous of singing a song in which words are arranged so as to have my name as their characteristic, (and) having somehow wiped the string wet with tears, forgetting often, and often, the air although made by herself.

---

25. G2. M. गीतं for गेयम्. P. W. M. तंत्रीरार्द्राः for तंत्रीमार्द्राम्. P. M. अधिकृताम् for अपि कृताम्.

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।
संभोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ २६ ॥

२६. शेषानिति ॥ अथवा विरहस्य दिवसस्तस्मात्स्थापितस्य तत आरभ्य निश्चितस्यावधेरन्तस्य शेषान्गतावशिष्टान्मासान्देहलीदत्तपुष्पैः ॥ देहली द्वारस्याधारदारु ॥ "गृहावग्रहणी देहली" इत्यमरः ॥ तत्र दत्तानि राशित्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि तैर्गणनया एको द्वावित्यादिसंख्यानेन भुवि भूतले विन्यस्यन्ती वा । पुष्पविन्यासैर्मासान्गणयन्ती वेत्यर्थः ॥ यद्वा हृदये निहितो मनसि संकल्पित आरम्भ उपक्रमो यस्य तम् । अथवा हृदयनिहिता आरम्भाश्चुम्बनादयो व्यापारा यस्मिंस्तं संभोगं रतिमास्वादयन्ती वा । "आलोके ते निपतति" इति पूर्वेण संबन्धः ॥ ननु कथमयं निश्चय इत्याशङ्क्य अर्थान्तरन्यासेन परिहरति । प्रायेण बाहुल्येनाङ्गनानां रमणविरहेष्वेते पूर्वोक्ता विनोदाः कालयापनोपायाः । एतेन संकल्पावस्थोक्ता । तदुक्तम्—"संकल्पो नाथविषयमनोरथ उदाहृतः" इति ॥

---

26. Or counting on the floor with flowers placed at the threshold, the remaining months of the period settled (commencing) from the day of separation, or experiencing the pleasure of sexual intercourse (with me) the actions whereof are laid in the mind; these are generally the pastimes of women during separation from their husbands.

---

26. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. B. गमन,° M. मनसि for विरह°. K1. R. M. °दिवसे for दिवस°. M. °प्रस्थितस्य for °स्थापितस्य. P. G1. W. G2. K1. K2. R. N. M. °मुक्तपुष्पैः for °दत्तपुष्पैः. P. R. W. N. G1. G2. M. संयोगं वा, K1. K2. M. मत्संयोगं, M. संयोगे मे, B. M. मत्संभोगं, C1. C2. M. मत्संगं वा for संभोगं वा. P. M. °रचिता°, M. °विहिता° for °निहिता°. K1. W. R. G1. G2. N. M. आसादयन्ती for आस्वादयन्ती. W. M. °विरहे हि for °विरहेषु.

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेद्विप्रयोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ।
मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥ २७ ॥

२७. सव्यापारामिति ॥ हे सखे । अहनि दिवसे सव्यापारां पूर्वोक्तबलिचित्रलेखनादिव्यापारवतीं तं सखीं स्वप्रियां विप्रयोगो मद्विरहस्तथा तेन प्रकारेण ॥ " प्रकारवचने थाल् " इति थाल्प्रत्ययः ॥ न पीडयेत् । यथा रात्राविति शेषः ॥ किं तु रात्रौ निर्विनोदां निर्व्यापारां ते सखीं गुरुतरा शुग्यस्यास्तां गुरुतरशुचमतिदुर्भरदुःखां शङ्के तर्कयामि ॥ " शङ्का वितर्कभययोः " इति शब्दार्णवे ॥ अतो निशीथेऽर्धरात्र उन्निद्रामुत्सृष्टनिद्राम् । अवनिरेव शयनं शय्या यस्यास्ताम् ॥ नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम् ॥ साध्वीं पतिव्रताम् ॥ " साध्वी पतिव्रता " इत्यमरः ॥ अतो नान्यथा शङ्कितव्यमिति भावः । तां त्वत्सखीं मत्संदेशैर्मद्वार्ताभिरलं पर्याप्तं सुखयितुमानन्दयितुं सौधवातायनस्थः सन्पश्य ॥ " सखा धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः । सुखयन्तीष्टकथनसुखोपायैर्वियोगिनीम् " इति रसरत्नाकरे ॥ दूतश्चायं मेघ इति भावः ॥ अनेन जागरावस्थोक्ता ॥

पुनस्तामेव विशिनष्टि " आधिक्षामाम् " इत्यादिभिश्चतुर्भिः—

---

27. I fear that separation (from me) will not so afflict thy friend during the day-time when (she is) employed as (it will) during the night when (she is) without amusement (and therefore) in excessive grief; in order to cheer her up completely with messages from me, thou, standing at midnight, at the window of the mansion, shouldst behold the chaste one sleepless and having the ground for her bed.

---

27. K2. M. खेदयेत for पीडयेत. W. C1. C2. G1. N. R. G2. K1. M. K2. मद्वियोगः for विप्रयोगः. P. M. अतः for अलम्. W. M. °शयनां सन्नवातायनस्थः, P. B. K1. K2. M. °शयनां सद्मवातायनस्थः, G1. G2. R. N. M. °शयनासन्नवातायनस्थः for °शयनां सौधवातायनस्थः.

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २८ ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-
न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव ।
चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥२९॥

२८. आधिक्षामामिति ॥ आधिना मनोव्यथया क्षामां कृशाम् ॥ "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः ॥ क्षायतेः कर्तरि क्तः ॥ "क्षायो मः" इति निष्ठातकारस्य मकारः ॥ विरहे शयनं तस्मिन्विरहशयने । पल्लवादिरचित इत्यर्थः । संनिषण्णमेकं पार्श्वं यस्यास्ताम् । अत एव प्राच्याः पूर्वस्या दिशो मूले । उदयप्रान्त इत्यर्थः ॥ प्राचीग्रहणं क्षीणावस्थाद्योतनार्थम् । कलामात्रं कलैव शेषो यस्यास्तां हिमांशोस्तनुं मूर्तिमिव स्थिताम् । तथा या रात्रिर्मया सार्धमिच्छया कृतानि रतानि तैः ॥ शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः ॥ क्षण इव नीता यापिता तां तज्जातीयामेव रात्रिं विरहेण महतीं महत्त्वेन प्रतीयमानामुष्णैरश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ यातेर्ण्यन्ताच्छतृप्रत्ययः ॥ "अर्तिह्री—" इत्यादिना पुगागमः ॥ स एव कालः सुखिनामल्पः प्रतीयते । दुःखिनां तु विपरीत इति भावः । एतेन कार्श्यावस्थोक्ता ॥

२९. पादानिति ॥ जालमार्गप्रविष्टान्गवाक्षविवरगतानमृतशिशिरानि

---

28. Worn out by mental agony, lying on one side on her bed of separation, resembling the disk of the moon which has only its sixteenth part remaining on the Eastern horizon, and passing in hot tears that very night made long by solitude, (yet) which was spent like a moment with me in unrestrained (indulgence of) pleasures.

29. Covering with the eyelashes heavy by tears of sorrow, the eye

---

28. W. M. सन्निकीर्णैक°, M. विप्रकीर्णैक° for सन्निषण्णैक°. P. K1. W. K2. G1. G2. R. N. M. क्षणमिव for क्षण इव. W. G1. G2. K1. N. M. °जनितैः, M. R. K2. °पतितैः for °महतीम्.

29. R. N. M. K1. K2. अभिमुखगतं for गतमभिमुखम्. P. G2. M. K1. K2. N. R. खेदाच्चक्षुः for चक्षुःखेदात्. M. सजल° for सलिल°. M. छादयित्वा for छादयन्तीम्.

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
मत्संभोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥३०॥

न्दोः पादान्रश्मीन्पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन । पूर्ववदानन्दकरा भविष्यन्तीति बुद्ध्येति भावः । अभिमुखं यथा तथा गतं तथैव संनिवृत्तं यथा गतं तथैव प्रतिनिवृत्तम् । तदा तेषामतीव दुःसहत्वादिति भावः । चक्षुर्दृष्टिं खेदात्सलिलगुरुभिरश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिश्छादयन्तीम् । अत एव साभ्रे दुर्दिनेऽह्नि दिवसे न प्रबुद्धां मेघावरणाद्विकसितां न सुप्तामहरित्यमुकुलिताम् ॥ उभयत्रापि नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः ॥ स्थलकमलिनीमिव स्थिताम् । एतेन विषयद्वेषाख्या षष्ठी दशा सूचिता ॥

३०. निःश्वासेति ॥ शुद्धस्नानात्तैलादिरहितस्नानात्परुषं कठिनस्पर्शं नूनं निश्चयेनागण्डलम्बम् ॥ सुप्सुपेति समासः ॥ अलकं चूर्णकुन्तलान् ॥ जातावेकवचनम् ॥ अधरकिसलयं क्लेशयति क्लिश्नातीति वा तेन तथोक्तेन । उष्णेनेत्यर्थः ॥ क्लिश्यतेर्ण्यन्तात्क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनिः ॥ निःश्वासेन विक्षिपन्तीं चालयन्तीं तथा स्वप्नजोऽपि स्वप्नावस्थाजन्योऽपि । साक्षात्संभोगासंभवादिति भावः । मत्संभोगः कथं केन प्रकारेणोपनमेदागच्छेत् । इ-

---

which, out of previous friendship, turns towards the moon's rays cold as nectar, (and) entering through the apertures of the lattices, and immediately turns away, (and so) resembling the *Sthala-Kamalinī* (plant) on a cloudy day, when it is neither open nor shut.

30. Throwing aside with a sigh afflicting (by its heat) her shoot-like lip, the hair, rough owing to their being merely washed and actually hanging down (loosely) over her cheeks, and longing for sleep, opportunity for which is prevented by the gushing forth of tears, thinking how enjoyment with me, even in a dream could be had.

---

30. M. विश्वासेन for निःश्वासेन. G1. G2. R. N. M. K1. K2. आगण्डलम्बि for आगण्डलम्बम्. P. W. R. G1. G2. K1. K2. N. M. मत्संयोगः for मत्संभोगः. C1. P. C2. M. B. कथमुपनयेत्, R. G1. G2. K1. M. N. K2. सुखमुपनयेत्, M. कथमपि भवेत्, W. M. क्षणमपि भवेत्. for कथमुपनमेत्. P. C1. C2. B. G1. G2. K1. K2. R. N. M. उपनयेत् for उपनमेत्. M. स्वप्नगोष्ठीविनिद्रां for स्वप्नजोऽपीति निद्रां M. °रुद्धाश्रुवृत्त्या for °रुद्धावकाशाम्.

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ ३१ ॥

त्याशयेनेति शेषः ॥ इतिनैवोक्तार्थत्वादप्रयोगपौनरुक्त्यादित्याशंकानिरासः । प्रार्थनायां लिङ् ॥ नयनसलिलोत्पीडेनाश्रुप्रवृत्त्या रुद्धावकाशामाक्रान्तस्थानाम् । दुर्लभामित्यर्थः । निद्रामाकाङ्क्षन्तीम् । स्नेहातुरत्वादिति भावः ॥ अत्राश्रुविसर्जनेन लज्जात्यागो व्यज्यते ॥

३१. आद्य इति ॥ आद्ये विरहदिवसे दाम मालां हित्वा त्यक्त्वा या शिखा बद्धा ग्रथिता शापस्यान्ते विगलितशुचा वीतशोकेन मयोद्वेष्टनीयां मोचनीयाम् स्पर्शक्लिष्टां स्पर्शे सति मूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः । कठिना च सा विषमा निम्नोन्नता च ताम् ॥ खञ्जकुब्जादिवदन्यतरस्य प्राधान्यविवक्षया " विशेषणं विशेष्येण बहुलम् " इति समासः ॥ एकवेणीमेकीभूतवेणीम् ॥ " पूर्वकाल—" इत्यादिना तत्पुरुषः॥ तथाभूतां तां शिखाम् । अयमिता अकर्तितापान्ता नखा यस्य तेन करेण गण्डाभोगात्कपोलविस्तारादसकृन्मुहुर्मुहुः सारयन्तीमपसारयन्तीम् । " तां पश्य " इति पूर्वेण संबन्धः । असकृत्सारणाच्चित्तविभ्रमदशा सूचिता ॥

---

31. Pushing aside often and often from the region of her cheeks, with her hand with nails unpared, that single-braided, hard and rough knot of hair painful to the touch, which was tied up on the first day of separation after the garland being laid aside, and which is to be untwisted by me freed from sorrow at the termination of (the period of) curse.

---

31. W. M. G1. या, G2. K1. K2. R. N. M. सा for ताम्. K1. W. R. G1. G2. M. N. मयोद्वेष्टनीया, M. K2. मयोन्मोचनीया for मयोद्वेष्टनीयाम्. M. G1. अपमित for अयमित°. G1. G2. K1. R. N. M. सारयन्ती for सारयन्तीं M. गल्लाभोगात् for गण्डाभोगात्. K2. M. कलुषविषमां for कठिनविषमां. M. G2. °विषमात् for °विषमाम्.

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम् ।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ३२ ॥

३२. सेति ॥ अबला दुर्बला संन्यस्ताभरणं कृशत्वात्परित्यक्ताभरणमसकृदनेकशो दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण ॥ " प्रकारे गुणवचनस्य " इति द्विर्भावः ॥ शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं मृदुलं गात्रं शरीरं धारयन्ती वहन्ती ॥ अनेनात्यन्ताशक्तया मूर्च्छावस्था सूच्यते ॥ सा त्वत्सखी त्वामपि नवजलमयं नवाम्बुरूपमस्रं बाष्पमवश्यं सर्वथा मोचयिष्यति ॥ " द्विकर्मसु पचादीनामुपसंख्यानम् " इति मुचेः पचादित्वाद्द्विकर्मकत्वम् ॥ तथा हि । प्रायः प्रायेणार्द्रान्तरात्मा मृदुहृदयः । मेघस्तु द्रवान्तःशरीरः । सर्वः करुणा करुणामयी वृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्यस्य स करुणावृत्तिर्भवति । अस्मिन्नवसरे सर्वथा त्वया शीघ्रं गन्तव्यमनन्तरदशापरिहारायेति संदर्भाभिप्रायः ॥ ननु किमिदमादिमां चक्षुःप्रीतिमुपेक्ष्यावस्थान्तराण्येव तत्रभवान्कविरादृतवान् । उच्यते—" संभोगो विप्रलम्भश्च द्विधा शृङ्गार उच्यते । संयुक्तयोस्तु संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः ॥ पूर्वानुरागमानाख्यप्रवासकरुणात्मना । विप्रलम्भश्चतुर्धात्र प्रवासस्तत्र च त्रिधा ॥ कार्यतः संभ्रमाच्छापादस्मिन्काव्ये तु शापजः । प्रागसंगतयोर्यूनोः सति पूर्वानुरञ्जने ॥ चक्षुःप्रीत्यादयोऽवस्था दश स्युस्तत्क्रमो यथा ॥ दृङ्मनःसङ्गसंकल्पा जागरः कृशता रतिः । ह्रीत्यागोन्मादमूर्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश ॥ पूर्वसंगतयोरेव प्रवास इति कारणात् । न तत्र पूर्ववच्चक्षुःप्रीतिरुत्पत्तिमर्हति ॥ हृत्सङ्गस्य तु सिद्धस्याप्यविच्छेदोऽत्र वर्ण्यते । अन्याश्च पूर्ववद्ग्राह्या इति तावद्व्यवस्थितिः ॥ वैयर्थ्यादादिमां हित्वा वैरस्यादन्तिमां तथा । हृत्सङ्गादिरिहाचष्ट कविरष्टाविति स्थितिः ॥ मत्सादृश्यं लिखन्तीति पद्येऽस्मिन्प्रतिपादिता । चक्षुःप्रीतिरिति प्रोक्तं निरुत्तरकृताननम् ॥ चक्षुःप्रीतिर्भवेच्चित्रेष्वदृष्टचरदर्शनात् । यथा मालविकारूपमग्निमित्रस्य पश्यतः ॥ प्रोषितानां च भर्तॄणां क

32. That woman bearing a body delicate, void of ornaments, and placed again and again with intense distress in the middle of the bed, will assuredly cause even thee to drop a tear of fresh water; for, every tender-hearted person is as a rule of a compassionate disposition.

32. P. M. पेलवं, W. K1. N. M. कोमलं for पेशलं. N. W. R. M. अश्रु, G1. G2. K1. K2. M. अश्रं for अस्रं. W. M. जललव°, M. K1. जलकण° for नवजल°.

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।
वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३३॥

दृष्टादृष्टपूर्वता अथ तत्रापि संदेहे सकलत्राणि पृच्छतु ॥ किं भर्तृप्रत्यभिज्ञा स्यात्किं वैदेशिकभावना । प्रवासादागते स्वस्मिन्नित्यलं कलहैर्वृथा " इति ॥

नन्वीदृशीं दशामापन्नेति कथं त्वया निश्चितमत आह—

३३. जान इति ॥ हे मेघ । तव सख्या मनो मयि संभृतस्नेहं संचितानुरागं जाने । अस्मात्स्नेहज्ञानकारणात्प्रथमविरहे । प्रथमग्रहणं दुःखातिशयद्योतनार्थं । तां त्वत्सखीमित्थंभूतां पूर्वोक्तावस्थामापन्नामहं तर्कयामि ॥ ननु सुभगमानिनामेष स्वभावो यदात्मनि स्त्रीणामनुरागप्रकटनं तत्राह—वाचालमिति ॥ सुभगमात्मानं मन्यत इति सुभगंमन्यः ॥ " आत्ममाने खश्च " इति खश्प्रत्ययः । " अरुर्द्विषद्–" इत्यादिना मुमागमः ॥ तस्य भावः सुभगंमन्यभावः । सुभगमानित्वं मां वाचालं बहुभाषिणं न करोति खलु । सौन्दर्याभिमानान्न प्रलपामीत्यर्थः ॥ " स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक् " इत्यमरः ॥ "आलजाटचौ बहुभाषिणि" इत्यालच्प्रत्ययः ॥ किंतु हे भ्रातः । मयोक्तं यत् " आधिक्षामाम् " इत्यादि तन्निखिलं सर्वमचिराच्छीघ्रमेव ते तव प्रत्यक्षम् । भविष्यतीति शेषः ॥

---

33. I know that thy friend's heart is full of affection for me, I therefore conclude her to have so become during this separation for the first time. It is not a high opinion of my amiability that makes (so) boastful; all that I have said will ere long be before thine eyes, O brother.

---

33. G1. G2. M. सुभगं मन्यमानः, M. G1. सुभगं मन्युभावं, M. G2. सुभगं मत्प्रभावः for सुभगं मन्यभावः. M. G2. त्वत्सखीं for तामहं. M. तव, M. यत् for ते. M. ते, M. तत् for यत्. B. G1. M. G2. सकलं for निखिलं.

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३४ ॥
वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३५॥

३४. रुद्धेति ॥ अलकै रुद्धा अपाङ्गयोः प्रसरा यस्य तत्तथोक्तं । अंजनेन स्नेहः स्नैग्ध्यं तेन शून्यम्। अपिच किंच मधुनो मद्यस्य प्रत्यादेशान्निराकरणात्। परित्यागादित्यर्थः ॥ "प्रत्यादेशो निराकृतिः" इत्यमरः ॥ विस्मृतो भ्रूविलासो भ्रूभङ्गो येन तत् । नयनस्य रुद्धापाङ्गप्रसरत्वादिकं विरहसमुत्पन्नमिति भावः। त्वय्यासन्ने सति । स्वकुशलवार्ताशंसिनीति शेषः । उपर्यूर्ध्वभागे स्पन्दते स्फुरती-त्युपरिस्पन्दि । तथा च निमित्तनिदाने—"स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं ललाटे पट्टमंशुकम् । इष्टप्राप्तिं दृशोरूर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत्" इति ॥ मृगाक्ष्या-स्त्वत्सख्या नयनम् । वाममिति शेषः । "वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः । दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलंकरणेऽपि च" इति स्त्रीणां वामभाग-प्राशस्त्यात् ॥ मीनक्षोभान्मीनचलनाच्चलस्य कुवलयस्य श्रियाः शोभायास्तुलां सादृश्यमेष्यतीति शङ्के तर्कयामि ॥ "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्या-म्"—इत्यत्र सदृशपर्यायस्य तुलाशब्दस्य प्रतिषेधादत्र च सादृश्यवाचित्वा-त्तद्योगेऽपि तृतीया ॥

३५. वाम इति ॥ मदीयैः कररुहपदैर्नखपदैः ॥ "पुनर्भवः कररुहो नखो-

34. I think that the eye of the deer-eyed one, with the movements of its outer-corners obstructed by the hair, devoid of the moisture of collyrium, forgetful of the sportings of the eyebrows, owing to the rejection of wine and throbbing in its upper part at thy approach, will bear comparison to the beauty of a lotus trembling on account of the motion of fish.

35. And her left thigh, abandoned by the marks of my nails, made

34. M. K1. अपरि° for उपरि°. B. G1. M. G2. °स्यन्दि for °स्पन्दि. W. G1. M. G2. °क्षोभाकुल° for °क्षोभाच्चल°.

35. K2. M. G2. वा for च. W. M. G1. चिरविरचितं, M. नवपरिचितं. for चिरपरिचितं. M. G2. °संवाहनस्य for °संवाह-नानाम्. W. M. K2. कनक°, M. सरल° for सरस°. P. M. G2. °गर्भगौरः for °स्तम्भगौरः.

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि-
त्सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३६ ॥

ऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् " इत्यमरः ॥ मुच्यमानः परिहीयमाणः । नखाङ्करहित इत्यर्थः । ऊर्वोर्नखपदास्पदत्वं तु रतिरहस्ये—"कण्ठकुक्षिकुचपार्श्वभुजोरःश्रोणिसक्थिषु नखास्पदमाहुः " इति ॥ चिरपरिचितं चिराभ्यस्तं मुक्ताजालं मौक्तिकसरमयं कटिभूषणं दैवगत्या दैववशेन त्याजितः । संप्रति नखपदोष्माभावेन शीतोपचारस्य तस्य वैयर्थ्यादिति भावः ॥ त्यजतेर्ण्यन्तात्कर्मणि क्तः । " द्विकर्मसु पचादीनां चोपसंख्यानमिष्यते " इति पचादित्वाद्द्विकर्मकत्वम् ॥ संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां हस्तेन मर्दनानाम् ॥ "संवाहनं मर्दनं स्यात्" इत्यमरः ॥ समुचितो योग्यः ॥ सरसो द्रवभावः परिपक्वो न शुष्कश्च विवक्षितः । तत्रैव पाण्डिमसंभवात् । स चासौ कदलीस्तम्भश्च स इव गौरः पाण्डुरः ॥ " गौरः करीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणेऽपि च " इति मालतीमालायाम्॥ अस्याः प्रियाया वाम ऊरुश्चलत्वं स्पन्दनं यास्यति प्राप्स्यति ॥ " ऊरोः स्पन्दाद्रतिं विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः" इति निमित्तनिदाने ॥

३६. तस्मिन्निति ॥ हे जलद । तस्मिन्काले त्वदुपसर्पणकाले सा मत्प्रिया लब्धं निद्रासुखं यया तादृशी स्याद्यदि स्याच्चेत् । एनां निद्राणामन्वास्य । पश्चादासित्वेत्यर्थः ॥ उपसर्गवशात्सकर्मकत्वम् । स्तनितविमुखो गर्जितपराङ्मुखो निःशब्दः सन् । अन्यथा निद्राभङ्गः स्यादिति भावः । याममात्रं प्रहरमात्रम् ॥ " द्वौ यामप्रहरौ समौ " इत्यमरः ॥ सहस्व प्रतीक्षस्व ॥ प्रार्थनायां लोट् ॥ शक्तयोरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्नेऽपि तथा भवितव्यमित्यभिप्रायः । तथा

by the force of fate, to give up the long-worn pearl-string, accustomed to be shampooed by my hands after enjoyment and fair as the juicy stem of a plantain tree, will have palpitations in it.

36. If at that time (i. e. the time of thy approach), O cloud, she should be enjoying sleep, wait for three hours by sitting near her without making a noise; (for) when she has with difficulty found me her husband in a dream, let not her close embrace be one with the knot of her creeper- like arms dropping suddenly from the neck.

36. W. G1. G2. R. N. M. K1. K2. तत्रासीनः, M. अन्वासीनः for अन्वास्यैनाम्. W. M. सहेथाः, M. क्षमस्व for सहस्व. P. M. G2. जने for मयि.

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ३७ ॥

च रतिसर्वस्वे—" एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः । चण्डशक्तिमतोर्यूनोरुद्भटक्रमवर्तिनोः " इति ॥ यामसहनस्य प्रयोजनमाह—मा भूदिति ॥ अस्याः प्रियायाः प्रणयिनि प्रेयसि मयि कथंचित्कृच्छ्रेण स्वप्नलब्धे सति गाढोपगूढं गाढालिङ्गनम् ॥ नपुंसके भावे क्तः॥ सद्यस्तत्क्षणं कण्ठाच्च्युतः स्रस्तो भुजलतयोर्ग्रन्थिर्बन्धो यस्य तन्मा भून्मास्तु । कथंचिल्लब्धस्यालिङ्गनस्य विघातो मा भूदित्यर्थः । न चात्र निद्रोक्तिः " तामुन्निद्राम् " इति पूर्वोक्तेन निद्राच्छेदेन विरुध्यते पुनः सप्तम्याद्यवस्थासु पाक्षिकनिद्रासंभवात् ॥ तथा च रसरत्नाकरे—" अशक्ती रोदनं निद्रा निर्लज्जानर्थवाग्भ्रमः ॥ सप्तमादिषु जायन्ते दशाभेदेषु वासुके " इति ॥

३७. तामिति ॥ तां प्रियां स्वस्य जलकणिकाभिर्जलबिन्दुभिः शीतलेनानिलेनोत्थाप्य प्रबोध्य । एतेन तस्याः प्रभुत्वाद्व्यजनानिलसमाधिर्व्यज्यते । यथाह भोजराजः—" मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः स्तनौ । श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम् " इति ॥ अभिनवैर्नूतनैर्मालतीनां जालकैः समं जातीकुड्मलैः सह ॥ "सुमना मालती जातिः" इति । " साकं सत्रा समं सह" इति । " क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरकः पुमान् " इति चामरः ॥ प्रत्याश्वस्तां सुस्थिताम् । शिशिरानिलसंपर्कात्पुनरुज्जीवितामित्यर्थः ॥ श्वसेः

37. Having roused that proud one by means of a breeze cooled by drops of thy water, thou with (thy) lightning hidden (in thee) and becoming steady, shouldst begin to address her refreshed along with the fresh buds of the *Málati* (creepers) and with her eyes rivetted on the window occupied by thee, with words of thunder.

37. P. M. प्रोत्थाप्यैनां for तामुत्थाप्य. M. स्वजल° for स्वजल°. R. M. प्रत्यस्वस्थां for प्रत्याश्वस्तां. K2. M. मालतीनां रजोभिः for जालकैर्मालतीनां. P. विद्युद्गर्भे स्तिमितनयनां, W. M. विद्युत्कंपस्तिमितनयनां, M. विद्युन्नेत्रस्तिमितनयनां, G2. M. K1. K2. विद्युद्गर्भे स्तिमितनयनां, M. विद्युद्गर्भे स्तनितनयनां, M. विद्युद्गर्भो निहितनयनां for विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां, P. M. धीरस्तनितवचनः, G1. W. G2. M. K1. K2. N. R. धीर स्तनितवचनैः, M. धीर ध्वनितवचनैः for धीरः स्तनितवचनैः.

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ॥
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३८॥

कर्तरि क्तः । " आदितश्च " इति चकारादिट्प्रतिषेधः ॥ एतेनास्याः कुसुमसौकुमार्यं गम्यते ॥ त्वत्सनाथे त्वत्सहिते ॥ "सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि " इति शब्दार्णवे ॥ गवाक्षे स्तिमितनयनां कोऽसाविति विस्मयान्निश्चलनेत्रां मानिनीं मनस्विनीम् । अनौचित्यासहिष्णुमित्यर्थः । विद्युद्गर्भोऽन्तःस्था यस्य स विद्युद्गर्भः । अन्तर्लीनविद्युत्क इत्यर्थः ॥ " गर्भोऽपवरकेऽन्तःस्थे गर्भोऽग्नौ कुक्षिगेऽर्भके " इति शब्दार्णवे । दृष्टिप्रतिघातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न द्योतितव्यमिति भावः । धीरो दृढः सन् । अन्यथाशीलत्वादिनैतद्नाश्वासनप्रसंगादिति भावः । स्तनितवचनैः स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तुं प्रक्रमेथा उपक्रमस्व ॥ विध्यर्थे लिङ् ॥ " प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् " इत्यात्मनेपदम् ॥

संप्रति दूतस्य श्रोतृजनाभिमुखीकरणचातुरीमुपदिशति—

३८. भर्तुरिति ॥ विधवा गतभर्तृका न भवतीत्यविधवे सभर्तृके । अनेन भर्तृजीवनसूचनादनिष्टागमशङ्कां निरस्यति । मां भर्तुस्तव पत्युः प्रियं मित्रं प्रियसुहृदम् । तत्रापि हृदयनिहितैर्मनसि स्थापितैस्तत्संदेशैस्तस्य भर्तुः संदेशैस्त्वत्समीपमागतम् । भर्तृसंदेशकथनार्थमागतमित्यर्थः । अम्बुवाहं मेघं विद्धि जानीहि ॥ न केवलमहं वार्ताहरः किंतु घटकोऽपीत्याशयेनाह ॥ योऽम्बुवाहो मेघः । अबलानां स्त्रीणां वेणयस्तासां मोक्षे मोचन उत्सुकानि पथि श्राम्यतां श्रान्तिमापन्नानां प्रोषितानां प्रवासिनाम् । पान्थानामित्यर्थः । वृन्दानि संघान् मन्द्रैर्गम्भीरैरत एवस्निग्धैर्मधुरैर्ध्वनिभिर्गर्जितैः । करणैः । त्वरयति । पान्थोपकारिणो मे किमु वक्तव्यं सुहृदुपकारित्वमिति भावः ॥

भर्तृसख्यादिज्ञापनस्य फलमाह—

---

38. Oh thou, whose husband is living, know me (to be) thy husband's dear friend come to thee with his messages stored up in my mind,—a cloud which, by its deep and pleasant thunders urges, on the way, the crowds of wearied travellers, eager to loosen their wives, braids of hair.

---

38. P. M. अभिदये for अविधवे. W. M. तत्संदेशान्मनसि निहितात्, M. त्वत्संदेशान्मनसि निहितात्, M. तत्संदेशाद्हृदयनिहितात्. P. G2. K2. R. N. M. G1. तत्संदेशैर्मनसि निहितै for तत्संदेशैर्हृदयनिहितैः. M. सान्द्र°, M. मन्त्र° for मन्द्र° M. मन्द्रस्निग्धध्वानिभिः for मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिः.

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव ।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ॥३९॥

३९. इतीति ॥ इत्येवमाख्याते सति पवनतनयं हनूमन्तं मैथिलीव सीतेव सा मत्प्रिया । उन्मुख्युत्कण्ठयौत्सुक्येनोच्छ्वसितहृदया विकसितचित्ता सती त्वां वीक्ष्य संभाव्य सत्कृत्य च । अस्माद्भर्तृमैत्रीज्ञानात्परं सर्वं श्रोतव्यम् । अवहितामत्ता सती श्रोष्यत्येव ॥ अत्रसीताहनूमदुपमानादस्याः पातिव्रत्यं मेघस्य दूतगुणसंपतिश्च व्यज्यते । तद्गुणास्तु रत्नाकरे—"ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः । धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत्" इति ॥ ननु वार्तामात्रश्रवणादस्याः को लाभ इत्याशङ्क्यार्थान्तरं न्यस्यति । हे सौम्य साधो । सीमन्तिनीनां वधूनाम् ॥ "नारी सीमन्तिनी वधूः" इत्यमरः ॥ सुहृदा सुहृन्मुखेनोपगतः प्राप्तः सन् । सुहृत्पदं विप्रलम्भशङ्कानिवारणार्थम् । कान्तस्योदन्तो वार्ता कान्तोदन्तः ॥ "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्" इत्यमरः ॥ संगमात्कान्तसंपर्कात्किंचिदून ईषदूनस्तद्वदेवानन्दकारीत्यर्थः ॥

संप्रति संदिशति—

---

39. When so much has been said, she, with her face uplifted and her heart thrilled by eagerness will look at and honour thee, as *Maithili* (Sîtá) did the son of wind (Hanumân); and after this will of course listen to thee attentively; (for) to women, O gentle one, news about (their) husbands received from friends, falls very little short of an actual meeting.

---

39. M. G2. °तनये for °तनयम्. W. G1. G2. K1. K2. N. M. संभाष्य चैवं for संभाव्य चैव. P. परमवहितं K2. M. परमपि हितं for परमवहिता. P. कान्तोपान्तात्सुहृदुपगमः for कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः. M. °उपनतः, G1. G2. K1. N. M. K2. °उपहृतः for उपगतः.

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ४० ॥

४०. हे आयुष्मन् ॥ प्रशंसायां मतुप् ॥ परोपकारश्लाघ्यजीवितेत्यर्थः । मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्माच्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च । परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः ॥ उपकारक्रियां प्रति कर्मत्वेऽपि तस्यानुकरोतीत्यादिवत्संबन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते । यथाह भारविः—" सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् " इति । तथा श्रीहर्षश्च—" साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् । न कुतूहलिकस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम्" इति । तथा च " क्वचित्क्वचिद्द्वितीयादर्शनात्सर्वस्य तथा " इति नाथवचनमनाथवचनमेव ॥ तां प्रियामेवं ब्रूयाः । किमित्याह । हे अबले । तव सहचरो भर्ता रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः सन्नव्यापन्नः । न मृत इत्यर्थः । वियुक्तो वियोगं प्राप्तो दुःखी संस्त्वां कुशलं पृच्छति ॥ दुह्यादित्वात्पृच्छतेर्द्विकर्मकत्वम् ॥ तथाहि । सुलभविपदामयत्नसिद्धविपत्तीनां प्राणिनामेतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् ॥ " कृत्याश्च " इत्यावश्यकार्थे ण्यत्प्रत्ययः ॥

---

40. O long-lived one, in accordance with my request, and in order also to benefit thyself, thou shouldst address her as follows:— " Thy consort, O lady, (is) alive and dwelling amongst the hermitages of *Rámagiri*, (and) being separated (from thee) enquires of thee about thy welfare; (for) in the case of creatures easily subjected to misfortunes, this necessarily ought to be the first subject of inquiry.

---

40. K2. M. आयुष्मान् for आयुष्मन्. G1.G2. K1. M.N. आत्मना for आत्मनः P. R. G1. G2. K1. K2. N.M. ब्रूयादेवं, M. ब्रूयादेकं, M. ब्रूया ह्येवं for ब्रूया एवम्. W. M. वियुक्तां, P. M. नियुक्तः for वियुक्तः. P. M. K2. पूर्वाशास्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव, W. M. भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्, M. भूतानां हि सुलभविपदां पूर्वमाभाष्यमेतत्, M. पूर्वं भाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव, M. पूर्वाश्वास्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव for पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव.

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥४१॥

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४२ ॥

४१. अङ्गेनेति ॥ किं च । दूरवर्ती दूरस्थः । न चागन्तुं शक्यत इत्याह । वैरिणा विरोधिना विधिना दैवेन रुद्धमार्गः प्रतिबद्धवर्त्मा स ते सहचरः । तनुना कृशेन गाढतप्तेनात्यन्तसंतप्तेन सास्रेण साश्रुणा । उत्कण्ठा वेदनास्य जातोत्कण्ठितं तेनोत्कण्ठितेन ॥ " तदस्य संजातम्–" इत्यादिनेतच्प्रत्ययः । उत्कण्ठतेर्वा कर्तरि क्तः ॥ समधिकतरं अतिप्रबलं उच्छ्वसितीति समधिकतरोच्छ्वासि तेन । दीर्घनिःश्वासिनेत्यर्थः ॥ ताच्छील्ये णिनिः ॥ अङ्गेन स्वशरीरेण प्रतनु कृशं तप्तं वियोगदुःखेन क्लिष्टमश्रुद्रुतमश्रुक्लिन्नम् ॥ " अश्रु नेत्राम्बु । रोदनं चास्रमस्रु च " इत्यमरः ॥ अविरतोत्कण्ठमविच्छिन्नवेदनमुष्णोच्छ्वासं तीव्रनिःश्वासम् ॥ " तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्णं चण्डमुष्णं पटु स्मृतम् " इति हलायुधः ॥ अङ्गं त्वदीयं शरीरं तैः स्वसंवेद्यैः संकल्पैर्मनोरथैर्विशति । एकीभवतीत्यर्थः ॥ अत्र समानुरागित्वद्योतनाय नायकेन नायिकायाः स्वसमानावस्थात्वमुक्तम् ॥

४२. शब्दाख्येयमिति ॥ हे अबले । यस्ते प्रियः सखीनां पुरस्तादग्रे

41. Living at a distance, and having his way obstructed by adverse fate, with his body thin, greatly scorched, full of tears, anxious and sighing very heavily, he enters (i. e. unites himself to) thy body, very thin, scorched (by pain), wet with tears, unceasingly anxious, and sighing hotly, with those (various) desires (i. e. which are known to himself alone).

42. He, who from a desire to touch (kiss) thy face, used indeed

41. P. M. तनु च, W. M. सुतनु for प्रतनु. P. N. M. K2. G1. K1. अस्रद्रवं, R. M. G2. अश्रुद्रवं, C1. C2. अस्रद्रुतं for अश्रुद्रुतं. W. M. दीर्घोच्छ्वासं for उष्णोच्छ्वासं. W. M. ते for तैः.

42. M. तत् for ते. M. तव for यः. M. अगात् for अभूत्. M. लोचनानां for लोचनाभ्यां. P. M. G1. अदृष्टः, K2. M. अगम्यः for अदृश्यः. M. °विरहित° for °विरचित°. M. संमुखेन for मन्मुखेन.

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासा-
न्हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥४३॥

आननस्पर्शे त्वन्मुखसंपर्के लोभाद्गाध्न्यात् । अधरपानलोभादित्यर्थः । शब्दाख्येयं शब्देन रवेणाख्येयमुच्चैर्वाच्यमपि यत् । तद्वचनमपीति शेषः । कर्णे कथयितुं लोलो लालसोऽभूत्किल ॥ " लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च " इति यादवः ॥ श्रवणविषयं कर्णपथमतिक्रान्तः । तथा लोचनाभ्यामदृश्यः । अतिदूरत्वाद्द्रष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः । स ते प्रियः । त्वामुत्कण्ठया विरचितानि पदानि सुप्तिङन्तशब्दा वाक्यानि वा यस्य तत्तथोक्तम् ॥ " पदं शब्दे च वाक्ये च " इति विश्वः ॥ इदं वक्ष्यमाणं " श्यामास्वङ्गम् " इत्यादिकं मन्मुखेनाह । मद्व्यवधानेन स एव ब्रूत इत्यर्थः ॥

सदृशप्रतिकृतिस्वप्नदर्शनतदङ्गस्पृष्टस्पर्शाख्यानि चत्वारि विरहिणां विनोदस्थानानि । तथा चोक्तं पताकायाम्— " वियोगे चायोगे प्रियजनसदृक्षानुभवनं ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि । तदङ्गस्पृष्टानामुपनतवतां स्पर्शनमपि प्रतीकारोऽनङ्गव्यथितमनसां कोऽपि गदितः " इति ॥ तत्र सदृशवस्तुदर्शनमाह—

४३. श्यामास्विति ॥ श्यामासु प्रियङ्गुलतासु ॥ " श्यामा तु महिलाह्वया । लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली " इत्यमरः ॥ अङ्गं शरीरमुत्पश्यामि । सौकुमार्यादिसाम्यादङ्गमिति तर्कयामीत्यर्थः । तथा चकितहरिणीनां प्रेक्षणे ते दृष्टिपातं शशिनि चन्द्रे वक्त्रच्छायां मुखकान्तिम् । तथा शिखिनां

---

to become solicitous to whisper, in thy ear in the presence of thy friends (something) which might have been as well uttered in words (i. e. aloud), being (now) out of the reach of thy ear and invisible to thy eyes, addresses to thee, by my mouth this (message), the words of which have been arranged (dictated) by sorrow.

43. In the Priyangu creepers I see (in my imagination) thy body, in the glance of the timid deer thy glance in the moon the beauty of thy face, in the tufts of the peacocks' feathers thy hair, in the

---

43. P. K1. R. W. G1. G2. N. M. °प्रेक्षिते for °प्रेक्षणे. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. दृष्टिपातान् for दृष्टिपातं M. वक्त्रच्छायं, W. M. गण्डच्छायं, M. गण्डच्छायां for वक्त्रच्छायां. K1. N. M. भ्रूपताकाः for भ्रूविलासान्. P. W. G1. K1. K2. R. G2. M. एकस्थं for एकस्मिन्. G1. G2. M R. B. K1. K2. भीरु for चण्डि.

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ ४४ ॥

बर्हिणां बर्हभारेषु बर्हसमूहेषु केशान् । प्रतनुषु स्वल्पासु नदीनां वीचिषु ॥ अत्र वीचीनां विशेषणोपादाने नानुक्तगुणग्रहदोषः । भ्रूसाम्यनिर्वाहाय महत्त्वदोषनिराकरणार्थत्वात्तस्येति । तदुक्तं रसरत्नाकरे—" ध्वन्युत्पादे गुणोत्कर्षे भावोक्तौ दोषवारणे । विशेषणाद्विशेष्यस्य नास्त्यनुक्तगुणग्रहः" इति गुणविशेषणे गुणग्रहणात् ॥ भ्रूविलासान् ॥ " भ्रूपताकाः" इति पाठे भ्रुवः पताका इवेत्युपमितसमासः ॥ उत्पश्यामीति सर्वत्र संबध्यते ॥ तथापि नास्ति मनोनिर्वृतिरित्याशयेनाह—हन्तेति ॥ हन्त विषादे ॥ "हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः" इत्यमरः॥ हे चण्डि कोपने ॥ " चण्डस्त्वत्यन्तकोपने " इत्यमरः ॥ गौरादित्वात् ङीष् ॥ उपमानकथनमात्रेण न कोपितव्यमिति भावः । क्वचिदपि कस्मिन्नप्येकस्मिन्वस्तुनि ते तव सादृश्यं नास्ति । अतो न निर्वृणोमीत्यर्थः । अनेनास्याः सौन्दर्यमनुपममिति व्यज्यते ॥

संप्रति प्रतिकृतिदर्शनमाह—

४४. त्वामिति ॥ हे प्रिये । प्रणयेन प्रेमातिशयेन कुपितां कुपितावस्थायुक्तां त्वाम् । त्वत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । धातवो गैरिकादयः ॥ "धातुर्वातादिशब्दादिगैरिकादिष्वजादिषु " इति यादवः ॥ त एव रागा रञ्जकद्रव्याणि ॥ " चित्रादिरञ्जकद्रव्ये लाक्षादौ प्रणयेच्छयोः । सारङ्गादौ च रागः स्यादारुण्ये रञ्जने पुमान् " इति शब्दार्णवे ॥ तैर्धातुरागैः । शिलायां शिलापट्ट आलिख्य निर्माय आत्मानं माम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । ते तव । चित्रगताया इत्यर्थः चरणपतितं कर्तुं तथा लेखितुं यावदिच्छामि तावदिच्छासमकालं मुहुरुपचितैः प्रवृद्धैरस्रैरश्रुभिः । कर्तृभिः ॥ " अस्रमश्रुणि शोणिते " इति विश्वः ॥ मे दृष्टिरालुप्यते । आव्रियत इत्यर्थः । ततो दृष्टिप्रतिबन्धनाल्लेखनं प्रतिबध्यत इति भावः । क्रूरो घातुकः ॥ " नृशंसो घातुकः क्रूरः " इत्यमरः ॥ कृतान्तो दैवम् ॥ " कृ-

small ripples of the rivers, the sportings of thy eyebrows, (and yet) alas! not even in any of these is there, O angry one, a likeness to thee.

44. After portraying thee full of love-anger, on a stone with mineral dyes, when I wish to draw myself (lying) prostrate at thy feet, my sight is obscured by constantly gathering tears: cruel fate does not brook our union even in that (picture).

44. M. सहति for सहते.

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४५॥

तान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' 'इत्यमरः ॥ तस्मिन्नपि चित्रेऽपि ॥ नावा-वयोः ॥ "युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ" इति नावादेशः ॥ संगमं सहवासं न सहते । संगमलेखनमप्यावयोरसहमानं दैवमावयोः सङ्गं न सहत इति किमु वक्तव्यमित्यपिशब्दार्थः ॥

अधुना स्वप्नदर्शनमाह—

४५. मामिति ॥ सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः ॥ "स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञानम्" इति विश्वः ॥ संदर्शनं संवित् ॥ "दर्शनं समये शास्त्रे दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण संविदि" इति शब्दार्णवे ॥ स्वप्ना इति संदर्शनानि स्वप्नज्ञानानि ॥ चूतवृक्षादिवत्सामान्यविशेषभावेन सहप्रयोगः ॥ तेषु मया कथमपि महता प्रयत्नेन लब्धाया गृहीतायाः । दृष्टाया इति यावत् ॥ ते तव निर्दयाश्लेषो गाढालिङ्गनं स एव हेतुस्तस्य । निर्दयाश्लेषार्थमित्यर्थः ॥ "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी ॥ आकाशे निर्विषये प्रणिहितभुजं प्रसारितबाहुं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्ता मौक्तिकानीव स्थूला अश्रुलेशा बाष्पबिन्दवस्तरुकिसलयेषु । अनेन वेलाश्वलनाश्रुधारणसमाधिर्ध्वन्यते। बहुशो न पतन्तीति न किंतु पतन्त्येवेत्यर्थः ॥ निश्चये नञ्द्वयप्रयोगः । तथा चाधिकारसूत्रम्—"स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः" इति । "महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि । देशभंगो महादुःखं मरणं च भवेद्ध्रुवम्" इति क्षितौ देवताश्रुपातनिषेधदर्शनाद्यक्षस्य मरणभावसूचनार्थं तरुकिसलयेषु पतन्तीत्युक्तम् ॥

इदानीं तदङ्गस्पृष्टवस्तुदर्शनमाह—

---

45. Upon the shoots of trees fall in abundance, tear-drops as big as pearls, of the local Deities beholding me throwing out my arms into space, for the sake of closely embracing thee found with great difficulty, by me, in the visions of dreams.

---

45. M. G. निशि for मया. Kl. M. अश्रुपाताः for अश्रुलेशाः.

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ४६ ॥
संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४७॥

४६. भित्त्वेति ॥ देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान्पल्लवपुटान्सद्यो भित्त्वा । तत्क्षीरस्रुतिसुरभयस्तेषां देवदारुद्रुमाणां क्षीरस्रुतिभिः क्षीरनिष्यन्दैः सुरभयः सुगन्धयः । तुषाराद्रिजातत्वे लिङ्गमिदम् । ये वाता दक्षिणेन दक्षिणमार्गेण ॥ तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानात्तृतीया समेन यातीतिवत् । तत्रापि करणत्वस्य प्रतीयमानत्वात् । "कर्तृकरणयोरेव तृतीया" इति भाष्यकारः ॥ प्रवृत्ताश्चलिताः । हे गुणवति सौशील्यसौकुमार्यादिगुणसंपन्ने । ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं प्रागेभिर्वातैस्तवाङ्गं स्पृष्टं भवेद्यदि । किलेति संभावितमेतदिति बुद्ध्येत्यर्थः ॥ "वार्तासंभाव्ययोः किल" इत्यमरः ॥ मयालिङ्ग्यन्त आश्लिष्यन्ते ॥ अत्र वायूनां स्पृश्यत्वेऽप्यमूर्तत्वेनालिङ्गनायोगादालिङ्ग्यन्त इत्यभिधानम् । यक्षस्योन्मत्तत्वात्प्रलपितमित्यदोष इति वदन्निरुक्तकारः स्वयमेवोन्मत्तप्रलापीत्युपेक्षणीयः ॥

४७. संक्षिप्येतेति ॥ दीर्घा यामाः प्रहरा यस्यां सा दीर्घयामा । विरहवेदनया

46. Those *Himalyan* breezes, Oh accomplished one, which, suddenly breaking open the folded shoots of the *Devadaru* trees, blow in a southernly direction, rendered fragrant by the flow of their sap, are embraced by me thinking that perhaps they might have already touched thy body.

47. "How would the long-watched night be compressed into

46. B. M. एतत्° for ये तत्°.

47. M. G1. G2. K1. N. R. संक्षिप्यन्ते, M. संक्षिप्येव, M. संक्षिप्यैवम्, K2. M. संक्षिप्येरन् for संक्षिप्येत. P. W. K2. G1. R. N. M. G2. K1. क्षणमिव for क्षण इव. B. M. मया for कथं. G1. G2. M. N. K1. K2. दीर्घयामास्त्रियामाः for दीर्घयामा त्रियामा. K2. M. अहरपि च मे for अहरपि कथं. W. K1. M. G2. गाढोष्णाभिः for गाढोष्माभिः. C1. M. तद्वियोग° for त्वद्वियोग°.

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४८ ॥

तथा प्रतीयमानेत्यर्थः। त्रियामा रात्रिः ॥ "आद्यन्तयोरर्धयामयोर्दिनव्यवहारात्त्रियामा" इति क्षीरस्वामी ।। क्षण इव कथं केन प्रकारेण संक्षिप्येत लघूक्रियेत। अहरपि सर्वावस्थासु । सर्वकालेष्वित्यर्थः । मन्दमन्दो मन्दप्रकारः ॥ "प्रकारे गुणवचनस्य" इति द्विरुक्तिः । "कर्मधारयवदुत्तरेषु" इति कर्मधारयवद्भावात्सुपो लुक् ॥ मन्दमन्दातपमत्यल्पसंतापं कथं स्यात् । न स्यादेव । हे चटुलनयने चञ्चलाक्षि । इत्थमनेन प्रकारेण दुर्लभप्रार्थनमप्राप्यमनोरथं मे मम चेतो गाढोष्माभिरतितीव्राभिस्त्वद्वियोगव्यथाभिरशरणमनाथं कृतम् ॥

न च मदीयदुर्दशाश्रवणाद्भेतव्यमित्याह—

४८. नन्विति नन्विति एकं वाक्यं।तु शब्दो भेदकः।किं तु न भेतव्यमित्यर्थः।।अथवा नन्विति पाठः ॥ नन्वित्यामन्त्रणे।। "प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु" इत्यमरः ।। ननु प्रिये बहु विगणयञ्शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्यावर्तयन्नात्मानमात्मनैव स्वेनैव ।। "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इति तृतीया ॥ अवलम्बे धारयामि । यथाकथंचिज्जीवामीत्यर्थः । तत्तस्मात्कारणात् । हे कल्याणि सुभगे । त्वत्सौभाग्येनैव जीवामीति भावः ॥ "बह्वादिभ्यश्च" इति ङीष् ॥ त्वमपि नितरामत्यंतं

(i. e. so as to be like) a moment, how would the day also be of a very reduced heat in all its parts;" thus my heart, O trembling-eyed one, full of unattainable desires is rendered helpless by the very severe pangs of separation from thee.

48. But no (i. e. be not afraid). I building hopes (about the future in my mind) support myself by my own self; therefore thou also, O fortunate one, shouldst not harbour very great fear (about me). Whom does happiness invariably attend or misery invariably befall? (Man's) condition goes up and down with the course of the circumference of a wheel.

48. C1. C2. W. P. G1. M. ननु, M. N. G2. K1. K2. R. इति for न तु. W. G1. M. आत्मना नावलम्बे for आत्मनैवावलम्बे. C1. C2. W. B. G1. G2. N. M. K1. K2. R. सुतरां for नितरां. C1. C2. B. K1. K2. N. R. W. G1. G2. M. कस्यात्यन्तं for कस्यैकान्तं. W. G1. K2. M. उपगतं for उपनतं.

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ४९ ॥

कातरत्वं भीरुत्वं मा गमः मा गच्छ॥ "गमेर्माङि लुङ्" "न माङ्योगे" इत्यडागमाभावः ॥ तादृक्सुखिनोरावयोरीदृशि दुःखे कथं न बिभेमीत्याशङ्क्याह—कस्येति ॥ कस्य जनस्यैकान्तं नियतं सुखमुपनतं प्राप्तमेकान्ततो नियमेन दुःखं वोपनतम् । किं तु दशावस्था चक्रस्य रथाङ्गस्य नेमिस्तदन्तः ॥ "चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात्प्रधिः पुमान्" इत्यमरः ॥ तस्याः क्रमणे परिपाट्या ॥ "क्रमः शक्तौ परीपाट्याम्" इति विश्वः ॥ नीचैरध उपरि च गच्छति प्रवर्तते । एवं जन्तोः सुखदुःखे पर्यावर्तेते इत्यर्थः ॥

न च निरवधिकमेतद्दुःखमित्याह—

४९. शापान्त इति ॥ शार्ङ्गं नाम धनुः पाणौ स्थितं यस्य स तस्मिञ्शार्ङ्गपाणौ विष्णौ ॥ "सप्तमीविशेषणे—" इत्यादिना बहुव्रीहिः । प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः" इति वक्तव्यात्पाणिशब्दस्योत्तरनिपातः ॥ भुजगः शेष एव शयनं तस्मादुत्थिते सति मे शापान्तः शापावसानम् । भविष्यतीति शेषः । शेषानवशिष्टांश्चतुरो मासान् । मेघदर्शनप्रभृति हरिबोधनादिनान्तमित्यर्थः । दशदिवसाधिक्यं त्वत्र न विवक्षितमित्युक्तमेव । लोचने मीलयित्वा निमील्य गमय । धैर्येणातिवाहयेत्यर्थः । पश्चादनन्तरं त्वं चाहं चावाम् ॥ "त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" इत्येकशेषः ॥ "त्यदादीनां मिथो द्वन्द्वे यत्परं तच्छिष्यते" इत्यस्मदः शेषः ॥ विरहे गणितमेवमेवं करिष्यामीति मनस्यावर्तितम् । तं तम् ॥ वीप्सायां द्विरुक्तिः ॥ आत्मनोरावयोरभिलाषं मनोरथम् । परिणताः शरच्चन्द्रिका यासां तासु क्षपासु रात्रिषु ॥ निर्वेक्ष्यावो भोक्ष्यावहे ॥ विशतेर्लृट् ॥ "निर्वेशो भृतिभोगयोः" इत्यमरः ॥ अत्र कैश्चित् "नभोनभस्ययोरेव वा-

49. When the bearer of Shârnga (Vishnu) rises from his serpent bed, my curse will have its termination; pass the remaining four months by closing (thy) eyes (i. e. with fortitude). After that, we both will enjoy, during nights having the full autumnal moonlight, the manifold desires revolved (in mind) during separation.

49. P. M. मासानन्यान्, W. M. मासानेतान् for शेषान्मासान्. P. W. R. G1. G2. M. K1. K2. °गुणितं, M. N. °जनितं for °गणितं. P. M. एवाभिलाषं for आत्माभिलाषं.

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥५०॥

र्षिकत्वात्कथमाषाढादिचतुष्टयस्य वार्षिकत्वमुक्तमिति चोदयित्वतुर्त्रयपक्षाश्रयणादविरोधः " इति पर्यहारि तत्सर्वमसंगतम् । अत्र गतशेषाश्चत्वारो मासा इत्युक्तं कविना न तु ते वार्षिका इति । तस्मादनुक्तोपालम्भ एव । यच्च नाथेनोक्तम् " कथमाषाढादिचतुष्टयात्परं शरत्कालः " इति तत्राप्याकार्तिकसमाप्तेः शरत्कालानुवृत्तेः परिणतशरच्चन्द्रिकास्वित्युक्तम् । न तु तदैव शरत्प्रादुर्भाव उक्त इत्यविरोध एव ॥

संप्रति तस्या मेघे वञ्चकत्वशङ्कानिरासायातिगूढमभिज्ञानमुपदिशति—

५०. भूय इति ॥ हे अबले । भूयः पुनरप्याह । त्वद्भर्ता मन्मुखेनेति शेषः । मेघवचनमेतत् । किमित्यत आह—पुरा पूर्वम् । पुराशब्दश्चिरातीते ॥ "स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा " इत्यमरः ॥ शयने मे कण्ठलग्नापि त्वम् । गले बद्धस्य कथमपि गमनं न संभवेदिति भावः । निद्रां गत्वा किमपि । केन वा निमित्तेनेत्यर्थः । सस्वरं सशब्दम् । उच्चैरित्यर्थः । रुदती सती विप्रबुद्धा । आसीरिति शेषः । असकृद्बहुशः पृच्छतः । रोदनहेतुमिति शेषः । मे मम । हे कितव । त्वं कामपि रमयन्मया स्वप्ने दृष्ट इति त्वया सान्तर्हासं समन्दहासं यथातथा कथितं चेति । त्वद्भर्ता भूयश्चाहेति योजना ॥

---

50. And he says moreover " once thou, though attached to my neck on the bed, after falling asleep, didst awake crying aloud for some (unknown) reason; and with a suppressed laugh saidst to me, asking (thee for the reason) again and again, as follows:—"Thou rogue, I saw thee, in my dream, enjoying some other woman".

---

50. W. M. चापि, M. K1. K2. चासि, G2. R. M. चाहं for चाह. P. W. M. त्वमसि for त्वमपि. W. N. R. G1. G2. M. K1. सत्वरं, M. सस्वनं for सस्वरम्. P. पृच्छतोऽसि for पृच्छतश्च. K1. K2. M. कामिनीं कामपि त्वं for कामपि त्वं मयेति.

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५१ ॥

५१. एतस्मादिति ॥ एतस्मात्पूर्वोक्तात् । अभिज्ञायतेऽनेनेत्यभिज्ञानं लक्षणं तस्य दानात्प्रापणान्मां कुशलिनं क्षेमवन्तं विदित्वा ज्ञात्वा । हे असितनयने । कुले जनसमूहे भवात्कौलीनाल्लोकप्रवादात् । एतावता कालेन परासुर्नो चेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः । " स्यात्कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्वहिपक्षिणाम् " इत्यमरः ॥ मयि विषयेऽविश्वासिनी मरणशङ्किनी मा भून्न भव ॥ भवतेर्लुङ् । " न माङ्योगे " इत्यडागमप्रतिषेधः ॥ न च दीर्घकालविप्रकर्षात्पूर्वस्नेहनिवृत्तिराशङ्क्येत्याह—स्नेहानिति ॥ किमपि । किंचिन्निमित्तं न विद्यत इति शेषः । स्नेहान्प्रीतीर्विरहे सत्यन्योन्यविप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्वरानाहुः । तत्तथा न भवतीत्यभिप्रायः । किंतु ते स्नेहा अभोगाद्विरहे भोगाभावाद्धेतोः ॥ "प्रसज्य प्रतिषेधेऽपि" नञ्समास इष्यते । इष्टे वस्तुनि विषये । उपचितो रसः स्वादो येषु त उपचितरसाः सन्तः । प्रवृद्धतृष्णा इत्यर्थः ॥ "रसो गन्धरसे स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः" इति विश्वः ॥ प्रेमराशीभवन्ति । वियोगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः ॥ स्नेहप्रेम्णोरवस्थाभेदाद्भेदः । तदुक्तम्— " आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेमा ॥ रतिशृङ्गारौ योगे वियोगतो विप्रलम्भश्च " इति । तदेव स्फुटीकृतं रसाकरे—" प्रेमा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः ॥ रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रणयक्रिया ॥ तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम् ॥ शृङ्गारस्तत्समः क्रीडा संयोगः सप्तधा क्रमात् " इति ॥

इत्थं कुशलं संदिश्य तत्कुशलसंदेशानयनमिदानीं याचते—

51. Knowing me to be well from the giving of this token, do not, O dark-eyed one, be distrustful of me (i. e. of my existence) from an evil report; they say, (but) without any ground, that the affections die away during separation; but (the fact is that) they with their ardour intensified towards the desired object through non-attainment, become (i. e. develop into) a heap of love.

51. G1. M. चकित° for असित°. P. M. विरहे ह्रासिनस्तेऽप्यभोगात्, K2. M. विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोग्याः, W. M. विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्याः, M. विरहव्यापिनस्ते त्वभोगाः, M. विरहह्रासिनस्ते त्वभोगाः, M. N. G2. K1. K2. R. विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्, M. विरहध्वंसिनस्तेऽप्यभोगाः for विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्. W. M. K2. दृष्टे for इष्टे.

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ५२ ॥

५२. आश्वास्येति ॥ प्रथमविरहेणोदग्रशोकां तीव्रदुःखां ते सखीमेवं पूर्वोक्तरीत्याश्वास्योपजीव्य त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषेण वृषभेणोत्खाता अवदारिताः कूटाः शिखराणि यस्य तस्मात् ॥ " कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम् " इत्यमरः॥ शैलात्कैलासादाशु निवृत्तः सन्प्रत्यावृत्तः सन्साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्रहितं प्रेषितं कुशलं येषु तैस्तस्यास्त्वत्सख्या वचोभिर्ममापि प्रातःकुन्दप्रसवमिव शिथिलं दुर्बलं जीवितं धारयेथाः स्थापय ॥ प्रार्थनायां लिङ् ॥

संप्रति मेघस्य प्रार्थनाङ्गीकारं प्रश्नपूर्वकं कल्पयति—

---

52. After thus consoling thy friend (i. e. my wife) full of intense grief on account of separation (from me) for the first time, thou, returning from the mount (*Kailâsa*) with its summits dug up by the bull of the three-eyed God (*Siva*), should support my life also frail as the morning *Kunda* flower, with her words conveying (tidings of) her welfare together with a token.

---

52. P. W. M. एनां for एवं. P. M. प्रथमविरहे शोकदष्टां, W. N. M. K2. प्रथमविरहादुग्रशोकां, M. प्रथमविरहेणार्द्रशोकां for प्रथमविरहोदग्रशोकाम्. W. M. मे, M. स्वां G2. K1. R. M. तां for ते. P. तस्मादद्रेः, W. M. शैलादस्मात् for शैलादाशु. P. M. साभिज्ञानं for साभिज्ञान°. P. प्रहितवचनैस्तत्प्रयुक्तैः, M. प्रहितकुशलैस्त्वद्वचोभिः' M. अभिहितकुशलैस्तद्वचोभिः for प्रहितकुशलैस्तद्वचोभिः. W. M. त्रिणयन° for त्रिनयन°. M. °प्रसविसलिलं, G2. M. प्रसविशिथिलं for °प्रसवशिथिलं. P. धारयेदं for धारयेथाः.

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५३ ॥

५३. कच्चिदिति ॥ हे सौम्य साधो । इदं मे बन्धुकृत्यं बन्धुकार्यम् ॥ देवदत्तस्य गुरुकुलमितिवत्प्रयोगः ॥ व्यवसितं कच्चित्करिष्यामीति निश्चितं किम् ॥ "कच्चित्कामप्रवेदने" इत्यमरः ॥ अभिप्रायज्ञापनं कामप्रवेदनम् ॥ न च ते तूष्णींभावादङ्गीकारं शङ्के यतस्ते स एवोचित इत्याह—प्रत्यादेशात्करिष्यामि इति प्रतिवचनात् ॥ " उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः " इति शब्दार्णवे ॥ भवतस्तव धीरतां गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये खलु । तर्हि कथमङ्गीकारज्ञानं तत्राह—याचितः सन्निःशब्दोऽपि निर्गर्जितोऽपि । अप्रतिजानानोऽपीत्यन्यत्र । चातकेभ्यो जलं प्रदिशसि ददासि । युक्तं चैतदित्याह—हि यस्मात्सतां सत्पुरुषाणां प्रणयिषु याचकेषु विषय ईप्सितार्थक्रियैवापेक्षितार्थसंपादनमेव प्रत्युक्तं प्रतिवचनम् । क्रिया केवलमुत्तरमित्यर्थः ॥ " गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ॥ नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव " इति भावः ॥

संप्रति स्वापराधसमाधानपूर्वकं स्वकार्यस्यावश्यंकरणं प्रार्थयमानो मेघं विसृजति—

---

53. I hope, O gentle one, that thou hast undertaken this business of me thy friend; I, by no means, infer thy gravity from an affirmative answer (to my suit). Though silent, thou, when asked for, suppliest water to the *Châtaka* birds; for, the performance of the desired object, on the part of the noble, is of itself an answer to the supplicants.

---

53. M. प्रत्याख्यानात्, M. प्रत्याख्यानम्, M. K1. R. प्रत्याख्यातुम्, M. प्रत्यादिष्टे, M. प्रत्यादेशम्, K2. M. प्रत्यादेष्टुं for प्रत्यादेशात्. K1. R. M. अधीरतां for धीरतां. W. B. C1. C2. N. M. G2. K2. तर्कयामि for कल्पयामि. M. याचितं for याचितः.

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।
इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५४ ॥

५४. एतदिति ॥ हे जलद । सौहार्दात्सुहृद्भावाद्वा ॥ "हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च" इत्युभयपदवृद्धिः ॥ विधुरो वियुक्त इति हेतोः ॥ "विधुरं तु प्रविश्लेषे" इत्यमरः ॥ मयि विषयेऽनुक्रोशबुद्ध्या करुणाबुद्ध्या वा । आत्मनस्तव अनुचितं अननुरूपमपि मे प्रियं मम प्रियं मेतत्संदेशहरणं प्रार्थनात् कृत्वा प्रावृषा वर्षाभिः॥ "स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षाः" इत्यमरः॥ संभृतश्रीरुपचितशोभः सन् । इष्टान्स्वाभिलषितान्देशान्विचर । यथेष्टदेशेषु विहरेत्यर्थः॥ "देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्" इति वचनात्कर्मत्वम् ॥ एवं मद्वत्क्षणमपि स्वल्पकालमपि ते तव विद्युता । कलत्रेणेति शेषः । विप्रयोगो विरहो मा भून्मास्तु ॥ माङित्याशिषि लुङ् ॥ "अन्ते काव्यस्य नित्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमाम् ॥ सर्वत्र व्याप्यते विप्रान्नायकेच्छानुरूपिणीम्" इति सारस्वतालंकारे दर्शनात्काव्यान्ते नायकेच्छानुरूपोऽयमाशीर्वादः प्रयुक्त इत्यनुसंधेयम् ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासविरचिते मेघदूते काव्ये उत्तरमेघः समाप्तः ॥

---

54. Having, either for friendship's sake or out of a feeling of compassion for me because I am separated, done this good unworthy of (being done by) thee, because of my solicitation, roam about, O cloud, through (whatever) regions thou choosest with thy beauty heightened by the rainy season; and let there be no separation of this kind of thee from lightning (thy spouse) even for a moment.

---

54. W. M. प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसः, C1. C2. K1. M. प्रियमनुचितप्रार्थनावार्तिनः, G2. M. R. K2. प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्मनः, M. प्रियसमुचितं प्रार्थनादात्मनः, M. प्रियमनुचितं प्रार्थना वर्त्मनः, M. प्रियसमुचितं प्रार्थितं चेतसः, M. प्रियसमुचितं प्रार्थना चेतसः for प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनः. R. P. G2. M. K1. K2. विचर जलद for जलद विचर. P. क्षणमपि सखे, W. M, क्वचिदपि न ते, M. क्वचिदपि च ते for क्षणमपि च ते.

NOTES.

(I.) The first verse as Prof. Tilak observes like the one in *Kumârasambhava* introduces the subject of the poem at once (*i.e.*, without any benedictory stanza or preface) and it is certainly pedantic to refer for this to a *Sastra* which is surely based upon such examples as the present.

कश्चित् = अनिर्दिष्टनामा. *Sumativijayá* here notices an objection raised by some commentators on the ground that the omission of the name of the hero renders the poem faulty; and refutes the objection by quoting the following authority :—" भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातकाः । तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रस्यादौ विशेषतः ॥" On this we remark that the objection is trivial, since यक्ष is a sufficiently distinctive name and a further particularization of it will not, in our opinion, materially enhance the merits of the poem; and therefore does not deserve such an elaborate refutation as the one given above.

स्वाधिकारात् &c. The duty assigned to the *Yaksha* by *Kubera* was, according to *Sâroddhárinî, Vallabha, Sumativijaya* and other Jaina commentators, " that he should every day in the morning fetch fresh flowers from the lake *Mânasa* for his lord when he was to attend on *Siva*. But, unwilling to leave the embraces of his wife early in the morning, he one day, fetched the lotus-buds required for the next-day's worship during the night. When *Kubera* next morning began to worship *Siva* with those flowers he found one of his fingers severely bitten by a bee hidden in the folds of one of the buds. Enraged at this, *Kubera* cursed him for neglect of his duty." According to *Bharata, Sanátana, Râmanátha, Haragovinda,* and *Kalyânamalla* :—" he was Warder of the gate of *Kubera's* garden, and, quitting his post for a season, allowed *Indra's* elephant to commit a trespass, and trample down the flower-beds."

वर्षभोग्येण &c. This compound admits of another solution as :—वर्षेण भुज्यते वर्षभोग्यः " terminating at the end of the

year." It also admits of another interpretation, *viz.*, वर्षे 'तिर्यग्लोकवर्ति भारतं क्षेत्रं' तत्र भाग्य:="to be enjoyed at a sacred spot belonging to the *Bhârata* which is one of the nine divisions (वर्ष) of the then known world." *Sâro.*

यक्ष: &c. *Kshîrasvâmin* in his commentary on *Amara* derives the word as follows :—**यक्ष्यंते पूज्यन्ते इति यक्षा:। इ: कामदेवस्तस्येवाक्षिणी अस्येति यक्ष इत्यन्ये।** They form a class of certain demi-gods attendant on *Kubera*, the god of wealth. The word is derived from **यक्ष्** 'to worship'; either because they minister to *Kubera*, are reverenced themselves by men, or are beloved by the *Apasaras*, the courtezans of *Indra's* heaven. Wilson. *Bhagîratha*, cited and censured by a commentator on the *Amara*, derives the name from **जक्ष्** 'to eat' because he says they devour children :—**जक्षति खादन्ति शिशून् इति जक्षा:।**

जनकतनया &c. Allusion is here made to the ablutions performed by *Sitâ*, daughter of *Janaka*, during her stay on the mountain with her husband *Râma* and his brother *Lakshmana*. A peculiar sacredness, says *Sâro.*, is imparted to the waters of *Râmagiri* by their coming in contact with the body of *Sitâ*—a woman celebrated for her highest chastity.

स्निग्धच्छायातरुषु &c. *Sârodahârinî* explains this as follows:—छाया आतपाभावस्तया उपलक्षितास्तरवो वृक्षा येषु तथोक्तेषु। अथ वा। छाया शोभा तया उपलक्षितास्तरव:। यद्वा। छाया पंक्तिस्तस्यां तरव:। यद्वा। छाया दीनप्रतिपालनं तथाविधास्तरव:। अथ वा। स्निग्धा: अरुक्षा: सरसपल्लवोल्लासिनश्छायातरवो निश्चला: पादपा येषु तथोक्तेषु। अथ वा। पूर्वापरदिग्भागेऽपि सवितरि येषां छाया न परिवर्तते ते छायातरव उच्यन्ते। The last interpretation appears to be better than that of *Mallinâtha*, since it is more natural to understand **छायातरु** in the sense of shady trees in general than to restrict the word to a particular class of trees called **नमेरु**.

रामगिर्याश्रमेषु—रामगिरि lit. means 'the mountain of *Râma*', and may be applied to any one of those hills on which *Râma* resided during his banishment. *Mallinâtha* applies

this term to चित्रकूट, a mountain in Bundelakhand. It is true that this was the first mountain whereon *Râma* resided for some days during his journey to the South, and this fact might probably have led *Mallinâtha* and other expositors to fix this place as the locality of रामगिरि. Modern researches, however, determine the situation of the scene of the present poem to be in the vicinity of Nâgpoor. A glance at the route subsequently assigned by the *Yaksha* to the cloud will clearly show that *Râmagiri*, the starting point of the cloud's journey, must be below all the other places to be traversed during the journey. This requires that रामगिरि should be the modern रामटेक which is as mentioned above a hill situate near Nâgpoor. Its current name is रामटेंकडी, which, in the Marâthi language, has the same import as रामगिरि, the hill of *Râma*. This hill as Wilson says is covered with buildings consecrated to *Râma* and his associates, which receive the periodical visits of numerous and devout, pilgrims. *Sâro.* says :— रामगिरिर्दण्डकारण्ये प्रसिद्धः । And this appears to be correct though no definite place is given.

आश्रमेषु &c. The plural according to *Malli.* indicates the unsteady state of mind of the love-smitten *Yaksha* and hence the successive changes of hermitages. *Cf. Sâro.*

" वने रतिर्विरक्तस्याविरक्तस्य जने रतिः । अनवस्थितचित्तस्य न जने न वने रतिः ॥ "

(II) कनकवलयभ्रंश &c. *Sâro.* explains this as follows :— कामित्वादलंकरणधारित्वं । उक्तञ्च । " नाविदग्धः प्रियं ब्रूयान्नाकामी मण्डनप्रियः । निस्पृहो नाधिकारी स्यात्स्फुटवक्ता न वञ्चकः" *Cf.* " मणिबन्धनात्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते." *S'â.* III.

वप्रक्रीडा &c. The simile is very happy and is due to the fact that clouds often assume various fantastic forms like those of buffaloes, bulls, elephants, &c., when engaged in वप्रक्रीडा 'butting at a bank.' Thus, in *Purana Sarvasva*, clouds are described as:—महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गरूपिणः 'Shaped like buffaloes, boars, and wild elephants.' *Cf.* शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयां" *Ib.* I. 56. "शैलादाशु त्रिनयनवृ-

षोत्खातकूटान्निवृत:" *Ib.*II. 52. "निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु" *R.* V. 44. On वप्रक्रीडा &c. *Sâro.* has the following remark "इति मेघस्य सामर्थ्यं व्यज्यते। सौहार्दशालिना सामर्थ्येन च कार्यं सिध्यत इति भाव:"।

प्रथमदिवसे &c. Some commentators including *Vallabha* and others propose to read प्रशमदिवसे for प्रथमदिवसे. The argument they advance in support of their reading is that as the next verse mentions the proximity of श्रावण, and as प्रशमदिवसे is more in harmony with this proximity than प्रथमदिवसे, (the last day of आषाढ being obviously nearer to श्रावण, than the first day), the former should be preferred to the latter. *Mallinâtha*, however, rejects their new reading, as unnecessary and unreasonable. What is mentioned in the next verse is, he says, simple proximity, which can be had in the case of his reading too. For, is not the general proximity, he asks, between आषाढ and श्रावण an universally admitted fact? If it is so, it follows, he argues, that there must also be a general proximity between the first day of आषाढ and the month of श्रावण, since a part is included in the whole. Close proximity, being perfectly useless, is not at all required by the next verse. "But", says *Malli.*, "granting that the verse demands close proximity; the want of it cannot be urged as an objection against my reading particularly since it is common to your reading also. Does प्रशमदिवसे possess this close proximity? No; in order to bring it out, you must stretch the meaning of प्रशमदिवस to प्रशमदिवसान्तिमक्षण which you cannot do unless you have some special warrant for this arbitrary extension. And even supposing that you have such a warrant, your position is in no way improved, but on the contrary you incur the danger of running into an absurdity in as much as you are going to expect the appearance of a cloud in the sky exactly at the last second of the last day of आषाढ which no man would do, since there is no certainty that a cloud would make its appearance exactly at the time —nay—the second required by him."

प्रशमदिवस being thus shown to be without any reason *Mallinâtha* proceeds to vindicate his own reading by an argument which is not possible, he says, in the case of his opponent. The *Yaksha* seeing the approach of the rainy season—a season which is particularly hard for women in separation to bear—and anticipating her certain death in case no word of assurance and hope were sent to her without delay, fixes upon the first cloud that makes its appearance for his messenger. But this reasoning, being applicable to प्रथमदिवस only, fully vindicates the superiority of प्रथमदिवस over its rival.

The opponents of *Mallinâtha* here raise an objection against his reasoning, which is thus :—the anticipation of his wife's death on the part of the *Yaksha* and his consequent adoption of immediate measures for the prevention of the catastrophe at the earliest time possible imply an exercise of cool reasoning of which the *Yaksha*, intoxicated with love as he is, is wholly incapable. *Mallinâtha* flatters their argument by acquiescence and tries to sink them yet deeper in absurdity."By continuing your chain of reasoning," he says, "it would follow that the *Yaksha* being maddened by love was not in a condition even to think of adopting any measure at all, whether early or late, in anticipation of the impending evil and thus not in a condition to send the cloud as a messenger to his wife. This reasoning, displaying as it does a great critical acumen, explodes the very foundation upon which the fabric of the poem is constructed and renders the poet a fool, and therefore deserves condemnation and not approbation. What can be said of men who are so ignorant as not to know that the duty of a commentator is to explain, not to stultify his author ?"

Being foiled in this manner the commentators raise another objection against his reading by charging it with the fault of inconsistency. In उत्तरमेघ the *Yaksha* happens to say in the 49th verse that the period of his curse is to terminate on the 11th of कार्तिक when god *Vishnu* is to wake from his sleep and calculates that there are only four

months remaining to the completion of that period.But if we count,say they,the days from प्रथमदिवस to the 11th of *Kârtika* we get10days in addition to the period of4months calculated by the *Yaksha* in that verse. Thus the reading [illegible] is found to be inconsistent with the calculation made by *Yaksha* in that verse. *Mallinâtha* admits the inconsistency but retorts that this inconsistency instead of being lessened or removed is greatly magnified in the case of his opponents in so far as 20 days are found to be wanting to the completion of the period of 4 months even if be accepted प्रशमदिवस and calculation begin therefrom. *Mallinâtha,* however, attempts to palliate the charge of inconsistency by remarking that the difference of 10 days is a trifling difference and that मासचतुष्टय should not be understood in such a strict sense as to preclude the inclusion of 10 additional days within the period it denotes. Thus प्रथम is shown to be decidedly better than प्रशम. We have at the risk of being tautologous reproduced this whole discussion although it is given in *Mallinâth's* commentary, with a view to draw the attention of the student to the passage and to enable him to understand it as being a fair specimen of the style generally employed in Sanskrit polemics. *Mahimasinhagani, Sumativijaya* and other expositors also give प्रथमदिवसे but interpret it as follows :—प्रथं—जगद्विख्यातं विस्तीर्णं वा—अः कृष्णो विष्णुर्वा तस्य दिवसे कार्तिक्येकादश्यामित्यर्थः।The reason they give for this interpretation is that it obviates the objection of inconsistency which *Mallinâtha* could only palliate but could not remove. We admire the ingenuity of the commentators here, but discard their interpretation as quite artificial. The interpretation of *Mallinâtha* is natural and one which suggests itself at the very first sight. Besides we do not remember to have ever met with the use of obscure monosyllabic words made by *Kálidása* in any of his well-known works.

(III) कौतुकाधान &c. *Sâroddhárini, Vallabha, Sumativijaya, Lakshminivâsa, Bharata, Sanâtana, Râmanâtha, Haragovinda, Kalyânamalla, Wilson* and other eight Jaina

expositors read केतकाधान &c. and explain it as:—केतकाधान-हेतोः केतकगर्भारोपणकारणस्य (अथ वा केतकीकुसुमोत्पादननिदानस्य) केतकपुष्पगन्धो हि विरहिणामत्यन्तदुःसह इति प्रियाप्राणबाधाचिन्ताहेतुः। 'the cause of the birth of *Ketaka* flowers which excites longing.' We reject this reading, however, for the following reason :—*Kâlidâsa* wants to describe the effect produced by the appearance of the cloud upon the mind of the *Yaksha* as is evident from the last two lines of the verse; now the epithet कौतुकाधान &c. expresses this effect more directly than केतकाधान &c. and therefore is to be preferred.

अन्तर्बाष्प &c. *Sâro.* has the following remark on this—"एतेन पुरुषत्वाद्धैर्यं प्रतिपाद्यते."

मेघालोके &c. The commencement of the rainy season being peculiarly delightful in India, from the contrast it affords to the sultry weather immediately preceding, it, and the refreshing sensations it excites, becomes, to the lover and the poet, the source of love and tenderness. *Cf.* "एतेन पुनर्निर्वृतानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनानर्थाधीनो भविष्यति." *Vi.* IV.

किंपुनर्दूरसंस्थे &c. For the effect of the rain-cloud and its friends the peacock, the *Kadamba*-flower, thunder, and the plantain flower on lovers separated from their wives, compare :—"एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम्। नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्॥ पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्। गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि॥ आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः। विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः"॥ *R.* XIII.

(IV) प्रत्यासन्ने नभसि &c. *Cf.* The *Subhâshita*, as given by *Sâro.* "शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे। स्फुरति जातिलता कुसुमाकरे॥ अहह! पांथ! न जीवति ते प्रिया। नभसि मासि न यासि गृहं यदि"॥

नभसि &c. The reading मनसि for नभसि of *Nâtha*, noticed and refuted by *Mallinâtha*, is also open to another fault

that it renders the epithet प्रीतः in the fourth line superfluous.

जीवितालंबनार्थी &c. The motive of the act of sending tidings is more directly expressed by the reading जीवितालंवनार्थम्—an adverbial compound—than the adjectival compound जीवितालंबनार्थां or जीवितालंबनार्थी. *Bharata* has the following comments on "जीवितालंबनार्थां":—दयितायाः प्रियायाः जीवितस्य प्राणधारणस्य आलम्बनमवष्टम्भः स्थैर्यमर्थः प्रयोजनं यस्यास्तादृशीम् । कदाचित् श्रावणस्य प्रबलविरहपीडादायित्वात् प्राणांस्त्यक्ष्यतीत्याशंक्य विरहिण्याः कान्तवार्ताश्रवणस्य प्राणधारकत्वात् स्ववार्ता प्रस्थाप्यत इति भावः ।

कल्पितार्घाय &c. The *Argha* generally comprises the following eight articles:—"आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः । यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्तितम्"॥ In the आचारदर्श of *Sridatta*, in a passage quoted from the देवीपुराण, they are stated somewhat differently as, "रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः । सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः"। If any of these be not procurable they may be supplied by the imagination:—"अभावे दधिदूर्वादेर्मानसं वा प्रकल्पयेत्," and thus in the present case a few flowers only have been offered to the cloud.

कुटजकुसुमैः &c. *Cf.* 'कुसुमितकुटजेषु काननेषु' *Ghatakarpara*. 13.

प्रत्यग्रैः &c. On this *Sâro.* says 'आर्तवत्वान्मनोहरैः । आर्तवैर्हि कुसुमैर्देवतातिथिपूजनं कर्तव्यमिति'।

(V) सलिलमरुतां &c. मरुत् (from मृ) is said by some to be from an obsolete root मर् 'to shine'; fanciful etymologies are given by Sanskrit authors; मा रुदः 'do not cry' according to the legend told in *Rámáyana* I. 46. 20, *Harivansa* 249; according to the *Nirukta* XI. 13 the *Maruts* are so called because they are मितराविणो महद्द्रवन्तीति वा. सलिलं—the older form सरिरं—from सल् connected with root सृ 1 *conj.P.* 'to go, to move rapidly.'

क—क &c. This is an example of विषमालंकार, as noticed by *Mallinâtha* which consists in a statement of incongruity

between two facts. *Cf.* 'क रुजा हृदयप्रमाथिनी क च ते विश्वसनीयमायुधं' *Mal.* III. 'क बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं। क च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते' ॥ *Sa.* I. 'क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः' *R.* I. 2.

पटुकरणैः &c. *Vallabha* explains this as follows:—चतुरेन्द्रियैर्मानवैर्न तु निर्बुद्धिभिः &c. which seems better. पटुकरणैः 'with able limbs'—limbs that work intelligently.— with प्राणिभिः means intelligent beings. *Cf.* "तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः। कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे। प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनं। दौत्यं कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मणं पक्ष्मलाक्षी" *Padánka-Duta.* 3.

गुह्यकः &c. *Kshirasvámin* explains this word as follows:— गुह्यकाः निधिपाला मणिभद्रादयः गूहन्तीति.' *Rayamukuta* derives this word as:— "गुह्यं कुत्सितं कायति। कै गै रै शब्दे आतोऽनुपसर्गे इति कः। गुह्यको मणिभद्रादिः। एते च निधिरक्षका यक्षभेदाः। तथा च "निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः' इति व्याडिः"। *Sáro.* and others say:— "गुह्यं कायति जल्पति गुह्यकः" and add that it is साभिप्राय. But it is surely far-fetched.

ययाचे &c. *Cf.* "न तस्या दोषोऽयं यदिह विहगं प्रार्थितवती." *Hansadutta.* 8.

प्रकृतिकृपणा. &c.This expression and *Mallinatha's* commentary thereon admits of another interpretation, viz. "naturally disposed to lament," which equally suits the context. *Sumati.* comments on this as follows:—" प्रकृत्या स्वभावेन कृपणाः विकलाः चेतनाचेतनस्वभावपरिज्ञानविकलाः भवन्तीत्यर्थः." The reading प्रकृति &c. is certainly better than प्रणयकृपणाः &c. On this the *Sáro.* has the following remark:— "नैव पश्यति जात्यन्धः कामान्धो नैव पश्यति। न पश्यति मदोन्मत्तस्त्वर्थी दोषो न पश्यति। दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोधनात्। मत्तः प्रमत्त उन्मत्तो जातिक्रुद्धो बुभुक्षितः। त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च याचकः" ॥

(VI) पुष्करावर्तकानां &c. 'Of diluvian clouds' which are thus described in the ब्रह्मांडपुराण and the पुराणसर्वस्व :—"पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः। पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह विश्रुताः॥ नानारूपधरास्ते तु महाधीरस्वनास्तथा। कल्पांतवृष्टिकर्तारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः"॥ *Cf.*— "दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्तभिन्नाः। छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्त्तकाद्यैः पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे" *Ve.* III. *Saro.* and others derive it as follows :— पुष्करं पानीयं आवर्तयन्ति. From what is said above पुष्करावर्त्तक appears to be one name while *Malli* takes the word as two distinct names of the cloud-race.

प्रकृतिपुरुषं मघोनः &c. *Indra* is in mythology known as the god of rain, and as clouds distribute rain to every part of the world they are rightly called here "the chief officers of *Indra* or the right hand of *Indra*." The appellative मघवत्, used in the original, is considered, by Etymologists, as irregularly derived from the passive form of मह्, 'to adore,' 'to worship.' Thus *Ráyamukáta* says :—मह्यते मह् पूजायां। श्वन्नुक्षन् पूषन्—इत्यादिना कनिनि मघवन्निति निपातितः. see *Pa.* VI. 4. 128.

This verse is an example of प्रेयोलंकार, a figure, when one pays a compliment to another in order to serve one's object. The object here is to induce the cloud to take the message to *Alaká*.

याच्ञामोघा &c. :—This is a sentiment of rather an original strain, and indicates considerable elevation of mind. Wilson. *Cf* " इत्याश्वासादभिमतविधौ कामये त्वां नियोक्तुं न्यस्तः साधीयासि सफलतामर्थभारो हि धत्ते" ॥ *Uddhavasandesa.* 4.

"अतोऽहं दुःखार्ता शरणमबला त्वां गतवती न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्विफलताम्". *Hansadúta.* 9.

(VII) अलका &c. *Kshirasvámin* derives this word as follows :—" अलत्यलका। अल भूषणे क्षिपकादित्वादित्वाभावः " *Ráyamukuta* derives it as अलति भूषयति अलका. It is the capital of the

Lord of the *Yakshas* and is situated on the mount *Kailása* a snowy peak of the *Himálaya.* It is also the residence of his dependent deities.

हराशिरश्चन्द्रिका &c. *Siva* represented as the friend of *Kubera* may occasionally visit *Alaká* and is therefore rightly said to reside in his outer-garden. The name of this garden is वैभ्राज. But according to *Sáro.* "कलौसोपवनं चैत्राख्यं." *Cf.* " वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया । बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति " ॥ *Ib.* II. 10 " नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः " ॥ *Ib.* II. 3.

यक्षेश्वराणां &c. *Sáro.* and others say:— "पूज्यत्वे बहुवचनम्".

(VIII) **उद्गृहीतालकान्ताः** &c. In connection with this the *Sáro.* quotes the following :—" **क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका** " ॥ This gives the reason why their hair were in a dishevelled state.

प्रत्ययादाश्वसत्यः &c. *Sáro.*, *Su.* and other commentators explain this as '**निश्चयात्स्थिरीभवंत्यः**' 'calmed by assurance,' which is also possible.

सन्नद्धे &c. *Sáro.* says :— "**प्रकाटितसुरधनुतडिल्लतागार्जितादिसामग्रीके,**" which conveys the sense of equipment previous to bestirment.

According to *Saro.* this verse is an example of **व्यतिरेकालंकार** which is thus defined :—"**उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः** " *Kávya.* X.

On the anxiety and apprehension felt by lovers at the approach of rain-cloud. &c. *Cf.*:—नवजलधरः संनद्धोयं न दृप्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम् । अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरंपरा कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी." *Vi.* IV. 1.

(IX) Some manuscripts read this verse after " **तां चावश्यं** &c." The order of *Malli* here seems to be objectionable for the following reasons :—

(*a*) *Mallináth's* interpretation of this verse is unsatisfactory; for (1) यथा in the sense given ; renders अनुकूल:

superfluous; (2) नूनं loses all its propriety and force; (3) the sequence of tenses is not kept up, as नदति and नुदति are present, while सेविष्यन्ते is future; (4) one more च is necessary in the third or fourth line to connect the third omen with the first two. All these objections are removed if यथा be taken in its usual sense of 'as.' The first two lines will then form antecedent sentences and the latter two a subsequent one; 'नूनं' receives its force, since, as the *Yaksha* would say, occurrence of the first two omens is a sure guarantee that the third will follow.

(*b*) The mention in the eighth verse of the incidental service to be rendered by the cloud on his way to *Alaká* must be immediately followed by that of the main end for which the journey is to be undertaken. This we gain by reading "तांश्चावश्यं &c." after "त्वामारूढं &c." and not by *Mallinátha's* order.

(*c*) The particles च and अवश्यं are rendered by *Mallinátha's* order superfluous and unmeaning which is never found in *Kálidása's* poems.

(*d*) This verse mentions omens auspicious for the journey, a subject which appears disconnected when the verse precedes "तांश्चावश्यं &c." But coming after it, it appears to be well-connected with "कर्तुं यच्च &c." the subject of which is akin to that of "मन्दं मन्दं &c."

(*e*) This order is warranted by पार्श्वाभ्युदय which we consider to be a higher authority in this matter than *Mallinátha* for reasons given in the preface to this edition.

The order given by some commentators, who read "तांश्चावश्यं &c." after "कर्तुं यच्च &c." is also objectionable though not to the same extent as that of *Mallinátha* for the reasons given above.

अनुकूलः &c. *Sáro.* and others explain this as:—"पृष्ठानुगामी मृदुगतिश्चानुकूलोऽभिधीयते."

वामः &c. On the auspiciousnessof *Chátaka's* movement on the

left, *Bharatamalla* quotes the following :—'बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसंगिताः खगाः । मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पद्बलप्रदाः ॥' *Sâro.* and other commentators have :—'ग्रामं वामसमायुक्ता भोज्ये भोगप्रदायिनः । हृष्टास्तुष्टिं प्रयच्छंति प्रयातुर्मृगपक्षिणः'॥

चातक: &c. The *châtaka* is a bird supposed to drink only rain water; of course he always makes a prominent figure in the description of wet or cloudy weather. Thus in the rainy season of our author's ऋतुसंहारः—'तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः । प्रयाचितास्तोयभरावलम्बिनः । प्रयान्ति मन्दं नववारिधारिणो । बलाहकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः' ॥

सगन्धः &c. *Sâro.*, *Lakshmi.*, *Mahim.*, *Su.*, *Bha.*, *Saná.*, *Râm.*, *Har.*, *Wilson* and others read सगर्वः सहर्षः or सोत्साहः(जललाभात्). *Malli.* notices another sense here; सगन्धः = संबंधी, which is also possible as there is remarkable kinship between the cloud and *châtaka.* Compare on the use of the word in the same sense "तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि । सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति । द्वावप्यत्रारण्यकाविति" । *Śa.* V.; *Val.* and *Kalyá* read चातकस्तोयगृध्नुः 'wishing for water'.

गर्भाधानक्षणपरिचयात् &c. Here according to *Su* and *Sâro.* गर्भाधानावसरे क्षणपरिचयात् क्षणमात्र परिचयः संगमः तस्मात्. The meaning of क्षण given by *Malli.* is not as natural as that given above. *Sâro.* says 'गर्भाधानक्षणपरिचयाद् गर्भग्रहणावसरात् त्वदीयगर्जितश्रवणेन तासां गर्भः समुत्पद्यते;' and further it says, 'गर्भाधानं हि महिलानां महानुत्सवः । यत्समागमे महोत्सवो भवति को नाम तस्य सेवां न कुर्यादिति.' *Bh*, *Saná.*, *Râm.*, *Har.*, *Wilson.* and some MSS. read गर्भाधानक्षमपरिचयं and explain it as—'गर्भस्य आधाने आरोपणे क्षमः समर्थः परिचयः सम्बन्धो यस्य तादृशम्.' The rainy season, says Wilson, is that of their gestation; which explains their attachment to the cloud, and the allusion to its impregnating faculty mentioned in the text of the original.

आबद्धमालाः &c. *Sâro.* says :—'पयोदकाले स्वभावादेव बलाकाः श्रेणीभूता भवन्ति'.

बलाकाः &c. Is said to mean a small crane. The word is always feminine, and perhaps therefore means the female bird only. Indeed, some of the commentators on this poem call it the female of the बक (बकपत्न्यः).

The periodical journeys and orderly flight of this kind of bird, observes Wilson, have long furnished classical poetry with embellishment. *Sâro.*, *Su.* and others explain this as follows :—'यथा बलाकाः नवयौवनाः स्त्रियःआनन्ददायिकं पुरुषं खे एकान्ते सेवन्ते। बलेन यौवनमदेन अंकांति कुटिलं गच्छंति * * * कथं भूतास्ताः।आबद्धमालाः परिहतपुष्पस्रजः' ।

(X.) तञ्च &c. *Malli.* omits च in his commentary, probably because he could not explain its propriety in the order of verses followed by him. But in the order preferred by us, it is perfectly appropriate as it connects the main good with the incidental one to be accomplished by the cloud's journey.

दिवसगणनातत्परां &c. *Sâro.*, *Val.*, *Su.* and other commentators explain this as :—'मदीयपत्युर्देशान्तरगतस्य एतावन्ति दिनानि बभूवुः। एतावद्भिर्दिवसैः पुनरेव समागमो भविष्यतीति दिवसगणना.'

भ्रातृजायाम् &c. *Sâro.* explains this as follows:—'भ्रातृजाया हि मातुः तुल्या भवति तथा च लक्ष्मणेनापि उक्तं रामायणे । "नाभिजानामि केयूरे नाभिजानामि कुण्डले नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्."'

आशाबन्धः &c. *Cf.* "आशातंतुर्न च कथयतात्यंतमुच्छेदनीयः । प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः" *Mâlati.* A. 9. also *Cf.* "आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धम्।" *Uddhavasandesa.* 83.

(XI.) कर्तुं यच्च &c. On the omission of this च by *Malli.* see notes on the 9th and 10th verses.

उच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां &c. *Sâro.*, *Lakshmi.*, *Mahim.*, *Su.*, *Val.*, *Bha.*, *Râm.*, *Har.*, *Kalyâ.*, and other MSS. read उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् and explain it as :—"उद्गतानि शिलीन्ध्राणि भूमिस्फोटा एव आतपत्राणि यस्यां सा तथा ताम् । उक्तं च अनेकार्थे । "छत्राके वृक्षजातौ

च शिलीन्ध्रं स्मर्यते बुधैः "। आतपशब्दस्य महाविभूतिसूचकत्वा- त्पृथिव्याः सर्वशस्यसंपत्तिजनकत्वं व्यनक्ति।"

मानसोत्काः &c. The *Mânasa* lake is situated on mount *Kailâsa*. *Cf.* "कैलासशिखरे राम मनसा निर्मितं सरः। ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तदभून्मानसं सरः"। *Râmây.* The lake मानस in the Himâlayas. In the वायुपुराण it is stated that when the ocean fell from heaven upon Mount Meru, it ran four times round the mountain, then it divided into four rivers which ran down the mountain and formed four great lakes, अरुणोद on the east, शीतोद on the west, महाभद्र on the north, and मानस on the south. According to the mythological account, the river Ganges flows out of it, but in reality no river issues from this lake, though the river Satlej flows from another and larger lake called रावणह्रद, which lies close to the west of मानस. But it lies as Wilson says, between the mountain Himâlaya and the Kailâsa, a lofty range running parallel with and on the north of that mount. It is the favourite haunt of flamingoes (राजहंसाः) at the beginning of the rainy season. *Sâro.* says:—"ते हि सजलमेघोदयभीरुत्वात्कलुषितसलिलाशयाः सन्तः सुखवशेनालकायाः मानसं प्रति यान्ति"। "Those birds finding in the rocks bordering on the lake an agreeable and safe asylum, when the swell of the rivers in the rains and the inundation of the plains conceal their usual food." Moorcroft's Journey to मानससरोवर, Asiatic Researches, XII. 466.

आ कैलासात् &c. *Kshirasvâmin* derives this word as:—"केलयोर्जलभूम्योरास्ते के लसनमस्य वा केलासः स्फटिकं तस्यायं स्फाटिकोऽद्रिः"। *Râyamukuta* derives it as follows:—"केलीनां समूहः कैलं। अण्। तेनास्यतेऽत्र कैलासः। आस उपवेशने। हलश्चेत्याधिकरणे घञ्। यद्वा। केलिः प्रयोजनमस्य कैलः आस्यतेऽत्रेत्यासः कैलश्चासावासश्चेति। कृष्णसर्पवन्नित्यसमासः। कं जलमिला भूमिः केलयोर्जलभूम्योरास्ते। के जले लासो लसनमस्येति वा केलासः स्फटिकस्तस्यायं कैलासोऽद्रिरिति तु स्वामी"। Kailása is the name of a mountain in the Himálayas, north of the मानस lake. Siva

paradise is said to be on Mount Kailàsa, so also is Kubera's abode. It is called also गणपर्वत and रजताद्रि, 'silver mountain.' Kailása, as it here appears, says Wilson, a part of the Himálaya range,is in fable a mountain of costly gems or of crystal, the site of *Kubera's* capital, and the favourite haunt of Siva. He quotes the following account from Baldæus—The residence of ईश्वर is upon the silver mount कैलास, to the south of the famous mountain महामेरु being a most delicious place, planted with all sorts of trees that bear fruit all the year round. The roses and other flowers send forth a most odoriferous scent; and the pond at the foot of the mount is enclosed with pleasant walks of trees, that afford an agreeable shade; whilst the peacocks and divers other birds entertain the ear with their harmonious noise, as the beautiful women do the eyes. The circumjacent woods are inhabited by a certain people called *Munis*, or *Risis*, who avoiding the conversation of others, spend their time in offering daily sacrifices to their God. It is observable, that though these Pagans are generally black themselves, they do represent their *Riśis*, to be of a fair complexion, with long white beards, and long garments hanging cross-ways, from about the neck down over the breast. They are in such high esteem among them, that they believe whom they bless are blessed, and whom they curse are cursed. Within the mountain lives another generation called यक्ष, and किन्नर, and इन्द्र, who are free from all trouble, and spend their days in continual contemplation, praises and prayers to. God. Round about the mountain stand seven ladders, by which you ascend to a spacious plain, in the middle whereof is a bell of silver and a square table, surrounded with nine precious stones of divers colours: upon this table lies a silver rose, called *Tamarrapua* (?), which contains two women as bright and fair as a pearl: one is called Brigasiri (?), i.e. 'The lady of the mouth; the other Tarasiri (?) i.e. The lady of the tongue': because they praise God with the mouth and tongue. In the centre of this rose is the triangle of शिवलिंग; which, they say, is the permanent residence of God."

बिसकिसलयच्छेद० &c. *Cf.* "पश्चात्सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं पाथेयमुत्सृज बिसं ग्रहणाय भूयः" । *Vi.* iv. 15. " मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसां । कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितं " । *Vi.* iv. 14. " यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः " । II. 16. " हंसपंक्तिरपि नाथ संप्रति प्रस्थिता वियति मानसं प्रति" । *Ghatakarpara*, 9.

श्रवणसुभगं गर्जितं &c. *Cf.* "बलाहकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः" । *Rit.* Rainy season. 3.

(XII.) अमुं शैलं &c. This mountain must be *Râmagiri* that stands a short distance north of Nàgapur, and not *Chitrakûta* given by *Malli. Vide* note on (1).

तुंगं &c. *Sâro.* explains this as:—"तुंगं महोन्नतं अत एव गमनसमये प्रश्नोपपत्तिः" ।

भवतो यस्य संयोगमेत्य &c. *Su.* and a few others differ from *Malli.* in connecting the word संयोग with यस्य and भवतः with स्नेहव्यक्तिः. But this interpretation is not satisfactory, as hot tears would more naturally proceed from the mountain than from the cloud. *Cf. Val.* "पर्वता हि जलदवृष्ट्या स्निग्धा भवन्ति बाष्पं च मुञ्चन्ति" ।

मुञ्चतो बाष्पमुष्णं &c. *Sâro.*, *Mahim.*, *Lakshmi.*, and *Su.* have the following remark on this:—" अन्योऽपि यः किल चिरविरहदुःखितो भवति स तत्संयोगे सति उष्णं बाष्पमुञ्चति" ।

(XIII.) मार्गं तावत् &c. :—We now begin, says Wilson, the geographical part of the poem; which as far as it can be made out through the difference of ancient and modern appellations seems to be very accurately conceived. The two extreme points of the cloud's progress are, the vicinity of Nàgpore, as mentioned in the note on verse 1, and the mountain *Kailâsa*, or rather the Himâlaya range. During this course, the poet notices some of the most celebrated places, with the greater number of which we are still acquainted. In the first instance, we have here his direction due north from the mountain of *Rámagiri*; and we shall notice the other points as they occur.

श्रोत्रपेयं &c. The reading of *Pársvábhyudaya* here is श्रव्यबन्धं

"an arrangement of words fit to be heard by (i.e., pleasing to) the ears." *Val.* says:—"पानविश्रामौ हि सुतरामुपयुज्येत पथि"। So also *Sáro.*

शिखरिषु &c. *Sáro.* explains this as:—"शिखरिषु व्यक्तिग्रहणार्थं बहुवचनं। शिखरिणि शिखरिणि पादौ आरोप्य विश्राम्येत्यर्थः"।

खिन्नः खिन्नः &c. *Sáro.* says:—"अन्योऽपि पथिकः खिन्नः सन् वृक्षेषु पदावस्थानं विधत्ते"। Mark शिखरिषु पर्वतेषु वृक्षेषु as explained by *Sáro.* and *Mahim.*

परिलघु &c. *Mahim.* and a few others explain this as:—"अन्योऽपि यः क्षीणो भवति तस्य परिलघ्वेव पयः दातुमुचितं"। See *Mallinátha's* commentary on the same.

(XIV.) सिद्धांगनाभिः &c. *Kshirasvámin* derives and explains सिद्धाः as:—सिध्यन्तीति सिद्धाः। प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यविश्वावसुप्रभृतयश्च। *Ráyamukuta* derives and explains this as:—सिधु हिंसासंराध्योः। गत्यर्थकर्मकेत्यादिना कर्त्तरि क्तः। सिद्धोऽणिमादिगुणोपेतो विश्वावसुप्रभृतिः। *i.e.*—The semi-divine beings supposed to be of great purity and holiness, and are said to be specially characterised by the eight supernatural faculties (which are:—"अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता"॥) *Siddhas* tenant the upper regions of the air. *Su.* says:—सिद्धाः=विद्याधराः.

मुग्ध० &c. *Val.* explains this as:— "मुग्धा षोडशवार्षिकी· A pretty young maiden of sixteen."

चकितचकितं &c. *Cf.* "पश्यन्तीनां चकितचकितं—" *Uddhavasandesa.* 32.

दिङ्नागानां &c. The elephants said to be presiding over the eight quarters of the world. They are:—"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः"॥

The plural here, says *Sáro.*, indicates that the cloud is to proceed straight to the north abandoning all other directions. Also *Cf.* "नदत्याकाशगंगायाः श्रोतस्युद्दामदिग्गजे"। *R.* I. 62. See *Vallabha's* comments on the same.

दृष्टोत्साहः &c. *Val.*, *Bha.*, *Saná.*, *Ráma.*. *Hara.*, *Kalyá*

Wilson and others read दृष्टोच्छ्रायः and explain it as:—"दृष्ट उच्छ्रायः उन्नतिर्यस्य तादृशः"।

सरसनिचुलाद् &c. *Sâro.* and a few others quote here:—"नदीतीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे जलाशये । आरामेष्वथ कूपादौ दृष्टं बन्धुं विसर्जयेत्"॥ and remark that the cloud should take leave of his बन्धु, the mountain at this सरस (सजल) place. *Cf.* "शार्ङ्गरवः—भगवन्नोदकान्तात्स्निग्धो जनोऽनुगंतव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरं। अत्र संदिश्य प्रतिगंतुमर्हसि। काश्यपः—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः"। *Sa.* A IV. *Val.* says:—इति प्रावृड्वर्णनम्.

हस्तावलेपान् &c. *Su.* and a few oth ers explain:—'अवलेपान्—स्पर्शान् i.e. 'contact.' On the contact of the cloud with the trunks of the quarterelephants. *Cf.* "मेघा वाय्वाभिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि" ॥ also, "तेजोऽर्कः सर्वभूतेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलं" ॥ also, "मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यंजयन्त्युत" ॥ also, "पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवास्तुषारवृष्टिं वर्षन्ति हिमं सस्यविवृद्धये" ॥ also "हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितं। दद्याद्घनाय तद्दद्याद्वातेन प्रेरितो घनः ॥ स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितं" ॥ *Cf.* "तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी। त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः" ॥

Mallinátha suggests another implied sense of this verse, probably based on traditions current in his time or on information he had gathered about it. In brief it runs thus:—

"With thy vigour marked with admiration by the celebrated poets and women there, who have their faces raised up in doubt whether the glory of the mighty दिङ्नागाचार्य is being obscured by thee, rise triumphant, O muse, from this abode of the poet *Nichula* who has obviated the objections raised against thee, warding off the attacks of दिङ्नागाचार्य (i.e. my adversary) on the road of the *Sárasvata.*"

For our remarks on this allusion to दिङ्नाग and निचुल", *Vide* preface.

Mahim. omits this verse as well as the 15th and 16th.

(XV.) रत्नछायाव्यतिकर &c. Here पार्श्वाभ्युदय reads रत्नच्छायव्य-

तिकर &c. This is grammatically more correct, as छाया assumes the form of छाय in the Tatpurusha compound.

पुरस्तात् &c. *Sáro.*, *Su.* and others say that:—"पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि". But *Malli.* does not sanction it.

वल्मीकाग्रात् &c. The theories of the rainbow given by *Varáhamihira* are:—(*1*) सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे । वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ (2) केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥ *Sáro.* and *Bha.* say:—(3) इंद्रचापं किल वल्मीकांतर्व्यवस्थितमहानागाशिरोमणिकिरणसमूहात्समुत्पद्यते । वासुकिफणामणिगणद्युतिर्वल्मीकरन्ध्रान्निःसृत्य नभसि मेघे शक्रधनुराकारमापद्यत इत्यागमः ।

Mallinátha may have the 2nd or 3rd of these in his mind in interpreting वल्मीकाग्र as:—"the top of an anthill." The following are the senses of वल्मीकाग्र given by *Sáro.*, *Val.*, *Saná.*, *Rám.*, *Bha.*, *Hara.*, *Kalyâ.*, and others:—

वल्मीकाग्रात्–रामगिरिशृंगात् (वामलूरे गिरेः शृंगे वल्मीकपदमिष्यते इति शब्दार्णवः)*Saná.* (2.) वल्मीकाग्रात्–सूर्यात् (वल्मीकः सातपो मेघो । वल्मीकः सूर्य इत्यपि इति कोशान्तरं) *Rám.*, *Val.*, *Sáro.*, *&c.* (3.) वल्मीकाग्रात्=सातपमेघाग्रात्. (*Vide* above) *Bha.* But these senses are very doubtful as they are not found in any dictionary.

गोपवेशस्य विष्णोः &c, This seems to be an allusion made by *Kâlidása* to the *Puránas of Bhágavata* and *Harivansa*. *Cf.* यथा बर्हवरूपस्य हरेः प्रसरत्कान्तिना पिच्छेन वपुः कान्तिमाप्तवत् । गोपा हि प्रायेण शरवन्मयूरपिच्छधारिणः । *Val.*; गोपाला हि प्रायशो मयूरपिच्छैराभरणानि कुर्वन्तीत्यागमः । *Su.*; गोपालाः किल केलिकलितचेतसः केकिपिच्छं परिच्छेदमाद्रियन्ते एतावता चित्रचापधारिणः इन्द्रस्य बर्हिधारिणः कृष्णस्य च तुलां प्राप्स्यन्ते इति व्यज्यते । *Sáro. Cf.* "चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशं प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम्" ॥ *Gitagovinda.* 3.

(XVI.) भ्रूविकारानभिज्ञैः &c. *Sáro.*, *Val.*, *Su.*, and others explain this as:— "ग्राम्यत्वाद्" भ्रूविभ्रमाचतुरैः न तु प्रीतेरभावात् ।

त्वय्यायत्तं कृषिफलं &c. Rain is the cause of husbandry which is the chief sustenance of the people of the country. Hence their women are said in the next line to look upon the cloud with great affection.

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रं &c. Here *Pársvàbhyudaya, Val., Kalyá.,* Wilson and others read सुरभिक्षेत्रं taking the whole compound as an adjective to माल. *Bha., Saná., Rám.,* and *Hara.* take सद्यःसीरोत्कषणसुरभि as an adjective qualifying the noun माल. They also differ from *Mallinátha.*

Pro. Isvarachandra favours this reading and thus criticises *Mallinátha's* interpretation of this expression:—
सद्यःसीरोत्कषणसुरभीत्यस्य क्रियाविशेषणत्वं न संगच्छते क्रियाविशेषणत्वांगीकारे सद्यःशीरोत्कषणेन सौरभं संपाद्येत्यर्थः प्रतिपद्यते तथात्वे चोत्कषणक्रियाकर्तृत्वं मेघे कल्पनीयं मेघस्य तु तत्कर्तृत्वं न संभवति । On this criticism we remark that by taking सुरभि as an adverb the cloud, no doubt, becomes the cause of the tilling and the fragrance of the ground. But that he should be the cause does not, however, necessarily require that he should himself till the ground; he is the cause in so far as he indicates the season when farmers should cultivate the soil. Again, his reading, too, is objectionable, for if सुरभि be taken as an adjective, it would mean that the ground is fragrant before the fall of rain while the fact is that the fragrance is the joint product of the tilling of the ground and the sprinkling of it with drops of rain-water.

Val. has the following remark on this:—"हलोत्कृष्टा हि भूर्जलदकणव्यतिकरात्सुरभिर्भवति." *Kalyá.* also has the same:—"सद्यःसीरोत्खात हि भूमिरभिनवजलबिंदुसिक्ता सुरभिगन्धा भवतीति भावः."

मालं &c. *Malli.* takes *Mála* to be the name of an elevated hilly spot. But other commentators interprete it in the following ways:—मालं—क्षेत्रसमूहं । मालाख्यं देशं वा । वनभूमिं वा *Sáro.*; मालं—मालाख्यं देशं । "मालं देशे वनेऽप्युक्तं मालं ग्रामान्तराटवी । मालं मालवदेशे च वसतेर्भूमिरुर्ध्वका ।" *Su.*; मालं—मालमुद्दारं क्षेत्रं । *Val.*; मालं—ग्रामान्तराटवी । *Lakshmi.*; मालं—ग्रामान्तराटवी । मालाभिधानं देशमारुह्य । *Meghalatá*; मालं—वनभूमिं

Avachuri.; मालं—मालवदेशमारुह्य। *Avachuri.* This district lies west and south-west of Bengal. Wilson, however, takes *Mála* to be the name of a town called *Malda,* a little to the north of *Rattanapur,* the chief town of the northern half of the province of *Chhatisagada.*

किञ्चित्पश्चात् &c. This is interpreted otherwise as follows:—" किंचिन्गनाक् पश्चात्पश्चिमभागाश्रितं मालं आरुह्य= ascending *Mála* situated a little westward." *Sáro.*
किंचिन्पनागारुह्य पश्चादनंतरं उत्तरेण व्रज—"ascend (Mâla) a little then go to the north."

But as *Malli.* has given no direct reason why the cloud should turn to the west, we may be allowed to take "किंचित्पश्चात् in the sense of " after a little while."

व्रज लघुगतिः &c. *vl.* प्रवलय गतिं—गतिं प्रवलय व्यावर्त्तय । मालं हि दक्षिणाशास्थं तेन चोत्तराशा गंतव्येति गतिप्रवलनं. *Val.*

भूय एवोत्तरेण &c. *Sàro., Bha., Saná., Rám.,* Wilson and others read:— " किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिः किंचिदेवोत्तरेण, " and explain it as :—'लघुगतिः शीघ्रगतिः सन् किंचिदपित्पश्चात्पश्चिमेन किंचिदुत्तरेण व्रज गमिष्यसि । *Bha.*'

Mahima. omits this verse.

लोचनैः पीयमानः &c. *Cf.* " अमुं युवानं । दृशा पपुस्ताः सुदृशः समस्ताः । " *Nai.* VIII. 1. " चक्रे शक्रादिनेत्राणां स्मरः पीतनलश्रियाम्" । *Nai.* XVII.18. " तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यः । " *Ku.* VII. 64.

(XVII.) आम्रकूटः &c. This must be the mountain now known as *Amarakantaka* from which the *Narmadá* and other rivers spring and which form the eastern part of the *Vindhya* mountain. The word आम्रकूट signifies :—" the mountain with its summits abounding with mango trees." (See the next verse). But *Sáro.* and others interpret आम्रकूट as:—"आम्राणां कूटो राशिर्यत्र सः. A mountain which is densely covered over with mango trees."

अध्वश्रमपरिगतं &c. *Sáro.* remarks on this as:—"अनेन विश्रामशनाईत्वमुक्तं." For the last two lines of this verse *Mahim.* reads last

two of the verse (1.) given in the appendix and for the first two lines of this, *Val.* reads the first two lines of the verse (1.) in the appendix.

मासे मित्रे &c. *Cf.* "आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु चान्यासु । उपकृदपकृदपि च तयोर्यस्तं पुरुषं परं मन्ये." *Pan.*I. 336.

(XVIII.) काननाम्रै: &c. *Sáro.* explains this as:—'अरण्यचूतवृक्षैः। यद्वा । काननरूपतां प्राप्तैः आम्रैः आ समन्ताद्वर्णैरित्यर्थः ' ।

स्निग्धवेणीसवर्णे &c. *Sáro.*, *Su.*, and others explain 'स्निग्ध' as कान्तिमत् shining, brilliant.'

अमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां &c. On this *Sáro.*, *Mahim.*, and others thus remark:—

'तर्हि मिथुनमिति कथमुक्तं । यतो न किंचित्तथाविधं स्त्रीणां स्तनदर्शने कौतुकं संभवति । सत्यं स्तनैकत्वेन तासामपि प्रेक्षाकौतुकमुपपन्नमेव' ।

For a mountain spoken of as the breast of the earth, *Cf.* 'स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ' । *R.* IV. 51.

(XIX.) तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः &c. " जलदा हि सलिलदानेन शीघ्रं गच्छन्तीति प्रसिद्धं"। *Val.*

रेवां &c: This is another name of the *Narmadá,* one of the holy rivers of India. From *Amracuta* where this river has its source, on the same spot with the *Sone* and *Hatsu* to the gulf of *Cambay*, where it disembogues itself into the sea, the channel of the *Narmadá* is confined by a range of hills, or by a tract of elevated ground, in which numerous rivers take their rise; and by their subsequent course towards the *Sone* and *Jamna* on one side, and towards the *Tapti* and *Oodaver* on the other, they, says Wilson, sufficiently indicate the superior elevation of that tract through which the *Narmada* has forced its way. नर्मदा rises in one of the Vindya mountains called आम्रकूट or more commonly अमरकंटक in the province of गोंडवन, and after a westerly course of about 800 miles falls into the sea below Broach. *Sáro.*, *Mahim.* and others have the following annotation on this:—" गंगास्नानेन यत्पुण्यं तद्रेवादर्शनेन च ॥ यथा गंगा तथा रेवा तथा देवी सरस्वती ॥ समं पुण्यफलं प्रोक्तं स्नानादर्शनचिन्तनैः" ॥

विन्ध्यपादे &c. This is one of a class of seven mountains which are supposed to exist in each division of the continent; their names are :—'महेंद्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः । विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः' ॥ विन्ध्य or वन्ध्य as most of the commentators read, constitutes the limit between upper India and the Deccan. The most ancient Arian writers, as Wilson says, assign it as the southern boundary of the region which they denominate आर्यभूमि or आर्यावर्त. Modern authors, in like manner, make this the line which discriminates the northern from the southern nations of India. It reaches almost from the eastern to the western sea; and the highest part of the range deviates little from the line of the tropic. The mountainous tract, however, which retains the appellation, spreads much more widely: it meets the Ganges in several places towards the north; and the *Godávari* is held to be its southern limit. Sanskrit etymologists deduce its name from a circumstance to which we have just now alluded: it is called वन्ध्य, says the author of a commentary on the *Amara*, because the people think (ध्यायन्ति) the progress of the sun is obstructed by it. Suitably to this notion, the most elevated ridge of this tropical range of mountains is found to run from a point that lies between *Chhota Nagpore* and *Palamu*, to another that is situated in the vicinity of Ougein. According to a legend, the Vindhya mountain, being jealous of the mount *Meru* (or Himalaya) demanded that the sun should revolve round himself as about *Meru*, which the sun declined to do; whereupon the *Vindhya* began to rise higher and higher so as to obstruct the path of the sun and moon. The gods being alarmed sought the aid of the sage *Agastya*, who approached the mountain and requested that by bending down he would give him an easy passage to the south and that he would retain the same position till his return. This *Vindhya* consented to do (because according to one account, he regarded *Agastya* as his teacher); but *Agastya* never returned from the south, and *Vindhya* never attained the height of *Meru*.

विशीर्णा &c. For the river whose stream is obstructed by rocks

occurring in its way. *Cf.* 'नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासंकटस्खलितवेगः। विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणीभवति' ॥ *Vi.* III. 8.

(XX.) तिक्तैः &c. *Malli.* notices another sense of तिक्त=कषाय, 'pungent, bitter'. So do *Sa'ro.* and others.

जंबूकुंजप्रतिहतरयं &c. *Sa'ro.* has the following remark on this:—अनेन कषायतोयोपपत्तिः अथवा प्रवाहस्थिरत्वकथनं.

अन्तःसारं &c. Here *Su.* and others take सारं='water.'

तुलयितुं &c. *Sa'ro.* and others say:—तुलयितुं=आन्दोलयितुं. *Su.* says, पराभवं कर्तुं and *Val.* says:—परिच्छेत्तुं.

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय &c. *Su., Val., Mahim.* and *Sa'ro.* explains this line as: सर्वोऽपि यः कोऽपि रिक्तः क्षीणविभवः स लघुरनादरणीयः पूर्णता गौरवाय समृद्धिरादरार्थं सर्वस्य भवतीति । उक्तं च । "गुणयुक्तोऽप्यधो याति कूपरिक्तो घटो यथा । गुणहीनोऽपि संपूर्णो जनैः शिरसि धार्यते"। गुo = Rope, The vessel with a rope goes do[wn] for bring[ing] wat[er]

(XXI.) नीपं, कन्दलीः, &c. The blossoming of the *Kadambas* and the budding of *Kandalis* accompany the advent of the rainy season. *Cf.*–'आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः। विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः.' *R.* XIII. 29. 'आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकंदलीसलिलगर्भैः। कोपादंतर्बाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः' ॥ *Vi.* IV. 5. 'सीमंते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनां.' *Me.* II. 2. 'अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः.' *R.* XIX. 37.

जग्ध्वारण्येषु &c. Here *Pârsvâ., Sâro., Lakshmi., Mahim., Su., Val., Bha., Sanâ., Hara., Râm., Wilson.*, and fourteen other MSS. read दग्धारण्येषु. *Malli.* notices this but from the way in which he explains it he does not appear to attach any importance to it. The reading which he prefers here is, however, faulty for the following reasons:—(I) Sanskrit idiom requires either the addition or the omission of one च, as there are three gerunds here to be connected. (2) The word अधिक in अधिकसुरभि has no propriety. (3) The gerund जग्ध्वा occurring in the second half of the verse is rather remote from its object कंदलीः which is in the first half. All these objections are obviated by adopting the reading दग्धारण्येषु. (1) Then only two gerunds remain in the verse and they are joined by that च which comes after आघ्राय. The first च serves to connect नीपं with कन्दलीः both of which are the objects of दृष्ट्वा. (2) The forest ground is made more fragrant by the burning of the forest, and thus अधिक gains propriety. (3) The gerund जग्ध्वा being abandoned no room is left for the third objection.

साराङ्गाः &c. *Sâro., Mahim., Lakshmi., Su,* and others derive this

as:—सारं मधुरं गायन्तीति सारंगा भ्रमराः । सारं शीघ्रं गच्छन्तीति सारंगा हरिणाः । सारं सलीलं गच्छन्तीति सारंगा गजाः । सारं जलं याचन्ते इति सारंगाश्चातकाः । *Malli.* takes the word to mean elephants or antelopes. The mention of the former in connection with *Kadamba* trees and fragrant forest grounds is frequently found in *Kâlidâsa's* works; while this word is often used by the author in the latter sense. *Sâro.* interprets the word as *Châtakas* for this reason:—भूचारिणां वारणहरिणानां गगनचारिणो मेघस्य मार्गोपदेशकथनमयुक्तमित्यादि. But it is not satisfactory as the *Châtakas* are mentioned in the very next verse which (by the bye) he does not consider as an interpolation. *Su.* interprets it as peacocks; but no lexicons in our possession give this sense of the word and the mention of peacocks being made in verse 23rd is tautologous here.

गंधमाघ्राय चोर्व्याः—सारंगाः &c. *Cf.* " करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां । शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलं " । *R.* III. 3.

जललवमुचः &c. The reading नवजलमुचः for this, is more appropriate as the phenomena described here are usually the effects of new rain-drops.

(XXII.) अम्भोबिन्दु° &c. This verse is rightly regarded by *Mallinâtha* as an interpolation, because it contains no new idea. All the ideas given here have already occurred in the previous verses. (*vide* 9,14, &c.). It is also omitted in *Pârsvâ.* and by *Vallabha,* C1. and M.

सिद्धाः &c. See note on verse 14.

°संभ्रमालिंगितानि &c. *Cf.* " सपदि वारिधरारवभीरवः । प्रणयिनः परिरब्धुमथांगना । ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः । " *Si.* VI. 38.

सोत्कण्ठानि &c. On this *Sâro.* and *Mahima.* have the following remark:— " अन्यमनस्कानां सिद्धानां त्वदीयगर्जितमाकर्ण्य संजातसंभ्रमाणां वल्लभवनितानां चाटुशतदुर्लभान्यपि स्वयंग्रहाश्लेषसुभगानि गाढोपगूढानि अकस्मादयत्नसाध्यानि भविष्यन्तीति " ।

(XXIII.) मत्प्रियार्थः &c. This admits of a double interpretation given in *Sâro* as well as by *Mahima.*; which is as follows:—"मद्भीष्टकार्यसाधनार्थं—अस्मत्प्रियासंदेशकथनार्थं वा " ।

ककुभसुरभौ &c. On this *Sâro.* has the following annotation:—"वर्षधर्मवर्णनद्वारेण शिखरिणो रमणीयता कथिता " ।

शुक्लापांगैः &c. The wild peacock is, as Wilson says, exceedingly abundant in many parts of India, and is especially found in marshy places. The habits of this bird are, in a great measure, acquatic; and the setting in of the rains is the season in which they pair. The peacock is therefore always introduced in the description of cloudy or rainy weather, together with the cranes and Châtakas,

whom we have already had occasion to notice. *Cf.* " नवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति मेघागमे कुन्दसमानदन्ति " । *Ghatakarpara.* " शिखिकुलकलकका एव रम्या वनान्ताः । सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति " ॥ *Bhartrihari.*

सजलनयनैः &c. " सजलनयनत्वमत्र चिरेण मित्रालोकनात्. " *Val.* " चिरकालेन सुहृदालोकनाद्बाष्पवारितनेत्रैः । एतदेव सखित्वं यच्चिरेण सुहृद्दृष्टेन बाष्पाविर्भावो भवति. " *Mahima.* After this stanza G2. reads "अम्भोबिन्दु &c. "

(XXIV.) केतकैः सूचिभिन्नैः &c. On this *Sâro.* has the following annotation:— " सूचिलक्षणसंघातेभ्यः स्फुटितैः विकसितैः अनेन तेषां खण्डमण्डितत्वमुक्तं " । *Mahima.* and others say:— सूचिभिन्नैः=क्षुद्रकण्टकव्याप्तैः । *Val.* says:— सूच्या गर्भे कण्टकेन भिन्नैर्विदारितैः । तेषां ह्यन्तस्थां सूचिं भित्त्वा विनिर्यान्ति । *Su.* says:—अर्धविकसितैः । *Cf.* " प्रतिभान्त्यद्य वनानि केतकानां " । *Ghatakarpara.* 15.

गृहबलिभुजां &c. *Malli.* takes this to mean 'crows and other domestic birds. ' *Su.* and *Mahima.* explain it thus:— " गृहं कलत्रं तदानीतं बलिं भुंजत इति बकाश्चटका वा=cranes aud sparrows. " *Sâro.* explains it as:— " गृहबलिभुजां = चटकादीनां । यद्वा । गृहेषु बलिभुजः काकास्ते बकोट इत्यपि केषांचित्संमतं । एतेन अहिंसाजनिताभिरामाणां प्रतिपादनं " ॥ The birds mentioned, as Wilson says, in the text by the epithet गृहबलिभुज are the cranes. The term signifies, " who eats the food of his female; " गृह m. commonly a house, meaning, in this compound, a wife. At the season of pairing, it is said the female of this bird assists in feeding the male; and the same circumstance is stated with respect to the crow and the sparrow, whence the same epithet is applied to them also. On this we remark that the word गृह may by synecdoche, mean गृहिणी= " the lady of the house, " but whether the word गृहिणी may with propriety be applied to a female-crane is very doubtful.

°वनान्ताः &c. *Malli.* explains अन्त as रम्य ' lovely ' and supports it by quoting शब्दार्णव. But the natural sense of अन्त 'border or region,' suits here better and the word (as compounded with वन) is generally used by Kâlidása in this sense; *Cf.* "वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात्"।"सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते" । *R.* II. 10. 58." विरचति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः " । *Ri.* I. 22. "भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते " । *Ri.* I. 26. "नवसलिलनिषेकाच्छान्ततापो वनान्तः" । *Ri.* II. 24. Besides *Mallina'tha's* interpretation is open to the fault of violation of symmetry. *Sâro.* explains अन्त as मध्य. *Su.* and *Mahima.* explain this as अग्रभाग and further on they say, " वा अन्तशब्दः स्वरूपवाचकः " । वर्षाकृतौ हि जम्बूवनानि अत्यन्तश्यामानि दृश्यन्ते । *Val.* has

the following annotation on this, he says:—“कण्यंगानीव हि जम्बूफलानि पाकेन श्यामायन्ते ” । *Lakshmi.* says:—“जम्बूवनान्ता जाम्बूवनप्रदेशाः.”

Val., *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, Wilson and others read:—फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ताः and explain as:— “ फलानां परिणत्या पाकेन श्यामाः कृष्णा जम्बूवनान्ताः जम्बूवनानि यत्र ते तथा ” । *Cf.* “ फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंजस्खलिततनुतरंगामुत्तरेण स्रवन्तीं ” ॥ *Mal.* IX.

°चैत्याः &c. According to *Sâro.*, *Mâhima.*, *Su.*, and others:—पूज्यपादपाः पिप्पलादयो देवतायतनानि वा and further on they say, “ चैत्यं बुद्धाण्डजेऽप्युक्तं देवतायतने तथा ” । ग्रामेषु हि प्रतिगृहं प्रांगणे पिप्पलप्रभृतयः पूजार्थं लोकैरारोप्यन्ते । On this *Vallabha's* annotations are:— ”चैत्यं बुद्धालयः । यदि वा महाभोगप्रज्ञातनभोवनस्पतिश्चैत्यः । *Lakshmi.* has the following:— “ °चैत्याः पूजिता वृक्षा जिनगृहाणि वा येषु ते ” । *Meghalata* and other Jaina *Avachuris* have the above interpretation for this. The word चैत्य is derived from चिता or चित्या “ the funeral ground or place; ” it is an old custom among the Hindus to bury *Sanyâsins* on a river-side by the foot-path or road and to plant a पिप्पल or वट tree on their graves. Round these trees they build a raised square of stones with a small temple of Siva or Hanumân. It is generally known in Marathi as, पिंपळाचा पार or वडाचा पार. And hence चैत्य means ‘a sacred tree’, ‘a religious fig tree, &c’., growing in a village or near it, and held in veneration by the villagers. A number of trees, as Pro. Wilson observes, receive particular veneration from the Hindus; as the Indian fig, the holy fig-tree, the Myrobalan trees, &c. In most villages there is at least one of these, which is considered particularly sacred, and is carefully kept and watered by the villagers, is hung occasionally with garlands, and receives the प्रणाम or veneratory inclination of the head, or even offerings and libations.

संपत्स्यन्ते &c. *Sâro.* says, संपत्तिभाजो भविष्यन्ति.

कतिपयदिन &c. ‘For some days, &c’. because as *Sâro.* and *Mahima.* say:—ते हि तूर्णं प्रतिष्ठासवोऽपि सुखवासलालसास्त्रिचतुरान्वासरान्विलम्बमाना मानसं प्रति प्रयान्ति, यावदम्भोधरः प्रसृतनारन्ध्रजलधाराधोरणीभिरभिनवजलान्यानयति तावत्तत्र हंसावस्थानं युज्यते । ‘For a few days, only, &c.,’ because *Val.* and *Su.* say:— जलमालिन्यात्—मेघालोके मेघभयाद्वा ते मानसं गच्छन्ति.

दशार्णाः &c. *Bharata* and other commentators derive this word as, दशन् ten’, ’ and ऋणं ‘a strong-hold’, meaning ‘the district of the ten citadels’. दशार्ण is the name of a country lying south-east of मध्यदेश in the centre of Hindusthâna. In the स्मृति of Manu, the position of Madhyades'a is described as:—“ हिमवद्विंध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः. ” *Manu.* II. 21. दशार्णा is the

name of a river rising in the Vindhya hills, the ancient Dosarene. It may correspond, as Pro. Wilson says, with the modern district of *Chhatisagada*. This country is the eastern part of *Mâlvâ*. It is watered by many rivers, *Vetravati* being the fore-most of them.

(XXV.) °विदिशालक्षणां &c. *Vidis'â* is described here as the capital of the district of *Das'ârna*. It appears, as Wilson says, to be the modern Bhilasâ in the province of Mâlvâ. It is situated on the river *Vetravati* (See below). On this *Sâro.* has the following annotation:—" यदि वा विदिशाभिधाना धुनी प्रसिद्धा सैव लक्षणं अभिज्ञानं यस्यास्तां तथोक्तां पुरोवर्तिनीं" । *Su.* quotes here a passage from शब्दार्णव. He says:- " प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते " ।

यत्तत् &c. Here *Pârsvâ.* and a few others read यत्र and it is preferable as it makes the last sentence adjectival to the first.

वेत्रवत्याः &c. This river is the modern *Betwâ.* It rises, as Pro. Wilson says, on the north side of the *Vindhya* chain and pursuing a north-easterly course of 340 miles, traverses the province of Mâlvâ and the south-west corner of Allahabad, and falls into the Yamunâ below Kalpee. In the early part of its course, it passes through Bhilsâ or *Vidis'â.*

मुखमिव &c. On this *Sa'ro.* has the following remark:—"यथा कश्चित्कामी केषांचिद्देशानां राजधानीं गत्वा सद्यो नृपवरै रक्षितायाः कस्याश्चित्कामिन्या रसनेन्द्रियप्रह्लादकारं भ्रूविलासभंगुरं मुखकमलस्याविरतं चुम्बनं विधाय कामिभावस्य भुजगताया अविकलं पूर्णं फलं लभते." *Su.* has:-"यथा कामिन्या मुखं कामी सभ्रूभंगं सशीत्कारं पिबति तथा त्वमपीत्यन्वयः. " *Vallabha's* annotations are:— कामी हि कामिन्याः कुटिलभ्रूवक्त्रं स्वादु पिबति." *Mahima.* :—has "यथान्योऽपि धन्यो विलासी कामी भवति स वेत्रवत्या नायिकायाः कामिन्या मुखं पिबति. Another has:— अन्योऽपि यः किल कामी कस्याश्चित्कामिन्या मुखं पिबति स खलु मणितध्वनितमुखरकण्ठो भवति."

°स्तनितसुभगं &c. On this *Sâro.* has the following remark:— "अन्तर्मध्ये यत्स्तनितं रतिकूजितं तेन सुभगं मनोज्ञं." *Val.* has:— " स्तनितेन पक्षिकूजितेन स्खलितेन वा सुभगं सुंदरं. " *Su.* has:— " नदीतीरोपान्तस्खलितं हि पानीयं सशब्दं भवति &c. *Cf.* " तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुंजीभूतकृतयुगानुकारिणी त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्" । *Kâ.* I.

(XXVI.) नीचैराख्यं &c. *Nichais* is the name of a mountain near *Vidis'â* so called from its being of little elevation. *Cf.* *Sâro.*, *Su.*, and others:-खर्वनामानं-वामनगिरिं-खर्वाभिधानं &c. On this *Val.* has the following annotation:— " आख्यया नीचं स्वरूपतस्तूच्चमिति भावः".

विश्रामहेतोः &c. On this *Val.* has the following remark:— "विश्रामशब्दः कवीनां प्रमादजः".

°रतिपरिमलोद्गारिभिः &c. On this *Val.* gives the following quotation :— " सुरते स्यात्परिमलः" इति वैजयन्ती. But *Sâro.* has:— "तद्भूपलिप्तचन्दनार्द्रविमर्दोत्थहृद्यगन्धस्तमुद्गिरन्ति."

पुलकितमिव &c. On this *Sâro.* has the following remark:–"अन्यस्यापि सुहृदालिंगनेन पुलककलिका समुत्पद्यते." The erection of the hairs of the body is, says Wilson, with the Hindus, constantly supposed to be the effect of pleasure or delight.

(XXVII.) वननदी &c. There is, as *Sâro.* says, a river of this name in *Mâlvâ*. *Cf.* " अथ वा मालवदेशे यूथिकाखण्डमण्डितोद्यानमालिततीरदेशा वननदी नाम्नी सरिदस्तीति. " *Mallina'tha*, however, takes the word वननदी to signify the name of ' many forest rivers.' The other readings of the name of this river noticed by *Val.*, *Lakshmi.*, *Su.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Mahima.* and other Jaina *Avachuries* are नगनदी and नवनदी. The former may have been the name of a river west of the Betwa which, as Wilson says, is now known as the *Parvatî*. Both these names bear a similar import and may therefore be the synonyms of the same stream.

वननदीतीरजातानि सिञ्चन् &c. *Pa'rs'vâ.* reads वननदीतीरजानां निषिञ्चन् which seems better as the locality of the *Udyânas* is thereby made more definite.

यूथिकाजालकानि &c. *Sâro.* paraphrases this by मालतीकदम्बानि and further on it remarks, " तानि स्थलजलसिक्तानि स्फुटन्ति। अमुना संभोगयोग्यस्थानकथनं. "

क्षणपरिचितः &c. On this *Sâro.* has the following annotation, "आतपप्रतिषेधात्क्षणप्रणयी. *Val.* has:—सुहृत्तापापहारात्.

पुष्पलाव्यः = पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः = मालाकारांगनाः। The use of garlands, says Wilson, in the decoration of the houses and temples of the Hindus, and of flowers in their offerings and festivals, furnishes employment to a particular tribe or caste, the *Mâlâkâras* or wreath-makers. The females of this class are here alluded to. *Cf.* in Marathi " माळिणी. "

(XXVIII.) उज्जयिन्याः &c. This was the capital of the country called *Avantis*. It has been the place of great note from the earliest period of Hindu tradition down to the present day. It is supposed to have been the residence of our poet and the capital of his celebrated patron, the *Harshavikramâditya*. It has many other names as विशाला, अवन्ती, अवन्तिका and पुष्पकरण्डिनी. It is also one of the seven sacred cities of the Hindûs, and the first meridian of their geographers, from which they calculate longitude; the modern उज्जयिनी is about a mile south of the ancient city. Hwen Thsang describes

the capital of *U-she-yen-na*, or उज्जयिनी, as 30 *li*, or 5 miles, in circuit, which is only a little less than its size at the present day. The kingdom was 6000 *li*, or 1000 miles, in circuit. To the west it was bounded by the kingdom of *Mâlvâ*, with its capital of धारानगर, or धार, within 50 miles of उज्जयिनी. The territory of Ujain, observes Cunningham, could not therefore have extended westward beyond the Chambal river, but to the north it must have been bounded by the kingdoms of मथुरा and जझोती; to the east by महेश्वरपुर, and to the south by the Sâtapudâ mountains running between the Narmadâ and the Tapti. Within these limits, that is from Ranthambhâwar and Barhânapur on the west, to Dumoh and Seoni on the east, the circuit of the territory assigned to Ujain is about 900 miles. The kingdom of उज्जयिनी was under the rule of a Brahmana Râja, like the two neighbouring states of जझोती and महेश्वरपुर; but the king of Jajhoti was a Buddhist, while the other two kings were Brahmanists.

सौधोत्संग° &c. On this *Sa'ro.*, *Mahima.* and other Jaina commentators have the following explanation; they say, " सौधानां सुधाधवलितसद्मनां " &c.

पौरांगनानां &c. *Sa'ro.* says, " पौर्यश्च ताः अंगनाश्च तासां विदग्धवनितानां. "

वंचितोऽसि &c. Here *Pârsvâ.* reads " वंचितः स्याः " which is equally good. On this *Sâro.* and others have the following illustration, " सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया। यस्य न द्रवते चित्तं स वै मुक्तोऽथवा पशुः" ॥

Bha., *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, *Kalyâ.* and others explain it by adding, " of the object of your life." That is, if you have not seen these beauties, you might as well have been blind, or not have existed at all.

(XXIX.) निर्विन्ध्यायाः &c. This must be the name of one of the small rivers that flows between the *Parvati* and the *Siprâ* mentioned below. It springs from the Vindhya mountain and flows northward. *Val.* derives this word as:— निर्गता विन्ध्यादिति निर्विन्ध्या. *Malli.* says, निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या. On this *Sâro.* has the following annotation, " यथा कश्चित्कामी निर्विन्ध्यायाः सफलप्रार्थनाया नायिकाया रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य शृंगाररहस्यमुपभुज्य मार्गे गच्छति। अन्यापि या किल कामिनी कस्मिन्नपि कामुके बद्धाभिलाषा भवति सा तद्दर्शनात्क्षोभस्तनितकाञ्चीगुणा स्यात् स्खलितललितं च संसर्पति आवर्तोपलक्षितां नाभिं दर्शयति। उत्तमस्त्रीणां हि नाभेर्दर्शनं दक्षिणावर्तः प्रशस्यते। कामुकोऽपि तस्याः प्रकाशितस्वचेष्टितसानुरागाया रसोऽनुरागस्तस्याभ्यन्तरः रहसं सन्निपतति संश्रयति संभोगसर्वस्वमुपभुंक्ते इत्यर्थः। तथा चोक्तं। "आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च। नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः " इति। *Su.* has " स्त्रियो हि सुरतसंभोगाभिलाषं विभ्रमैरेवाविर्भावयन्ति न च वचनमात्रेण

वदन्तीति भावः "। *Val.* has the following:— " अत्र चावर्तनाभिदर्शनादिको विलासः प्रवृत्त एव। स च नायिकया नद्या नायके मेघे कृतमिति सर्वमनवद्यम्." *Mahima.* explains as, "अन्यापि कामिनी किल कस्मिंश्चित्कामिनि बद्धाभिलाषा भवति सा तदभिलाषात्स्खलितसुभगं गच्छति नाभिप्रदेशं दर्शयति। उत्तमस्त्रीणां हि नाभिर्दक्षिणावर्त्तो प्रशस्यते। युवतयो हि तदनुरक्तान्तर्वृत्तयः सुरताभिलाषं विभ्रमैरेवाविर्भावयन्ति तदनु वचसा प्रार्थनां विदधतीति भावः। उक्तं च। "स्निग्धं दृष्टिपथं विभूषिततनुः कर्णस्य कण्डूयनं। नाभिर्दर्शनमुत्पथं च [अग्रतश्च] गमनं बालस्य चालिंगनं। केशानां च मुहुर्मुहुर्विवरणं वार्ता च सख्या सह [निःश्वस्य चालापनं]। कुर्युः प्रीतिवशात् स्त्रियः [कुर्वीरन्विवशाः स्त्रियः] समदना दृष्ट्वा नरं वांछितं॥ दृष्टा करोति हसितं मुखमुन्नमय्य। प्रभ्रंशकं क्षिपति केशविबन्धलग्नान्। नारी स्तनौ च जघनं च नितम्बबिम्बं। संदर्शयत्यभिमुखी चलचित्तवृत्ति॥ स्त्री कान्तं वीक्ष्य नाभीं प्रकटयति मुहुर्विक्षिपन्ती कटाक्षान्। दोर्मूलं दर्शयन्ती रचयति कुसुमापीडमुत्क्षिप्तपाणि रोमांचस्वेदजंभा श्रयति कुचतटभ्रंशि वस्त्रं विधत्ते। सोत्कण्ठं वक्ति नीवीं शिथिलयति ददात्योष्ठमंगं भनक्ति "॥

°स्तनित° &c. Four MSS. in our possession read °क्वणित° for °स्तनित° which appears to be a better reading, for स्तनित is generally applied to 'the rattling of thunder, rumbling of thunderclouds.' *Cf.* verses 22, 25, 41 पूर्वमेघ; 36, 37 उत्तरमेघ; while क्वणित is generally found in the sense of 'jingling, tinkling of a bell or anklet'; it may also mean 'to hum or warble,' *Cf. Hi.* II. 86, *Amaru.* 28, *Ri.* III. 24, *Ku.* I. 54, *Utt.* III. 24, *Bk.* VI. 84.

(XXX.) °सावतीतस्य &c. Here *Pars'vâ., Lakshmi., Mahima., Sâro., Val., Su., Bha., Sand'., Râm., Hara., Kalyâ.,* Wilson, and thirteen other MSS. read तामतीतस्य, which *Mallinatha* also notices but rejects as he says no river of this name exists there. But from the History of Râjasthâna by Todd we learn that there is a river named the little Sindhu which springing from Devas and passing along with many other minor streams by Oujein falls into the Chambal, or it may be the Kâli–Sindhu which springs from Bangi and also falls into the Chambal. Thus the reading adopted by *Pârsvâ.* and the other commentators is more correct than the one adopted by *Mallinâtha.*

वेणीभूत° &c. On this *Sâro.* says, " वेणीबन्धो हि विरहिणीधर्मः. "

विरहावस्थया व्यंजयन्ती &c.On this *Sâro.* says, "युवतिरपि विरहे वेणीबन्धं पाण्डुतां च धारयति. " *Val.* has the following:— " प्रियविरहेण हि नारी तनुः पांडुश्च भवति. " *Su.* has:— " भर्तरि दूरे सति स्त्री अगुंफितवेणीदंडा पांडुवर्णा च भवति भर्तुर्विरहत्वात्. "

सुभग विरहावस्थया&c. Three MSS. in our possession read असुभगविरहावस्थया. On this Pro. Isvarachandra Vidyâsâgara says:— " तत्पक्षे असुभगेति विरहावस्थाविशेषणम्. "

(XXXI.) अवन्तीन् &c. Avanti is the name of a country also called मालवक the capital of which is Oujjein. The capital of *Mo-la-po*, or Mâlvâ, is described by Hwen Thsang as situated to the south-east of the river *Mo-ho*, or Mahi, and at about 2000 *li*, or 333 miles, to the north-west of Bharoch. In this case both bearing and distance, observes Cunningham, are erroneous, as Mâlvâ lies to the north-east of Bharoch, from which the source of the river Mahi is only 150 miles distant. I would therefore read 1000 *li*, or 167 miles, to the north-east, which corresponds almost exactly with the position of धारानगर, or धार, one of the old capitals of Mâlvâ. The present town of धार is about three-quarters of a mile in length, by half a mile in breadth, or 2½ miles in circumference; but as the citadel is outside the town, the whole circuit of the place cannot be less than 3½ miles. The limits of the province are estimated at 6000 *li*, or 1000 miles. To the westward there were two dependencies of Mâlvâ, named *Khedâ*, with a circuit of 3000 *li*, or 500 miles, and आनन्दपुर, with a circuit of 2000 *li*, or 333 miles, besides an independent state, named वडरी, with a circuit of 6000 *li*, or 1000 miles. All these have to be squeezed into the tract of country lying between कच्छ and उज्जयिनी, on the west and east, गुर्जर and वैराट on the north, and वलभी and महाराष्ट्र on the south, of which the extreme boundaries are not more than 1350 miles in circuit. It seems probable, therefore, that the dependencies must have been included by the pilgrim within the limits of the ruling state. I would accordingly assign to Mâlvâ and its dependencies the southern half of the tract just mentioned, and to *Vadari*, the northern half. The limits of Mâlvâ would thus be defined, by *Vadari* on the north, *Valabhi* on the west, उज्जयिनी on the east, and महाराष्ट्र on the south. The circuit of this tract, extending from the mouth of the Banâs river, in the रण of कच्छ, to the Chambal, near Mandasor, and from the Sahyâdri mountains, between Dâmân and Mâlegâm, to the Tapti river, below Barhanpur, is about 850 miles measured on the map, or nearly 1000 miles by road distance. According to Abu Rihan, the distance of the city of धार from the Narmadâ was 7 parasangs, and thence to the boundary of *Mahrat-das*, 18 parasangs. This proves that the territory of धार must have extended as far as the Tapti, on the south.

Hwen Thsang mentions that there were two kingdoms in India that were specially esteemed for the study of the Buddhist religion,

namely, मगध in the north east, and Mâlvâ in the south-west. In accordance with this fact he notes, that there were many hundreds of monasteries in Mâlva, and no less than twenty thousand monks of the school of the Sammatiyas. He mentions, also, that 60 years previous to his visit, Mâlvâ had been governed for 50 years by a powerful King, named शिलादित्य, who was a staunch Buddhist. See also Buddist Records of the Western World by S. Beal. Vol. II. p. 261.

Cf. "असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किलचन्द्रमौलेः। तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान् ॥ अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते । सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु" ॥ *R.* VI. 34—5.

उदयनकथा &c. उदयन was a prince of the Lunar race, and son of सहस्रानिक, who is the hero of a popular story. He was king of वत्स, and is commonly called वत्सराज. His capital was कौशाम्बी, the modern *Kosam* situated on the river यमुना. This village of *Kosam* is only 31 miles from the fort of Allahabad. Gen. Cunningham says that the city of कौशांबी was one of the most celebrated places in ancient India, and its name was famous amongst Brâhmans as well as Buddhists. The city is said to have been founded by कुसंब, the tenth in descent from पुरूरवस्; but its fame begins only with the reign of चक्र, the eighth in descent from अर्जुन, the son of पण्डु, who made कौशाम्बी his capital after हस्तिनापुर had been swept away by the Ganges. कौशांबी is mentioned in the रामायण, the earliest of the Hindu poems, which is generaly allowed to have been composed before the Christian era. The story of उदयन, king of कौशांबी, is referred to by the poet कालिदास in his मेघदूत, where he says that अवंती is great with the number of those versed in the tale of उदयन. Now, कालिदास flourished shortly after A. D. 500. In the बृहत्कथा, of सोमदेव, the story of उदयन is given at full length, but the author has made a mistake in the genealogy between the two *S'atânikas.* Lastly, the kingdom of कौशांबी or कोशांबमण्डल, is mentioned in an inscription taken from the gate-way of the fort of खर which is dated in *Samvat* 1092, or A. D. 1035, at which period it would appear to have been independent of कनोज. And further he says that it is quite certain that the present *Kosam* stands on the actual site of the ancient कौशांबी; for not only do the people themselves put forward this claim, but it is also distinctly stated in an inscription of the time of Akbar, which is recorded on the great

stone pillar, still standing in the midst of the ruins, that this is कौशांबीपुर." The story of उदयन or वत्सराज as he is also named is as follows:—चण्डमहासेन (or प्रद्योत as he is also called by *Mahimasinhagani*, *Sumativijaya*, *Sâro.* and others,) was a sovereign of उज्जयिनी, who had a daughter named वासवदत्ता, and who intended her to bestow in marriage upon a king named संजय. In the mean time the princess sees the figure of वत्सराज, sovereign of कुशद्वीप, in a dream and becomes enamoured of him. She contrives to inform him of her love and he carries her off from her father and his rival. This story is given in full in कथासरित्सागर and alluded to in मालतीमाधव of *Bhavabhûti*, and वासवदत्ता of *Subandhu.* Also compare verse 34 *th.*

°कोविदग्रामवृद्धान् &c. Wilson explains this as, "great or illustrious by the number of those skilled in the tale of उदयन." But the sense which he attaches to वृद्ध being unusual, the interpretation is objectionable. Others read °ज्ञान° for °ग्राम°. But we object to it on the ground that it renders the word °कोविद° superfluous.

अनुसर&c. *Pârsivâ.* reads here उपसर. This reading is preferable as the prefix अनु is inappropriate and *Mallinâtha* is, therefore, obliged to pass it over, and explain अनुसर by गच्छ merely.

विशालाम् &c. One of the many names of उज्जयिनी. *Sâro.* and *Val.* derive this thus:— 'विशिष्टाः शालाः प्राकारभुवनानि वा यस्यां सा तां तथोक्तां.' That it is called here a portion of heaven is in strict keeping with the fame which it enjoys of being one of the seven sacred places. They are all enumerated in this verse:— अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ *Cf.* अस्तीहोज्जयिनी नाम नगरी भूषणं भुवः । हसन्तीव सुधाधौतैः प्रासादैरमरावतीम् । यस्यां वसति विश्वेशो महाकालवपुः स्वयं । शिथिलीकृतकैलासनिवासव्यसनो हरः ॥ *Kathâ.* XI. 31—2.

(XXXII.) शिप्रा° &c. Name of a celebrated river on the bank of which stands उज्जयिनी and which unites with the *Chambal. Vallabha* says, "सिप्राख्योज्जयिन्यां नदी."

स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः &c. "विकसितपुण्डरीकपरिमलसंपर्कसुरभिः। एतेन सौरभ्यकथनं" । says *Sâro.*

अङ्गानुकूलः &c. *Sâro.* has the following remark on this 'एतेन मान्द्यमुक्तं.'

सारसानां &c. *Sâro.*, *Val.*, *Mahim.*, and others explain this word by 'लक्ष्मविहगानां or लक्ष्मणां.' These commentators differ from *Mallinâtha. Vide* commentary on the same. *Cf.* रामाणां रमणयिवक्र-

शशिनः स्वेदोदबिन्दुप्लुतो । व्यालोलालकवल्लरीं प्रचलयन् धुन्वन् नितम्बाम्बरं । प्रातर्वाति मधौ प्रकाशविकसद्राजीवराजीरजो। जालामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः ॥ *Amarus'atakam*. 58.

R. M. read this stanza after 'प्रद्योतस्य' &c. and K1. after 'हारान्' &c.

(XXXIII.) *Mallinâtha* considers this and the following two verses to be interpolations; but they are found in *Pârs'vâ*. and 24 MSS. with a little change in the order. This verse is put after 'प्रद्योतस्य &c' while the third is given in the description of *Alakâ* in उत्तरमेघ and, we think, rightly, as the incident of the battle with *Râvana* alluded to in the verse has no connection with उज्जयिनी, while it is connected with *Alakâ* which, we know, was invaded by *Râvana* for obtaining the पुष्पकविमान from *Kubera*, the lord of *Alakâ*. The third verse is also read by all other commentators in the description of *Alakâ* in उत्तरमेघ.

(XXXIV.) प्रद्योतस्य &c. For the story of वत्सराज referred to here *Vide* note on verse 31*st*.

हैमं तालद्रुमवनम् &c. In addition to what is told before we may add that चण्डमहासेन was fond of hunting and had in उज्जयिनी a forest which might have been full of *Tâli*-trees. प्रद्योत is the name of the king of the *Magadhas* whose daughter पद्मावती was also given in marriage to this वत्सराज. But the facts mentioned here about the king प्रद्योत or in the story given by कथासरित्सागर, are given in connection with चण्डमहासेन. From this it appears that either प्रद्योत has been confounded with चण्डमहासेन or प्रद्योत is but another name of चण्डमहासेन.

In the latter inference we are supported by सारोद्धारिणी, महिमसिंहगणि, सुमतिविजय and others. They say:— 'प्रद्योतस्य = चण्डमहासेननाम्नो राज्ञः.' 'प्रद्योतस्य = चण्डमहासेनस्य.' 'प्रद्योतस्य = चण्डप्रद्योतनाम्नो भूपस्य.' The story of king चण्डमहासेन as given in कथासरितसागर runs thus:— " There is in this land a city named उज्जयिनी, the ornament of the earth, that, so to speak, laughs to scorn with its palaces of enamelled whiteness अमरावती, the city of the gods. In that city dwells शिव himself, the lord of existence, under the form of महाकाल, when he desists from the kingly vice of absenting himself on the heights of mount कैलास. In that city lived a king named महेंद्रवर्मा best of monarchs and he had a son like himself named जयसेन. Then to that जयसेन was born a son named महासेन, matchless in strength of arm, an elephant among monarchs. And that king, while cherishing his realm, reflected, 'I have not a sword worthy of me, nor

a wife of good family.' Thus reflecting that monarch went to the temple of दुर्गा, and there he remained without food, propitiating for a long time the goddess. Then he cut off pieces of his own flesh and offered a burnt-offering with them, whereupon the goddess दुर्गा being pleased appeared in visible shape and said to him, 'I am pleased with thee, receive from me this excellent sword, by means of its magic power thou shalt be invincible to all thy enemies. Moreover thou shalt soon obtain as a wife अङ्गारवती, the daughter of the Asura अङ्गारक, the most beautiful maiden in the three worlds. And since thou didst here perform this very cruel penance, therefore thy name shall be चण्डमहासेन.' Having said this and given him the sword, the goddess disappeared. But in the king there appeared joy at the fulfilment of his desire. He now possessed, O king, two jewels, his sword and a furious elephant named नडगिरि, which were to him what the thunderbolt and ऐरावण are to Indra. Then that king, delighting in the power of these two, one day went to a great forest to hunt; and there he beheld an enormous and terrible wild boar; like the darkness of the night suddenly condensed into a solid mass in the day time. That boar was not wounded by the king's arrows, in spite of their sharpness, but after breaking the king's chariot fled and entered a cavern. The king, leaving that car of his, in revengeful pursuit of the boar, entered into that cavern with only his bow to aid him. And after he had gone a long distance, he beheld a great and splendid capital, and astonished he sat down inside the city on the bank of a lake. While there, he beheld a maiden moving along surrounded by hundreds of women, like the arrow of love that cleaves the armour of self-restraint. She slowly approached the king, bathing him, so to speak again and again in a look, that rained in showers the nectar of love. She said, 'who art thou, illustrious sir, and for what reason hast thou entered our home on this occasion?' The king, being thus questioned by her, told her the whole truth; hearing which, she let fall from her eyes a passionate flood of tears, and from her heart all self-control. The king said, 'Who art thou and why dost thou weep?' When he asked her this question, she, being a prisoner to love at his will, answered him, 'The boar that entered here is the Daitya अङ्गारक by name. And I am his daughter, O king, and my name is अङ्गारवती. And he is of adamantine frame, and has carried off the hundred princesses from the palaces of kings and appointed them to attend on me. Moreover this great *Asura* has become a *Ra'kshasa* owing to

a curse, but today as he was exhausted with thirst and fatigue, even when he found you, he spared you. At present he has put off the form of a boar and is resting in his own proper shape, but when he wakes up from his sleep he will without fail do you an injury. It is for this reason that I see no hope of a happy issue for you, and so these tear drops fall from my eyes like my vital spirits boiled with the fire of grief.' When he heard this speech of Angâravatî's the king said to her,—' If you love me do this which I ask you. When your father awakes, go and weep in front of him, and then he will certainly ask you the cause of your agitation; then you must say—If some one were to slay thee what would become of me? This is the cause of my grief. If you do this, there will be a happy issue both for you and me.' When the king said this to her, she promised him that she would do what he wished. And that *Asura*-maiden apprehending misfortune placed the king in concealment, and went near her sleeping father. Then the *Daitya* woke up and she began to weep. And then he said to her, ' Why do you weep, my daughter?' She with affected grief said to him, ' If some one were to slay thee, what would become of me? Then he burst out laughing and said;—' Who could possibly slay me, my daughter, for I am cased in adamant all over, only in my left hand is there an unguarded place, but that is protected by the bow.' In these words the *Daitya* consoled his daughter, and all this was heard by the king in his concealment. Immediately afterwards the *Dânava* rose up and took his bath, and proceeded in devout silence to worship the god शिव; at that moment the king appeared with his bow bent, and rushing up impetuously towards the *Daitya*, challenged him to fight. He, without interrupting his devout silence, lifted his left hand towards the king and made a sign that he must wait for a moment. The king for his part, being very quick of hand immediately smote him with an arrow in that hand which was his vital part and that great *Asura* अङ्गारक, being pierced in a vital spot, immediately uttered a terrible cry and fell on the ground, and exclaimed, as his life departed,–' If that man who has slain me when thirsty, does not offer water to my manes every year, then his five ministers shall perish.' After he had said this, that Daitya died, and the king, taking his daughter अङ्गारवती as a prize, returned to उज्जयिनी. There the king चण्डमहासेन married that *Daitya*-maiden, and two sons were born to him, the first named

गोपालक and the second पालक; and when they were born, he held a feast in honour of Indra on their account. Then Indra, being pleased, said to that king in a dream, 'By my favour thou shalt obtain a matchless daughter.' Then in course of time a graceful daughter was born to that king, like a second and more wonderful shape of the moon made by the Creator. And on the occasion a voice was heard from heaven;—' She shall give birth to a son, who shall be a very incarnation of the god of love, and king of the Vidyádharas'. Then the king gave that daughter the name of वासवदत्ता, because she was given by Indra being pleased with him. And that maiden still remains unmarried in the house of her father, like the goddess of prosperity in the hollow cavity of the ocean before it was churned. That king चण्डमहासेन cannot indeed be conquered by you, O king, in the first place because he is so powerful, and in the next place because his realm is situated in a difficult country. Moreover he is ever longing to give you that daughter of his in marriage, but being a proud monarch, he desires the triumph of himself and his adherents. But, I think, you must certainly marry that वासवदत्ता. When he heard this, that king of वत्स immediately lost his heart to वासवदत्ता."

नलगिरिः &c. प्रद्योत also had a furious elephant named नलगिरिः or नडगिरिः, *vide* above note.

Calcutta editions, Wilson's edition and six other MSS. omit this stanza.

(XXXV.) For the proper position of this verse *vide* note on 33*rd* and the verses descriptive of *Alakâ* in उत्तरमेघ.

चन्द्रहास *m.* A glittering scimitar, 'deriding the moon; ' the name of the sword of *Râvana.*

Bha., Sana'., Ra'm., Hara. Kalya'., Val., Sa'ro., Pars'vâ'., Lakshmi Nemidûta., Wilson, and twelve other MSS. omit this stanza here, and read it in the उत्तरमेघ. *Mahim.* reads it after "हारान् &c. " Only nine MSS. read it here.

(XXXVI.) केशसंस्कारधूपैः &c. *Cf.* 'धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम् ' । *Ku.* VII. 18.

बन्धुप्रीत्या &c. The peacocks take delight in the appearance of the clouds and therefore they look upon the cloud as their brother. *Val.*, *Su.* and, *Mahima.* say:—बन्धौ बन्धोरिति वा प्रीत्या.

पादरागाङ्कितेषु &c. Staining the soles of the feet, says Wilson, with a red colour, derived from the मेंदी, the lac &c., is a favourite practice of the Hindu toilet.

आलोद्गीर्णैः &c. On this *Sâro'* has:— **एतेन शरीरपाटवावापनमुक्तं.**

धूपैः &c. *Sâro.* says:— **धूपस्य धूमस्य पयोहाप्यायिकत्वान्नागराणां भोगित्ववर्णनं.**

(XXXVII.) भर्तुः कण्ठच्छविः &c. The dark blue of the cloud is compared to the colour of the neck of शिव, which became of this hue upon his swallowing the poison produced at the churning of the ocean. The story is thus related in *Mahimasinhagani's* gloss:— "As the Devas and Asuras continued to churn the Ocean more than enough, that deadly poison issued from its bed, burning like a raging fire; whose dreadful fumes in a moment spread throughout the world, confounding the three regions of the universe with its mortal stench, until शिव, at the word of *Brahmâ*, swallowed the fatal drug, to save mankind; and from that time he was called नीलकण्ठ, because his throat was stained blue."

त्रिभुवनगुरोः &c. On this *Sâro.* has the following remark:—शिवशक्तिसंभवत्वात्त्रिजगतः.

चण्डीश्वरस्य &c. Lit. 'The lord of चण्डी or पार्वती,' one of the names of शिव *i. e.* महाकालेश्वर. The other reading adopted by *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, and Wilson here is चण्डेश्वरस्य 'of the terrible lord', *i. e.* शिव.

गन्धवत्याः &c. This must be the name of a small brook in the vicinity of the temple of महाकाल, in उज्जयिनी.

°स्नानतिक्तैः &c. The word स्नानं has an unusual sense, viz. perfumed-powder for the body.

धूतोद्यानं &c. *Cf.* " असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः। तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्" *R.* VI. 34.

The *Sâro.* says that the अलंकार of this and the preceding verse is उदात्त :— एतयोः (because the *Sâro.* and the other commentators take these verses to be a युग्म) उदात्तनामालंकरणं। तथाचोक्तं । " आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमं। उदात्तं नाम तं प्राहुरलंकारं मनीषिणः " ॥

(XXXVIII). महाकालं &c. Is the name of the temple of शिव in the neighbourhood of उज्जयिनी. Anandoram Borooah in his ancient geography of India prefixed to the third volume of his Practical English-Sanskrit Dictionary says:—" On the north of the *Narmadâ* lay *Avanti* with its capital उज्जयिनी, called from the province also अवन्तिपुरी or अवन्ति and विशाला "the great city." ("उज्जयिनी स्याद्विशालावन्ती पुष्पकरण्डिनी" Hemachandra IV. 42. The last name I have not met with. विशाला occurs in दशकुमार "विशालोपशल्ये" and in मेघदूत ३१. प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्। पूर्वोद्दिष्टा-

मनुसत्पुरीं श्रीविशालां विशालां. "*Avanti* and *Avantipuri* are common, *e. g.*, in Mr. 1. 6.) It's position on the शिप्रा ("शिप्रया परिक्षिप्ता...... विजितामरलोकद्युतिरवन्तिषूज्जयिनी नाम नगरी," *Ka.*) and similarity of name at once identify it with उज्जयिनी. It's temple of महाकाल was widely known all over India. Hemachandra gives मालव as a synonym of *Avati* ("मालवाः स्युरवन्तयः IV. 22). This is not, however, quite correct as मालव (Malvâ), as at present, covered a greater area than *Avanti* and Bâna Bhatta applies it to a neighbouring kingdom on the east, whose capital was विदिशा on the वेत्रवती (Betwa) river ("तस्य......मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया... ...वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्"। *Ka*). We know from *Ka'lida'sa* that दशार्ण was the name of this country (see. मे. I. 24.25), through which the दशार्ण (Dasan) flows. I identify this town with Bhilsâ which agrees in name and position, four miles from which there is a detached hill with vast remains of antiquity. This is probably the "low hill" of *Ka'lida'sa* (see मे.I. 26). According to the उत्तरकांड, it was made over to the second son of शत्रुघ्न about the time of Râma's death ("सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम्," 171-10.) The province of *Avanti* in the time of the *Maha'bha'rata* extended on the south to the banks of the नर्मदा ("ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ। विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महता वृतौ। जिगाय समरे वीरावाश्विनेयः प्रतापवान्। ततो रत्नान्युपादाय पुरं भोजकटं ययौ"। II. 31. 10-11) and on the west probably to the banks of the मही (The name of this river occurs in the वनपर्व 222-23. "चर्मण्वती मही चैव मेध्या मेधातिथिस्तथा"।). On the north of *Avanti*, there was another principality with its capital दशपुर on the चर्मण्वती river ("ततश्चर्मण्वतीकूले जंभकस्यात्मजं नृपं। ददर्श वासुदेवेन शेषितं पूर्ववैरिणा"। Mah. II. 31-7. "पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्। मे II. 51). This may be the modern Dholpur (Vide stanza 51st, notes). This was the capital of रन्तिदेव, whose hospitality is twice described in the *Maha'bha'rata* ("राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज। द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा। अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा।......" वनपर्व 208. 8-9. See also द्रोणपर्व ch. 67. See also our notes on 49th verse). On the south-west of this kingdom there was another small principality, whose position is fixed by the पर्णाशा (Punass) river ("पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी......" द्रोणपर्व 92-45).

On the east of the दशार्णा is the hill of कालंजर (Calenjar) celebrated for a form of *Siva* called हिरण्यबिन्दु ("हिरण्यबिन्दुः कथितो गिरौ कालंजरे महान्"। Mah. III. 87-21). South-west of it is Panna, which I identify with *Va'mana's* पुन्नागार (See *Panini* IV. 2. 43).

On the east of it was the ancient kingdom of दक्षिणकोसल. Râmâ's mother कौसल्या takes her name from this province ("तद्वयमपि वत्सप्रवासदुर्मनायमानां दक्षिणकोसलेश्वरसुतां देवीमुपेत्य सान्त्वयामः" । *Anar. Ra'gha.* II). कुशावती or कुशस्थली was its capital in the defiles of the *Vindhya*, said to be named after his son कुश ("कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि । कुशावतीति सा नाम्ना कृता रामेण धीमता" । *Rama'.* उत्तरकांड 171-4.) or more prabably from the *Kus'a* grass which grows luxuriantly in dry barren soil. Kus'a is, however, said to have returned to अयोध्या after some years' reign, making it over by one account to the great physician सुश्रुत, son of Râma's adviser विश्वामित्र ("कथमयं कुशस्थलीनाथः । (प्रकाशम्) विश्वामित्रमहामुनेर्यदजनि ब्राह्मण्यलाभात्पुरा । क्षात्रं गोत्रमयं तदादिनृपतिर्दिग्विश्रुतः सुश्रुतः । प्रोक्तं येन नृणां महाकरुणया चित्रं चिकित्सामृतं । कीर्तिस्तंभविभूषणाश्च ककुभो यद्वाहिनीशैः कृताः ॥ ६० ॥......... मज्झुदेसणरिन्दो एसो........." *Ba'la R'ama'yana* 18). The return journey is described in the पातालखंड of the पद्मपुराण and the 16th canto of the *Raghuvams'a* ("मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना । चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि ॥ ३२ ॥ व्यलंघयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन् पुलिन्दैरुपपादितानि ॥ तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गंगाम् । अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलंघनलोलपक्षाः ॥ इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः । वेदिप्रतिष्ठान् विततध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्" ॥ *R.* XVI. 31-35). It distinctly mentions the crossing of the *Vindhya* but only distantly alluded by name to the river नर्मदा. कुशस्थली was, therefore, north of the नर्मदा but south of the विन्ध्य. We must, therefore, look for it somewhere about Jabalpur or somewhere about Râmnagar in Bundelkhand. We have seen that Jabalpur was a different principality. Besides it was a forest during the time of Râma. I would, therefore, identify कुशावती with Râmnagar or some place near it. Its contiguity to both Ayodhyâ and Benares favours my conclusion. I say "and Benares," because *Susruta* is said to have learnt medicine there. The only objection is the erroneous distance given by Houen Thsang. But *Vidarbha*, as General Cunningham supposes, cannot possibly be दक्षिणकोसल as the two kingdoms are always separately mentioned in Sanskrit works as, for instance, in the 3rd act of the *Ba'la Ra'ma'yana*. From the passage quoted from the *Raghuvansa,* we learn that the Pulindas were the inhabitants of this province. Cannot they be the Bundelas, from which Bandelkhand derives its name? The confluence of the Sona with the ज्योतिरथी (Johil) was a celebrated place of pilgrimage("शोणस्य ज्योतिरथ्याश्चसंगमे निवसञ्छुचिः । तर्पयित्वा पितृन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत्"॥

वनपर्व 85. 8). *Cf.* "एवं च क्रमेणावन्तिविषयं प्राप्तः । तत्र च शिप्राजले स्नात्वा श्रीमहाकालदेवं च प्रणम्य यावदग्रतो गच्छति" । P. V.

अत्येति &c. Many commentators read अभ्येति here, and explain it as "Till the sun rises to your view." They object to *Mallinâtha's* reading on the ground that the cloud is told in one of the following verses to pass the whole night there and proceed on his journey at the next sun-rise; while *Mallinâtha's* reading states that the cloud should depart thence after sunset. But the objection appears to us to be weak because the cloud is told to depart after sunset, no doubt, but from what? Not from उज्जयिनी, as they suppose, but from the temple of महाकाल, in order to visit and enjoy other parts of उज्जयिनी. Again the reading they adopt is open to the objection that the sun being visible when the cloud arrives at महाकाल, by "sunrise" *i. e.* "the time of his departure in their opinion, they must mean next sunrise," which requires a word like पुनर् in the text which there is not. The following extracts would illustrate what they say. "तावत्काले स्थातव्यं भानुः सहस्रकिरणो नयनविषयं यावदभ्येति । भानुरिति । भानुरस्तमयते इति मन्यन्ते तन्न युक्तं । लोकाचारेण संध्यायां गमनस्य निषिद्धत्वात् । तथा अत्रैव "तां कस्यांचिद्भवनवलभौ" इति श्लोके रात्रिनिवासस्य सूर्योदयं यावदवस्थानस्य च वक्ष्यमाणत्वात् । *Sa'ro.* तावत्त्वया स्थातव्यमासितव्यं यावद्भानुरर्कश्चक्षुर्गोचरतां चक्षुर्दर्शनत्वमभ्येत्युपैति । *Val.* भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिगोचरं यावदभ्येत्यायाति तावत्ते त्वया मेघेन स्थातव्यं स्थेयं लोकेऽपि संध्यागमनस्य निषिद्धमिति । *Su.* ते त्वया तावत्स्थातव्यं यावद्भानुः श्रीसूर्यो नयनविषयमभ्येति लोचनगोचरे चरति । *Mahima.* भानुः सूर्यो यावन्नयनविषयं चक्षुर्गोचरमभ्येति प्राप्नोति यावन्नास्तं गच्छतीत्यर्थः । *Bha., Sana'.-Ra'm.,* and *Hara.*

यावद्भानुर्नयनविषयमभ्येति सूर्योदयं यावदित्यर्थः । महाकालतीर्थमासाद्य त्वया तत्राहोरात्रं स्थातव्यमिति भावः । *Kalya'.*"

संध्याबलिपटहतां &c. Wilson observes that there are three daily and essential ceremonies performed by the Brahmanas, termed *Sandhyas*, either from the word सन्धि, 'junction,' because they take place at the joinings of the day as it were, that is, at dawn, noon and twilight: or as the term is otherwise derived from सम् 'with,' and ध्यै, to meditate religiously.' (सन्ध्यायंति सन्धीयते परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या). When the ceremonies of the *Sandhya'* are of a public nature, they comprehend the ringing of bells, blowing the couch, beating a चौघडा, &c., and this kind of sound the cloud is directed by the यक्ष to excite, as an act of devotion. *Cf.* "देवानां बलिकाले ढक्कापटहादिवाद्यैर्भाव्यं" । *Val.* "बलिकाले देवानां ढक्कापटहादिवाद्यं कार्यं" । *Mahima.*

(XXXIX). पादन्यास &c., 'Lit. placing the feet.' A kind of dance called देशिक, in which measured steps at interval are gracefully placed by the dancing girls having their loins, girded up with jingling zones set with diamonds and with their feet furnished with anklets having tinkling bells. "*Cf.* देवालयप्रदक्षिणीकरणेन करगृहीतचामरेण वेश्यानां भगवद्गणिकानां कटिमेखला वाद्यन्ति" । *Sa'ro.*, *Val.*, *Su.* For definition *vide* commentary on the same.

वेश्याः &c. Derived from विश्. Women devoted to finery; because they put on fancyful dresses (वेशाः). It is customary with the formers to engage the services of the courtezans for dancing in temples before the images of *Vishnu*, *Siva*, &c., in the morning as well as in the evening.

चामरैः क्लान्तहस्ताः &c. The Chowrie is a brush of peacock's feathers, or the tail of a particular kind of cow called yak, set in a handle of such materials as suit the fancy or the means of the proprietor. It is used for a fan, or to whisk off flies and other insects; and this piece of attention is always paid by the Aryans to the figures of their gods. *Cf.* "अनेन सौकुमार्यनिरूपणं" । *Sa'ro.*, *Val.*

नखपद &c. 'Nail-marks,' *i. e.* wounds their nails receive when dancing barefooted. Divesting the feet of the shoes is a mark of reverence or respect paid to sacred places, such as the interior or vestibule of a temple, which has been from the remotest times practised, says Wilson, in the Aryan nations.

मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् &c. *Cf.* "विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः" । *R.* VII. 11. Although this allusion may be new, observes Wilson, to European imagery, it is just and pleasing. The consequence of the glance is well conveyed by the sting of the bee (भृंगा), while its poetically radiating nature is not unaptly compared to the long flight of a line of these insects. The lengthened light of a glance is familiar to us; for Shakespeare speaks of " eyes streaming through the airy region." *Cf.* "एतेन नयनकमनीयत्वं सादरविलोकनं च पुण्यवनितानां प्रतिपादितं." *Sa'ro.*

रत्नच्छायाखचितवलिभिः &c. *Sa'ro.*, *Val.*, and *Mahima.* interpret this couplet in a different way, they say :—"अथ वा खचिताः छुरिता वलयस्तासामेव चामरग्राहिणीनां वलय उदरलेखा यैः तैः" । *Sa'ro.*

"रत्नच्छायया खचिताः प्रकटीकृता वलय उदरलेखा यैः । तासां हि वासोयुगाच्छादितानां चामरमणिभासा मध्यवलयः प्रकटीभवन्ति" । *Val.* "अथ वा तासामेव चामरग्राहिणीनां उदररेषा यैस्तैः" । *Mahima.*

(XL.) आर्द्रनागाजिनेच्छां &c. It is related in mythology that when *Siva* killed *Gaja'sura* in battle, he danced by covering his body

with the skin stripped off the body of the demon and wet with blood. Monier Williams in his Indian Wisdom says:—"The elephant's skin belonged to an असुर named गज or गय, who acquired such power that he would have conquered the gods, and would have destroyed the *Munis* had they not fled to Benares and taken refuge in a temple of शिव, who then destroyed the असुर, and, ripping up his body, stripped off the (elephant) hide, which he cast over his shoulders for a cloak." On this *Sa'ro.* has the following: —"तत्र पशुपतिः सन्ध्यासु रुधिरार्द्रं चाविलं गजाजिनं सुपरिच्चैः प्रसार्य नृत्यति"। For the dance, the elephant-skin, &c., of *Siva, Cf.* "प्रचलितकरिकृत्तिपर्यन्तचञ्चन्नखाघातभिन्नेन्दुनिष्यन्दमानामृतश्च्योतजीवत्कपालावलीमुक्तचण्डाट्टहासत्रसद्भूरिभूतप्रवृत्तस्तुति"। *M. V.*

दृष्टभक्तिः &c. For the dissolustion of this compound, *vide Malli-na'tha* on :—"दृढभक्तिरपि ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः। मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्" ॥ R. XII. 19.

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं &c. *Sa'ro.* and *Su.* propose an optinal interpretation of this:—"गजासुरचर्मावलोकनेन पूर्वं भवान्या रतिरुत्पद्यते। अथ वा रुधिरद्रवाविलगजाजिनावलोकनेन प्रतिदिवसं नृत्यारंभे तस्या उद्वेग आसीत्। स च त्वयि गजाजिनत्वं प्राप्ते शान्तस्तेन स्तिमितनयनत्वं।

(XLI.) सूचिभेद्यैः &c. Lit. 'fit to be pierced by a needle,' *i. e.* dense, impervious, impenetrable. On this *Sa'ro.* says:—"अतिनिबिडत्वात्तमसां कविसमये सूचिभेद्यत्वमिष्यते। औपचारिकोऽयं धर्मः"। *Su.* has ;—"अत्यन्तनिबिडत्वात्सूच्याग्रभागेणापि भत्तुमशक्यैः"। So thick that it would be very difficult to pierce it with a needle to see through it.

°स्निग्धया &c. The sense 'lustre, brightness,' of स्निग्ध given by *Mallina'tha* is rather unusual but not unhappy. *Cf*: "कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी. *Vi*. IV. I.

तोयोत्सर्गस्तनित &c. In giving the text of *Mallina'tha's* commentary on this we have followed the Bombay Edition of Bhâtavadekar. The Mss. in our possession read the text:—"तोयोत्सर्गसहितं स्तनितमिति विग्रहः। विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात्"। other printed editions read the text of *Mallina'tha* in the following way:—"तोयोत्सर्गसहितं स्तनितमिति विग्रहः। विशिष्टस्यैव केवल &c.;" of these the latter is unintelligible to us and the former gives some sense but it is not good.

मा स्म भूः &c. *Pa'rs'va'bhyudaya, Bharata, Ra'mana'tha*, Wilson and others read मा च भूः here. This is preferable as it serves to connect the two verbs in the verse. Prof. Isvarachandra Vidyâsâgara concurs with us and says:—"एकस्य कर्तुः क्रियाद्वयसम्बन्धाच्चकारवानेव पाठः साधीयान्"।

विक्लवास्ताः &c. *Cf.* "सुतीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनतां पयोमुचां घनान्धकारावृतशर्वरी-

ष्वपि। तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः" ॥ *Ri. Rainy season.* 10.

(XLII). भवनवलभि *m. f.* (°भी *f.* also written वडभिः) The wooden frame of a thatch, a roof, a turret or temporary building on the roof of a house. *Cf.* "गृहाट्टालिकायां प्रासादशिखरवर्तिचतुःशालादौ"।

सुप्तपारावतायां &c. *Cf.* "धूपैर्जालविनिःसृतैर्वडभयः संदिग्धपारावताः"। *Vi.* III. 2. "सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि"। *Malavi.* II, 12. On this *Sâro.* has:—"भोगिनां हि वासभवनेषु कूजितध्वनिनिनादिपारावताः संभवन्ति। ते च स्वभावलब्धनिद्राः संतः कामिनीकण्ठकूजितेन जागृवयो भवन्ति। एतेन तस्याः सन्निहितोद्दीपनं विभाव्यते"। *Val.* has:—"ते हि कण्ठरुतश्रवणार्थं नागरिकैर्गृहे धार्यन्ते"। *Mahim.* gives the following:—"कण्ठोद्भवचतुरमधुरशब्दश्रवणार्थं हि भोगिनां गृहेषु पारावताः क्रीयन्ते"।

°कृत्या &c. 'Performance, achievement.' 'The finishing, doing.' On this *Su.* has the following note:—"एतेन लब्धकामोपभोगत्वं जलदस्य सूचितं"।

चिरविलसनात् &c. On this *Sâro.* has the following note:—"चिरविलसनेन सुरतसंमर्दः सूच्यते"।

(XLIII). The पार्श्वाभ्युदय reads the last two lines of this verse first and the first two lines last; but not for the better.

खण्डितानां &c. The *Sâro., Mahima., Val.* and *Su.* define the word खण्डित in the following way:—निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो नारिनखव्रणविशेषविचित्रितांगः। यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः" ॥ खण्डिता *f.* One of the eight *Nâyikâs* in Sanskrit poetry. She is described as being angry with her husband for his infidelity; The *Sâhitya Darpana* or Mirror of composition thus describes her:—पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता"। The first definition given by *Sâro.* &c. is also supported by *Hemâdri*, but *Châritravarddhana* gives the following:—"प्रयोगादुचिते यस्या वासके नागतः प्रियः। तदनागमनार्त्ता तु खण्डितेत्यभिसंज्ञिता"।

शान्तिं नेयं &c. On this *Sâro.* and *Mahima.* have the following remark:—"रात्रौ बहिरुषित्वापि प्रभाते तावद्दिनकृत्यार्थमवश्यं पुरुषेण गृहमागन्तव्यं दिनकृत्यप्रवर्तनार्थं च दृष्टसापत्नदुःखविक्लवायाः प्रियायाः केनापि वचनविन्यासेन करस्पर्शेन वा नयनाम्रजलं निवारणीयं"।

कमलवदनात् &c. *Cf.* "यातास्मि पद्मवदने समयो ममैष"। *Ratnâ.* II.

नलिन्याः &c. The word नलिनी here is used in the sense of a lotus-plant as will be seen from the way in which *Mallinâtha* solves the compound.

कररुधि &c. कर is here used in the double sense of 'hand,' and

ray.' *Sâroddhârini* also notices and comments on the reading "कमलनयनात् कमलमेव नयनं तस्मादिति वा।"

(XLIV.) गंभिरायाः &c. This must be the name of one of the small rivers with which the province of Mâlavâ abounds. "Wilson says that this river, and the गन्धवती in the vicinity of the temple of शिव, which lately occurred, are probably amongst the numerous and nameless brooks with which the province of Mâlvâ abounds."

प्रसन्न &c. This word is used in the double sense of 'clear, pellucid free from impurity' (when said of water) and 'pleased, complacent, gracious (when said of the mind).

छायात्मा &c. This expression is interpreted in two ways by *Mallinâtha*:—'The (cloud's) self in the form of its shadow, or the body reflected in water.'

अपि &c. 'yet,' *i. e.* as *Mallinâtha* explains it, 'even though the cloud is unwilling to enter directly the heart of the river'; 'unwilling,' because it is not to tarry on the road.

On छायात्मापि *Sâro*. has the following remark:—"छाया प्रतिबिम्बं तद्रूपः आत्मा छायात्मा प्रकृतिसुभगस्य पुरुषस्य गम्भीरायाः अनुपलक्षणीयमनोभावनायिकायाः छायात्मापि चित्रादिलक्षितरूपमपि चेतसि प्रवेशं लभते। अन्यभावेषु व्याख्या। यथान्योऽपि यः प्रकृतिसुभगो भवति तस्य छायात्मापि पट्टिकाद्यालेख्यगतमपि रूपं कस्याश्चिद्गम्भीराया गाम्भीर्यगुणशालिन्याश्चित्ते प्रविशति परोक्षेऽपि तदनुरागिणी भवतीत्यर्थः"। *Mahima*. says:—"अन्योऽपि यः प्रकृतिसुभगो भवति तस्य छायात्मापि पट्टिकालेख्यगतमपि बिम्बं गंभीरगुणशालिन्याः कामिन्याश्चेतसि प्रवेशं लभते"। *Su*. has:—"यथा प्रकृतिसुभगः स्वभावेन यो जनश्चतुरो भवति तस्य छायात्मापि चित्रलिखितमपि रूपं गंभीरायाः स्त्रियः चित्ते प्रविशति। चित्रलिखितरूपोऽपरि परोक्षेऽपि रागिणी भवति तथा गंभीरायाश्चेतसि तव छायात्मापीति भावः"।

Val. says:—"प्रसन्ने तव स्वभावस्वच्छच्छायारूपोऽप्यात्मा प्रतिबिम्बरूपश्चेतसीव प्रवेशं लप्स्यते"।

धैर्यात् &c. *Mallinâtha* explains this word here by धाष्टर्यात् 'through rudeness or impudence' *i. e.* it would be rude or impudent on your part to disappoint her love. But this sense of the word is rarely found. This word is generally used in the sense of 'firmness or strength of mind,' and it is also possible here. *Cf*. *Sâro*. "धैर्यात् =धीरत्वात्." *Su*. "कस्माद् धैर्याद् = धीरत्वलक्षणपुरुषगुणात्." *Val*. "धैर्याद्गांभीर्यात्." *Mahima*. धैर्याद् गांभीर्यात्." *Sâvachuri*. No. 25 of 1872–73 says, "धैर्याद = धैर्यलक्षणात्." *Sâvachûri*. No. 64 of 1871–72. says "धैर्यात् = धीरत्वलक्षणपुरुषगुणात्." *Sâvachûri*. No. 142 of 1882–83 says:—"धैर्यात् = धीरगुणत्वात्." *Meghalatâ*. of Nâgapur; No 160 of 1864. says:—"धैर्यात् = धीरत्वात्." शिष्यहितैषिणी of लक्ष्मीनिवास, No. 158,

says:—धैर्यात् = "धैर्यमाश्रित्य." Prof. Isvarachandra Vidyâsâgara also condemns the explanation of *Mallinâtha.* and says:—"धैर्याद् धैर्यमाश्रित्य गंभीराया अनुरागलिंगदर्शनेऽपि निर्विकारचित्तो भूत्वेत्यर्थः। मल्लिनाथस्तु धैर्याद् धाष्टर्यात् इति व्याख्यातवान् तन्न समीचीनम्। धैर्यशब्दस्य धाष्टर्यार्थे प्रयोगस्यादर्शनात् यथाश्रुतार्थपरित्यागे प्रमाणाभावाच्च।"

चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि &c. *Cf.* "स ततार सैकतवतीरभितः शफरीपरिस्फुरितचारुदृशः। ललिताः सखीरिव बृहज्जघनाः सुरनिम्नगामुपयतीः सरितः॥ *Kirat.* VI. 16.

The शफर is described, observes Wilson, as a small white glistening fish; which darting rapidly through the water, is not unaptly compared to the twinkling glances of a sparkling eye. Assigning the attributes of female beauty to a stream, ceases to be incongruous when we advert to its constant personification by the Hindus: and it is as philosophical as it is poetical, to affiance a River and a Cloud.

Sâro. says that the figure of this verse is:—"अत्र वास्तवदलंकरणं." But *Su.* says that it is:—"उपमारूपकयोः संकरालंकारोऽत्र"।

(XIV). करधृतमिव &c. 'Held up by the hand.' Here *Sâro.* notes:—"प्राप्तवानीरशाखं अत एव किंचिच्छिथिलं यथा भवति एवं करधृतमिव पाणिनावष्टभ्यमिव कामिनः परिधानं अपहरतो मोक्तुमिच्छन्त्यपि स्वभावात् पुरन्ध्री पाणिना रुणद्धि"। *Su.* notes:—"यथा किंचित्करगृहीतं केनचिद्भवति तदपि कष्टेन"। *Mahima.* notes down:—"अंबरं हि आकृष्यमाणं नारीकराभ्यां रुणद्धि। मोक्तुमिच्छन्त्यपि स्त्री स्वभावाद्वसनं पाणिभ्यामवरुणद्धि अत एव करधृतमिव भवति"। *Val.* has the following;—"यथांशुकं हरतो हि कामिनो नार्यः कराभ्यां रुन्धन्ति"।

लम्बमानस्य &c. On this *Sâro.* has the following interpretation:—"लम्बमानस्य = विलम्बं कुर्वतः"।

को विहातुं समर्थः &c. On this *Mahima.* has the following remark:—"तावदेव कृतिनां हृदि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः यावदेव न कुरंगचक्षुषां ताड्यते चटुललोचनांचलैः"॥

Bharata, Sanâtana, Râmanâtha Haragovinda, Kalyânamalla, Wilson and others read पुलिनजघनां and interpret:—"पुलिनमेव जघनं यस्याः सा तां तथोक्तां"। *Sâro.* also notices this reading. *Sâroddhârini, Meghalatâ, Mahimasinhagani, Vallabha, Sumativijaya* and others read विपुलजघनां and interpret it thus;—"विस्तीर्णकटितटीं or पृथुकटीं or रम्यजघनप्रदेशां; *Val.* notes:—"पृथुलतीरां पृथुनितम्बां च"।

Sâro. says that the figure of this verse is:—"अत्र रूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासानां संकरः"। But *Su.* gives:—"अत्र रूपोत्प्रेक्षालंकारः"।

(XLVI). (ते) नीचैर्वास्यति &c. This admits of another interpretation, *viz.*, 'will blow beneath thee.'

Val., *Bha.*, *Sanâ.*, *Hara.*, Wilson and others read °पुण्यः for °रम्यः and interpret it as मनोज्ञः or मनोहरः &c.

देवपूर्वं गिरिं &c. The mountain देवगिरि alluded to here may, as Wilson says, be the same with a place called देवगड situated south of the Chambal in the centre of the province of Mâlvâ and precisely in the line of the cloud's progress. Anandoram Barooah says:—"On the east of northern Konkana lay the kingdom of नासिक्य which I identify with नाशिक ("अथ वसन्तभानुर्भानुवर्माणं नाम वानवास्यां व्यग्राह्यत्। ...... अश्मकेन्द्रस्तु कुंतलपतिमेकान्ते समभ्यधत्त प्रमत्त एष राजा कियत्यवज्ञा सोढव्या...तदावां संभूय मुरलेशं वीरसेनमृचीकेशमेकवीरं कौंकणपतिं कुमारगुप्तं नासिक्यनागपालमुपजपावः &c." Wilson reads *Sa'sikya*, but it appears to me to be a mistake. ऋचीक occurs as ऋषिक in the हरिवंश, 6724–6.; "अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः। आर्क्षः श्रुतर्वा चानूरः क्राथश्चैवांशुमानपि। जयत्सेनः कलिंगानामधिपश्च महाबलः। पांड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषिकाधिपतिस्तथा। एते सामन्त्यराजानो दाक्षिणात्या महीश्वराः"). The word occurs in the वाराहीसंहिता XIV. 13, along with कर्णाट and चोल and its inhabitants are distinctly mentioned in some of the *Pura'nas*. It probably included देवगिरि (देवगड or Doulatâbâd), celebrated for its great minister हेमाद्रि (हेमाडपंत) in the time of king महादेव and रामचंद्र ("अस्ति शब्दगुणस्तोमः सोमवंशविभूषणम्। महादेव इति ख्यातो राजराजेव भूतले। ...... तस्यास्ति नाम हेमाद्रिः सर्वस्वीकरणप्रभुः &c." *Hemàdri.* This was I believe just before its final subjugation by the Mahomedans in the beginning of the 14th century). ऋक्षदेश was probably another name of this country, as the mountain ऋक्ष is partially situated in it and the हरिवंश in the passage already quoted, introduces its chief as आर्क्ष or king of ऋक्ष. Dr. Fleet in his Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. III. Inscriptions of the early Gupta kings, gives the following position of देवगड at page 107th. He says:—"The village of Dêôgada, is situated about sixty miles to the south-west of Jhansi, in Scindia's Dominions in Central India." This hill is the site of a temple of कार्तिकेय. (see next verse).

काननोदुम्बराणां &c. *Sâro.*, *Mahima.*, *Su.*, and *Val.* have the following remarks on this;—"अनेन देवगिरिपरिसरे वनगजप्राचुर्यं"। "अनेन देवगिरिपरिसरे गजप्राचुर्यमुक्तं"। "उदुम्बराणि घनागमसमये पच्यन्ते इति व्यज्यते"॥ "देवगिरिपार्श्वे प्रभूतानि उदुम्बराणि तानि हि मेघागमे एव पच्यन्ते"॥ "तद्वशात्पाकोत्पत्तेस्तेषामिति भावः"॥

Sâro. and *Su.* speak of the figure of this verse as:—अत्रानुमानालंकारः।

(XLVII). पुष्पमेघीकृतात्मा &c. 'Thyself turned into a cloud of flowers.' *Sâro.*, *Su.*, and *Mahima.* say:—"पुष्पवर्षुको मेघः कामरूपत्वात्" "स्वेच्छारूपत्वान्मेघस्तु कामरूपीति वचनात्."

व्योमगंगाजलार्द्रैः &c. On this *Sa'ro.* has:—"अनेन पुरुषाणां पवित्रताधिक्यमस्य च तदुत्पन्नत्वेन प्रीत्यतिशयश्च प्रकाश्यते"।

हुतवहमुखे संभृतं. &c. This alludes to the birth of *Skanda* from *Agni* and hence this epithet अग्निभूः (*Cf.* पावकिः in the next verse). The god *Siva*, in company with his wife *Pârvati*, cast his seed into *Agni*, who being unable to bear it, cast it into the Ganges; she accordingly was delivered of the deity, *Skanda*; who was afterwards received and reared, among thickets of शर reeds, by the six daughters of a king, named कृत्तिका; whence he is called शरजन्मा. (*Cf.* शरवणभवं in the verse 49th). He was the commander of the army of the gods with *Târaka* whom he slew in a battle. *Cf. Sâro:* —"तारकासुरसंहरणार्थं हरेण हैमवत्यां पुत्रमुत्पादयता अतिशयतांतमेध्यानां (?) तद्धातुं धर्तुमशक्नुवत्यां तस्यां शिखिमुखे निहितमतस्तं शिखिवाहनमग्निभूरित्यामनन्ति"। On this *Su.* has the following notes:—"मुखग्रहणं तु शुद्धिसूचनार्थं । तदुक्तं शंभुरहस्ये । "गवां पश्चाद्विजस्यांत्रियोगिनां दृक्चेर्वचः परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवाह्निवाजिनाम्" इति। *Val.* notes:—"असुरोपद्रुतसुररक्षार्थं हि कार्तिकेयो हरेण गौर्यां जनित इत्यागमः। तच्च शुक्रं स्वस्थानचलितमग्निना पीतमभूत्"। Dowson in his Classical Dictionary of Hindu Mythology says:—कार्त्तिकेय is the name of the god of war and the planet Mars, also called स्कन्द. He is said in the महाभारत and रामायण to be the son of शिव or रुद्र, and to have been produced without the intervention of a woman. शिव cast his seed into fire, and it was afterwards received by the Ganges: कार्तिकेय was the result; hence he is called अग्निभू and गंगाज. He was fostered by the Pleiades (कृत्तिका) and hence he has six heads and the name कार्तिकेय. His paternity is sometimes assigned to Agni; गंगा and पार्वती are variously represented to be his mother. He was born for the purpose of destroying तारक, a दैत्य whose austerities had made him formidable to the gods. He is represented as riding on a peacock called परवाणि, holding a bow in one hand and an arrow in other. His wife is कौमारी or सेना. He has many titles: as a warrior he is called महासेन, सेनापति; सिद्धसेन, 'leader of the Siddhas;' and युधरंग; also कुमार 'the boy;' गुह, 'the mysterious one;' शक्तिधर, 'spear-holder'; and in the south he is called सुब्रह्मण्य. He is गंगापुत्र; शरभू; तारकाजित्; द्वादशाकर; द्वादशाक्ष; and ऋजुकाय. And further he says that the वायुपुराण attributes the splitting of the क्रौंच mountain to कार्तिकेय. Indra and कार्तिकेय

had a dispute about these respective powers, and agreed to decide it by running a race round the mountain. They disagreed as to the result, and therefore appealed to the mountain, who untruly decided in favour of Indra. "कार्तिकेय hurled his lance at the mountain and pierced at once it and the demon महिष." A confederate of the demon तारक, against whom कार्तिकेय led the gods and triumphed.

For the legend of कुमार see कुमारसंभव IX 1–15 verses; also *Râmâyana, Bâlakânda*, canto, 37. "ते गत्वा पर्वतं राम कैलासं धातुमंडितं। अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवताः॥ देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन। शैलपुत्र्यां महातेजो गंगायां तेज उत्सृज॥ देवतानां प्रतिज्ञाय गंगामभ्येत्य पावकः। गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियं॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूपमधारयत् स तस्या महिमां दृष्ट्वा समन्तादवशीर्यत॥ समन्ततस्तदा देवीमभ्यषिञ्चत पावकः। सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गंगाया रघुनन्दन" ॥ &c. *Cf.* "सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।" *R.* II. 75.

Sâro. says that the figure of this verse is:—ऊर्जस्वि and thus defines, "यदुत्कर्षवतार्थेन रसभावैस्तु संस्तुतं ऊर्जस्वि रूढाहंकारमलंकारं विदुर्बुधाः" ॥ But *Su.* calls it to be the जातिरलंकारः and thus defines:—"नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती। स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा" ॥

(XLVIII). ज्योतिर्लेखावलयि &c. *Cf.* "असौ मुखालम्बितहेमसूत्रं। बिभ्रन्मणि मण्डलचारुशीघ्रम्। अलातचक्रप्रतिमं विहंगः। तद्रागरेखावलयं तनोति" ॥ *Vi.* v. 15. Here the circles of light are beautifully depicted.

कुवलयदलप्रापि &c. *Mallinâtha* notices another interpretation of this which is:—On the ear 'which (always) bears a lotus-leaf;' taking the expression as an adjective of कर्णे. *Sâro.* and *Mahima.* take the expression, like *Mallinâtha*, as an adjective to कर्णे; but *Vallabha* and *Sumativijaya* make it an adjective of बर्हं. "कथं भूतं बर्हं कुवलयदलप्रापि = कुवलयदलप्रापनशीलं." *Su.* "तच्च (बर्हं) कुवलयपद (as he appears to have read) प्रापि=उत्पलस्थानारूढं." *Val.*

पावकेस्तं मयूरं &c. For the epithet पावकिः applied to *Skanda*, *vide* note on the above verse. He is represented as riding a peacock.

गर्जितैर्नर्तयेथाः &c. *Val.* says, "जलदरवनिशमनाद्धि बर्हिणो नृत्यं." *Sâro.* notes, "निसर्गादेव जलधरध्वनिभिः शिखण्डिनस्ताण्डवमारभन्ते." *Cf.* "जलदपंक्तिरनर्तयदुन्मदं। कलविलापि कलापिकदम्बकम्" ॥ *Si.* VI. 30. We have also the frequency of the allusion to the delight the peacock is supposed to feel upon the appearance of cloudy and rainy weather.

Bharata, Sanâtana, Râmanâtha, Hara-Govind and others read आप्याययेः for पावकेः; where *Bharata* notes:—"तं मयूरं प्रथममाप्यायये-

स्तर्पयिष्यसि त्वन्निष्यन्दशीतलजलेनेत्याक्षेपात्पश्चाद्दाप्यायनानन्तरं गर्जितैर्ध्वनिभिर्नर्तयेथाः नर्तयिष्यसि"।

Sâro. says that the figure of this verse is उदात्तं and thus defines: —"आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्वमनूत्तमम् । उदात्तं नाम तं प्राहुरलंकारं मनीषिणः"। But *Su.* says:—अत्र जातिरलंकारः.

(XLIX). शरवणभवं &c. For this epithet of *Skanda*; see note on verse 47th. *Val.* says:—"अग्नेरासाद्य वीर्यं सोढुमक्षमया गंगया शरवणे त्यक्तमित्यतः शरजत्वं स्कन्दस्य"। *Cf.* "ततः शरवणे शापभयेन व्रीडया सह। तद्गर्भजातमुत्सृज्य ता गृहानभितो ययुः"। *Ku.* X. 60. See also the same 43–61.

स्रोतो मूर्त्या सुरभितनयालंभजां &c. This river is known as the चर्मण्वती, because it was formed of the blood of many kine slaughtered by रन्तिदेव, when he performed cow-sacrifices in ancient times. It's modern name is the Chambal. *Cf. Sâro.*, "तेन हि राज्ञा यज्ञेषु भूरयः सुरभितनयाः किलालब्धास्तच्चर्मचयच्युतरसनिष्यन्दोपचयाच्चर्मण्वती सरिदुदियाय"। *Val.*:—"तेन हि नृपेण क्रतुष्वतिबंहीयो रणे सुगावः संज्ञपिता यासां रुधिरेभ्यश्चर्मभ्यश्च चर्मण्वती संपन्नेत्यागमः"।*Su.*:—"यतो हि रन्तिदेवेन राज्ञा गोमेधयज्ञेषु शतशो धेनव आहूतास्तद्रक्तनदीप्रवाहेण चर्मण्वती नदी जातेति प्रसिद्धिः"।

जलकणभयात् &c. *Sâro.* says, "तेषां हि वीणास्तोयबिन्दुस्पर्शाद्विस्वरीभवन्ति"। *Val.* says, "तंत्री हि जलार्द्रा विस्वरा भवति" । *Su.* says, "जलार्द्रीभूतायां वीणायां सिद्धा न गास्यन्तीति भावः"।

Bharata, *Sanâtana*, *Haragovinda*, Wilson and others read दत्तमार्गः, *Râmanâtha* and others read दत्तवर्त्मा, *Vallabha* and others read त्यक्तमार्गः for मुक्तमार्गः.

रन्तिदेवस्य &c. This is the name of a king of दशपुर son of संकृतिः and sixth in descent from *Bharata.* Dowson says:—"A pious and benevolent king of the Lunar race; sixth in descent from Bharata. He is mentioned in महाभारत and Purânas as being enormously rich, very religious, and charitable and profuse in his sacrifices. The former authority says that he had 200,000 cooks, that he had 2000 head of cattle and as many other animals slaughtered daily for use in his kitchen, and that he fed innumerable beggars daily with beef." रौद्राश्व a king born in the line of the Purus had a son named ऋतेयु. His descendant was Bharata whose son was मन्यु. This king मन्यु had five sons. His fourth son नरपुत्रसंकृति married सत्कृति from whom he got two sons of whom रन्तिदेव was the younger. He was also called सांकृति. (See महाभारत–द्रोणपर्व Cha. 67; वनपर्व Cha. 294; शांतिपर्व chapter 29; see also भागवत IX. 21). See विष्णुपुराण, page 450, Wilson's edition.

Cf. "यथा यज्ञो रतिदेवस्य राज्ञः । तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य । पारिक्षितं स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः । *Mabh*: आदिपर्व, 52-3. *Sâro.* and *Su.* say that the figure of this verse is:—रूपकं.

(L.) वर्णचौरे &c: 'The stealer of colour or hue.' Being of the same dark blue colour as the wielder of the शार्ङ्ग bow *i. e.* कृष्ण; a hue the poet charges the Cloud with having stolen. *Cf.* शार्ङ्गिणो वर्णचौरे=विष्णुवर्णानुकारिणि मधुमथनसवर्णे. *Sâro.*

एकं &c. 'Having one string only.'

मुक्तागुणमिव भुवःस्थूलमध्येन्द्रनीलं. &c. This comparison, when understood, says Wilson, is happily imagined; but to understand it, we must suppose ourselves above the cloud, and tobe looking obliquely downwards upon its dark body; as shining drops of rain form a continuous line on either side of it, and connect it with the earth. Cf. एतेन वसुमती मुक्तामालालंकृता चर्मण्वत्यपि त्विन्द्रनीलत्विषा श्लिष्टं विशिष्टभूषणांगं प्राप्स्यति । यतो भूषणस्यापि भुषणान्तरं संभवति । तथा चोक्तं । "अलंकारस्य कवयो यत्रालंकरणान्तरं । असंत्वष्टा निबध्नन्ति हारादेर्मणिबन्धवत्" ॥ *Sa'ro.* "सिन्धूनद्या हि सविस्तृतमौक्तिकमालाया उपमा मेघस्य तन्मध्ये स्थूलमध्येन्द्रनीलस्योपमा यथा नार्या मौक्तिकमाला स्यात्तथा इयं भूम्याः मौक्तिकमाला, देवाः दृष्टीः प्रसार्य द्रक्ष्यन्तीति भावः । अत्रोपमालंकारः ।" *Su.*

(LI). दशपुरवधू &c.—दशपुर Lit. means 'the district of ten cities.' It must originally be the name of a country and may also, as *Mallina'tha* says, be the name of its capital. It lies north of उज्जयिनी along the bank of the Chambal is identified by the antiquarians with the modern मंदेसुर. Wilson says that if *Mallina'tha* is correct it may possibly be the modern Rintimpore or Rantampore; especially as that town, lying a little to the north of the Chambal, and in the line from उज्जयिनी to ठाणेश्वर, is consequently in the course of the Cloud's progress, and the probable position of दशपुर. Dr. Fleet says:— Mandasôr, (The, Mandesar, Mandesor, Mandesur, Mandisore, Mandosar, Mandsaur, Mundesor, and Mundesoor, of maps &c.) or more properly Dasôr, the ancient दशपुर, on the north or left bank of the river Siwaná, is the chief town of the Mandasôr District of Scindia's Dominions in the Western Mâlwa division of Central India. Dasôr is the name by which, in preference to Mandasôr, the town is habitually spoken of by the villagers and agriculturists of the locality and neighbourhood, and even as far as Indore. And in some bilingual *sanads* or warrants, of about a century and a half ago, I found this form, Dasôr used in the vernacular passages, while the Persian passages of the same documents give the form Mandasôr, So also, Pandits

still habitually use the form दशपुर in their correspondence; a practice with which we may compare the use, also by Pandits, of Ahipura and Nakhapura for respectively Samgaum and Ugargol in theBelgaum District; except that it is doubtful whether these are original Sanskrit names or only pedantic Sanskrit translations of original vernacular names. the local explanation of the name is, that the place was originally a city of the Puranika king दशरथ. But, on this view, the modern name should be Dasrathòr. The true explanation evidently is that,—just as now the town-ship includes from 12 to 15 outlying hamlets or divisions; Khilchîpur, Jankûpurâ, Rampuriyâ, Chandapurâ, Bâlâjanga, &c.—so, when it was originally constituted, it included exactly ten(दश)such hamlets (पुर).— As regards the fuller form of Mandasôr, by which alone the town is known officially and is entered in maps, I cannot at present explain the origin of it. But Dr. Bhagvanlal Indrâji suggested to me that it may perhaps represent मन्ददशपुर, "the distressed or afflicted दशपुर," in commemoration of the over-throw of the town, and the destruction of the Hindu temples in it, by the Musalmâns, in memory of which, even to the present day, the Nâgar Brâhmanas of the place will not drink the water there. And, as tending to support this suggestion, I would mention that one of the Pandits whom I questioned on the spot, gave me Mannadasôr as another form of the name. Another suggestion, by Mr. F. S. Growse, is that the name combines the two names of मड and दशपुर; the former of them being the name of a village, also called Afzalpur, about 11 miles south-east of Mandasôr, from which, it is said, were brought, from ruined Hindu temples· the stones that were used in the construction of the Musalmân Fort at Mandasôr. The true explanation, whatever it may be, would probably be found in the दशपुरमाहात्म्य, which is extant, but which I did not succeed in obtaining for examination.—In addition to the present inscription, the ancient Sanskrit name, दशपुर occurs also in line 2 of an early Nâsik inscription of Ushavadâta; and in another inscription at Mandasôr itself, dated (Vikrama)— Samvat 1321 (A. D. 1264—65) Guru (Vâra) or Thursday, the fifth day of the bright fortnight of the month भाद्रपद, which is on a white stone built into the wall on the left hand inside the inner gate of the eastern entrance of the Fort:- Under the same name, the place is also mentioned in connection with अवन्ती (उज्जयिनी) in the बृहत्संहिता. XIV. VV. 11—16. See Corpus Inscriptionum Indicarum. p. 79.

कुन्द &c. The कुन्द, as Wilson says, bears a beautiful white flower; and the large black bee (भृंग) being seated in the centre of its cup, they afford a very delicate and truly poetical resemblance to the dark iris, and white ball of a full black eye. *Cf*. *Su*. "कुन्दकुसुमप्रेरणानुयायिभ्रमरशोभानुकारिणाम्." *Val*. "कुंदानां सितत्वादलीनां च कालत्वात्," and futher on he remarks:—"यद्यपि कुतूहलविशेषणान्येतानि तथापि वस्तुबलात्तद्दत्तानां नेत्राणामिवैते गुणाः" ।

नेत्रकौतूहलानां &c. On this *Sâro*. and *Mahima*. have the following notes:—तेषां दशपुराभिधाननगरनारीनयनाश्चर्यालोकनानां कौतुकं कारणं विलोकितं कार्यं कारणे कार्योपचारात्कौतुकं जनयन् निरीक्षितानां इति भावः। दशपुरस्योपरिभागेन भूत्वा भवता गन्तव्यमिति भावः" । *Su*. notes:—"एतेन दशपुरनगरस्योपरिष्टाद्भवतां गन्तव्यं त्वया." *Val*. says:—"पुरनिकटेन यायाः."

°विभ्रमाणां &c. On this *Mahima*. has the following note:—यदुक्तं । "हावो मुखविकारः स्याद्भावश्चित्तसमुद्भवः। विलासो नेत्रयोर्ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः"।

उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् &c. *Sa'ro*. dissolves the compound in the following way:—"उपर्युपरिष्टात् विलसन्ती स्फुरन्ती कृष्णसारा काकधवला अथ वा कृष्णेन कृष्णवर्णेन सारा शबला प्रभा येषां तेषां तथोक्तानां" ।

Bharata, Wilson and others read श्रीजुषाम् for श्रीमुषाम्, where *Bharata* interpretes;—"श्रियं शोभां जुषन्ति भजन्ति यानि तानि तेषाम्" ।

Sa'ro. and *Su*. say that the figure of this verse is उपमा.

(LII). ब्रह्मावर्त &c. It is the name of a country north-west of हस्तिनापुर. It is bounded by the rivers सरस्वती and दृषद्वती. It is thus described by the sage मनुः.

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते." II: 17. "Between the two divine rivers, सरस्वती and दृषद्वती, lies the tract of land which the sages have named ब्रह्मावर्त, because it was frequented by the gods."

कौरवं क्षेत्रं &c. The modern कुरुक्षेत्र (the battle-field of the Kurus), one of the sacred places of the Hindus, the scene of the celebrated battle between the Kurus and the Pandavas. It lies a little to the South-east of ठाणेश्वर. It is thus described by the sage मनु.

"कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनंतरः" ॥ II. 19. and further on he says:—"हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ आ समुद्रात्तु वै पूर्वाद् समुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ II. 21-22 Anandoram Boorooah says:-" To the south east of Kûlûta, beyond Trigarta, lay the district of कुरुक्षेत्र, residents of which were styled Sârasvatas from the river सरस्वती and misnamed Vikarnikas or " having small ears. " ("सारस्वता विकर्णिकाः Hemachandra IV. 24).

In the limited sense, it is the tract near the holy lake still known by the same name to the south of स्थानेश्वर (थाणेश्वर). In the larger sense it extended from the south of the सिरस्वती to the north of the दृषद्वती ("दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्योत्तरेण च । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे" । वनपर्व 83. 4.). In some places, it is used indiscriminately with Samanta Panchaka "(कुरुक्षेत्रं परं पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च । दैवतैर्ऋषिभिर्जुष्टं ब्राह्मणैश्च महात्मभिः । तत्र वै योत्स्यमाना ये देहं त्यक्ष्यन्ति मानवाः । तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह मारिष । तस्मात् समन्तपञ्चकमितो याम द्रुतं नृप । प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः" । शल्यपर्व 55. 7–9 "तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानाञ्च मचक्रुकस्य । एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते"। वनपर्व 83.208.), which literally means "the tract around the five tanks." These are said to have been made by परशुराम, son of जमदग्नि, with the blood of Kshatriyas he annihilated ("ततो रामह्रदान्गच्छेत्तीर्थसेवी समाहितः। तत्र रामेण राजेन्द्र तरसा दीप्ततेजसा। क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः" । वनपर्व 83. 27). The accounts given in our gazeteers are too brief to identify these tanks. But any one with local knowledge should feel no difficulty about it. कुरुक्षेत्र is associated with the oldest events of Indian history and contains the largest number of holy places. Here at आदित्य or सूर्यतीर्थ, the sun is said to have acquired his lordship over the luminaries and Vishnu to have killed in the earliest stage of creation the demons मधु and कैटभ ("तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः । यत्रेष्ट्वा भगवान् ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम । ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावश्चाभ्यपद्यत ॥...... तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ" । शल्यपर्व 48. 17–22) This is probably the सूर्यकुण्ड a few miles S. E. of Thânesvara. Here at ब्रह्मयोनि, Brahmà is said to have created the worlds and विश्वामित्र and others to have acquired their Brahmanity ("ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाल्लोँकपितामहः । यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः । तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः । सिंधुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः । ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः" ॥ शल्यपर्व 39. 35–7). From the description of Balabhadra's journey in the शल्यपर्व, I have not doubt that it is near पृथूदक

which has been identified with modern Pehoa, 14 miles west of Thânesvara. There is one thing to be noted, however, the तीर्थ is on the north bank of the सरस्वती ("सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् । पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वो मरणं तपेत् " । शल्यपर्व 44.33-4), while the village stands on the south (Cunningham's Geo.p. 336). Here at स्थाणुतीर्थ, स्थाणु (Siva) adored the सरस्वती and his son स्कन्द was elected General of the gods against the great demon तारक ("आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान् । पूर्वतः पाश्र्वतश्चासीद्विश्वामित्रस्य धीमतः । यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीं । स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो । तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नराधिप । सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम्" । शल्यपर्व 42.4-7). This, I believe, is the modern Thânesvara a corruption of स्थाण्वीश्वर or God Siva. The country around this is still associated with the scenes of the great war of the महाभारत. चक्रतीर्थ is still pointed out as the spot where Krishna took up his discus to kill the invincible भीष्म (भीष्मपर्व cha, 106. The story of the discus does not, however, appear in the original Sanskrit, but in the vernacular works). चक्रव्यूह is still pointed out as the place where द्रोण arrayed in circle the army of the Kauravas (See द्रोणपर्व ch. 34). Here fell after a glorious fight the brave अभिमन्यु (See द्रोणपर्व ch. 49), whence the place is also called Amin (See Cunningham's Geo. p. 338). The arrow-bed of भीष्म-the scene of the शान्तिपर्व and the अनुशासनपर्व is probably still known to the people.

In the ऋग्वेद, Indra is said to have slain वृत्र with the bones of the horsehead of दधीच found in शर्यणावत् (" इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेऽपश्रितं । तद्विदच्छर्यणावति । 1. 84. 14. The story of Dadhicha's bones is mentioned in a slightly modified form in chap. 51 of शल्यपर्व). The scholiast derives the word from शर्यणा, which he says is a country, and quotes an authority that शर्यणावत् is a lake situated on the out skirts of कुरुक्षेत्र ("शर्यणा नाम देशः । तेषामदूरभवं सरः शर्यणावत्" । "शर्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धे सरः स्यन्दते" ॥ . 1-84. 14 and 13). I have, therefore, little doubt that it is the lake on the south of Thanesvara and that the bordering people were called Saryanas. दधीचतीर्थ is mentioned in the वनपर्व ("ततो गच्छेत धर्मज्ञ दधीचस्य महात्मनः । तीर्थं

पुण्यतमं राजन् पावनं लोकविश्रुतम् । यत्र सारस्वतो जातः सोऽङ्गिरास्तपसो निधिः । 83. 186–7), which is also called सारस्वततीर्थं as the birth-place of the sage अंगिरस् ("सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह " । शल्यपर्व 52. 2). It was visited by बलभद्र after सोमतीर्थ sacred to the Light of Night and reputed Scene of Táraka's fall(" जगाम सोमस्य महत्सुतीर्थं । यत्रायजद्राजसूयेन सोमः साक्षात् पुरा विधिवत् पार्थिवेन्द्र । अत्रिर्धीमान् विप्रमुख्यो बभूव होता यस्मिन् क्रतुमुख्ये महात्मा । यस्यान्तेऽभूत्सुमहान् दानवानां दैतेयानां राक्षसानाञ्च देवैः । यस्मिन् युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान" ॥ शल्यपर्व 43. 46–8).

In the आदिपर्व, the demon kings सुन्द and उपसुन्द are said to have reigned at कुरुक्षेत्र("एवं सर्वादिशो दैत्यौ जित्वा क्रूरेण कर्मणा । निः सपत्नौ कुरुक्षेत्रे निवेशमभिचक्रतुः" । 208–7). The demon नमुचि whose story is alluded to in Rig Veda **1**-53, is connected with the same place. From the description in the वनपर्व, it seems to have had four gates consecrated to four Yakshas. Mankana–Machakru—Taruntu— and Aruntu ("ततो मंकणकं नाम द्वारपालं महाबलं । यक्षं समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ...... ततो गच्छेत धर्मज्ञ द्वारपालं तरुन्तुकम् ॥ ...... ततो गच्छेत राजेन्द्र द्वारपालमरुन्तुकम् ॥ तच्च तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ......अभिवाद्य ततो यक्षं द्वारपालं मचक्रुकम् कोटितीर्थमुपस्पृश्य लभेद्बहुसुवर्णकम्" । 83. 9, 15, 52, 200). The first I believe was also called सप्तसारस्वत or junction o seven streams("सप्तसारस्वतं तीर्थं ततो गच्छेन्नराधिप। यत्र मंकणकः सिद्धो महर्षिर्लोकविश्रुतः" ॥ 83. 116), whose names are given in the गदापर्व but are evidently partially fancied like the त्रिवेणी of Allahabad. Two other junctions ("कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत । स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता । पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागे कृता मतिः" । 83. 95–7. " सरस्वत्यारुणायाश्च संगमं लोकविश्रुतं " ॥ 151) are mentioned which are borne out by the map viz. of the कौशिकी and the दृषद्वती on the west and of the अरुणा with the सरस्वती below Thanesvara. Near the first is व्यासस्थली—the modern Basthali. Not far from the junction of the two combined streams (सरस्वती and दृषद्वती) is the modern Kaithal, which is probably कपिष्ठल of the वनपर्व ("कपिष्ठलस्य केदारं समासाद्य सुदुर्लभं । अन्तर्धानमवाप्नोति

तपसा दग्धकिल्मिषः" । 83. 74). See also the paras 69th, 70th, 71st and 72nd pages 61—64.

गाण्डीवधन्वा &c Wilson says that as the horses and swords of chivalry received particular names, so the weapons of the Aryan knights have been similarly honoured. **गाण्डिव** is the bow of **अर्जुन**, **शार्ङ्ग** that of **विष्णु**, and **पिनाक** is *Siva's* favourite bow.

क्षत्रप्रधनपिशुनं &c. On this *Sa'ro.* says:—"यदद्यापि तत्र चिरंतननाराचादिशस्त्रशकलानि विलोक्यन्ते." *Val.* says:—"अद्यापि शरशकलाद्यालोकनात्."

Bharata, Sana'tana, Ramana'tha, Haragovinda, Kallya'namalla, Sa'roddharini, Meghalata', Vallabha, Sumativijaya, Mahimasinhagani, Wilson and others read **अधः** for **अथ** and interprete thus:—"अधः अधःप्रदेशे वर्तमानं ब्रह्मावर्तं सरस्वतीदृषद्वत्योरान्तरालवर्तिनं ब्रह्मावर्ताख्यं जनपदं छायया गाहमानः सन् प्रतिबिम्बेन व्याप्नुवन् सन् " *Sa'ro.*

"ततो ब्रह्मावर्ताख्यं जनपदविशेषमधश्छायया प्रतिम्बिन संस्पृशंस्त्वं कुरुक्षेत्रं यायाः।" *Val.* "अधः कुरुक्षेत्रस्याधः पश्चाद्भागे वर्तमानं ब्रह्मावर्तं जनपदं गाहमानः कया छाययात्मप्रतिबिम्बेन." *Su.* "ब्रह्मावर्तं जनपदं देशं छाययात्मप्रतिबिम्बेन ब्रह्मावर्ताख्यं देशं अवगाहमानः कुत्र अधः कुरुक्षेत्रस्याधोभागे वर्तमानमित्यर्थः" । *Mahima.* "ब्रह्मावर्तं ब्रह्मावर्तनामानं जनपदं देशमधश्छायया अधस्तात्प्रतिबिम्बेन गाहमानः आलम्बमानः." *Bha.* "ब्रह्मावर्तं जनपदं देशं छायया अधस्ताद्गाहमानः समाक्रामन्." *Ra'ma.*

"छायया स्वकीयप्रतिबिम्बेन ब्रह्मावर्तं जनपदं ब्रह्मावर्ताख्यदेशं गाहमानः व्याप्नुवन् क्व अधः कुरुक्षेत्रस्याधोभागे वर्तमानमित्यर्थः." *Kalya'.*

Saro'. and *Su.* say that the figure of this verse is **उपमा.**

(LIII). **रेवतीलोचनाङ्कां** &c. *Revati,* wife of **बलराम,** always joined him in his drinking revels and hence the wine is said to be marked by the reflections of her eyes. *Cf.* "घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युति । रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ " ॥ *Si.* II. 16. On this *Sa'ro.* has the following note:—"सहपानाद्रेवतीलोचनप्रतिबिम्बसंभवः। अनेन बन्धुयुद्धविषादेन च रेवतीमपि परित्यक्तवानिति सूच्यते" । *Mahima.* notes:—"बन्धुयुद्धविषादेन रेवतीं वल्लभामपि त्यक्तवानिति व्यज्यते" । *Su.* observes:—"मदिरापात्रे रेवत्या मुखावलोकनात्तां राज्ञीं मदिरां च त्यक्त्वा युद्धे बन्धुवधपापभीरुःसन् बलभद्रस्सरस्वतीतीर्थं सेवितवानिति भावः" । *Val.* observes the following: —"हालात्यागेन तीर्थसेवने नियमग्रहणं प्रतिपाद्यते." ।

बन्धुप्रीत्या &c. When the great war arose between the *Kurus* and the *Pa'ndus,* **बलराम** refused to take part therein through his friendship for both the parties. *Cf. Sa'ro.* " द्वयेपिऽमम बान्धवास्तेषां कतमेऽपि मम योधनीया न भवन्तीति विचार्य संजातविषादः सरस्वतीतीर्थमाश्रितः" । also *Val.* "द्वयेऽपि मे बान्धवास्तत्कुत्र व्रजामीति वेश्म त्यक्त्वा सरस्व-

तीतीर्थयात्रामकरोत्" । *Su.* says:—"संग्रामे बन्धुवधपापभयेन." *Mahima* observes:—कौरवाः पाण्डवाश्च मम बान्धवा कथं मया योधनीयाः इति विमृश्य सञ्जातविषादः सरस्वतीतीर्थमाश्रितः" ।

लांगली &c. Lit. 'The plough-bearer,' name of बलराम, the eldest brother of कृष्ण. He was very fond of wine and is represented as armed with a plough-share which he used to employ for dragging his enemies. He was married to रेवती, to whom he was firmly attached. बलराम is the name of the elder brother of कृष्ण. When कृष्ण is regarded as a full manifestation of विष्णु, बलराम is recognised as the seventh अवतार or incarnation in his place. According to this view, which is the favourite one of the Vaishṇavas, कृष्ण is a full divinity and बलराम an incarnation; but the story of their birth as told in the महाभारत, places them more upon an equality. It says that विष्णु took two hairs, a white and a black one, and that these became बलराम and कृष्ण, the children of देवकी. बलराम was of fair complexion, कृष्ण was very dark. As soon as बलराम was born, he was carried to गोकुल to preserve his life from the tyrant कंस, and he was there nurtured by नन्द as a child of रोहिणी. He and कृष्ण grew up together, and he took part in many of Krishṇa's boyish freaks and adventures. His earliest exploit was the killing of the great Asura धेनुक, who had the form of an ass. This demon attacked him, but बलराम seized his assailant, whirled him round by his legs till he was dead, and cast his carcase into a tree. Another असुर attempted to carry off बलराम on his shoulders but the boy beat out the demon's brains with his fists. When कृष्ण went to मथुरा, बलराम accompanied him, and manfully supported him till कंस was killed. Once, when बलराम was intoxicated, he called upon the यमुना river to come to him,that he might bathe; but his command not being heeded, he plunged his ploughshare into the river, and dragged the waters whithersoever he went, until they were obliged to assume a human form and beseech his forgiveness. This action gained for him the title यमुनाभिद् and कालिंदीकर्षण, breaker or dragger of the यमुना. He killed रुक्मिन् in a gambling brawl. When साम्ब, son of कृष्ण, was detained as a prisoner at हस्तिनापुर by दुर्योधन, बलराम demanded his release, and, being refused, he thrust his ploughshare under the ramparts of the city, and drew them towards him, thus compelling the Kauravas to give up their prisoner. Lastly he killed the great ape द्विविद, who had stolen his weapons and derided him.

Such are some of the chief incidents of the life of बलराम, as related in the Purânas, and as popular among the votaries of कृष्ण. In the महाभारत he has more of a human character. He taught both दुर्योधन and भीम the use of the mace. Though inclining to the side of the Pândavas, he refused to take an active part either with them or the Kauravas. He witnessed the combat between दुर्योधन and भीम and beheld the foul blow struck by the latter, which made him so indignant that he seized his weapons, and was with difficulty restrained by कृष्ण from falling upon the Pândavas. He died just before कृष्ण, as he sat under a banyan tree in the outskirts of द्वारका.

Another view is held as to the origin of बलराम. According to this he was an incarnation of the great serpent शेष, and when he died the serpent is said to have issued from his mouth.

The "wine loving" बलराम (मधुप्रिय or प्रियमधु) was as much addicted to wine as his brother कृष्ण was devoted to the fair sex. He was also irascible in temper, and sometimes quarrelled even with कृष्ण; the Purànas represent them as having a serious difference about the स्यमन्तक jewel. He had but one wife, रेवती, daughter of king रैवत, and was faithful to her. By her he had two sons, निशठ and उल्मुक. He is represented as of fair complextion, and, as नीलवस्त्र, 'clad in a dark-blue vest.' His especial weapons are a club (खेटक or सौनन्द), the ploughshare (हल), and the pestle (मुसल), from which he is called फाल and हाल, also हलायुध, 'plough-armed'; हलभृत्, 'plough-bearer'; लांगलि and संकर्षण, 'ploughman'; and मुसली, 'pestle-holder'. As he has a palm for a banner, he is called तालध्वज. Other of his appellations are गुप्तचर, 'who goes secretly';' कामपाल and संवर्तक. See Dowson's Mythology p. 40. See *Vishnu Pura'na*. p. 510, 604, Wilson's edition.

अभिगमं &c. *Pa'rsva'bhyudaya*, *Vallabha*, *Bharata*, *Ra'mana'tha*, and three other MSS. read अधिगमं which directly gives the sense of सेवन, (*Cf*. *Val*. अधिगमं=सेवनं विधाय) while अभिगम primarily means संगम which is not the sense required by the context. Therefore the reading अधिगम is preferable. *Mallina'tha* too appears to have read अधिगमं, for he interpretes अभिगमं=सेवां. How could a commentator like *Mallina'tha* have interpreted अभिगमं by सेवां? It seems, however, that the mistake must have risen from the ignorance of scribes who copied the commentaries. But none of

the MSS. of *Mallina'tha's* commentary in our possession gives the reading अधिगमं.

सौम्य &c. On this the *Sa'ro.* and *Mahima.* have the following remark :—"अत्र सौम्य पदेन तीर्थसेवाफलं लभते इति सौम्येन त्वया भवितव्यमिति भावः" । *Val.* says:—"सोम इव सौम्यः" ।

अभिमतरसां &c. On this *Su.* has the following note:—"एतेन जलस्य प्रसिद्धतीर्थमुक्तं" ।

सारस्वतीनां &c. The *Sarasvati*, says Wilson, falls from the southern portion of the Himalayas and runs into the great desert where it is lost in the sands. Hence it is always invisible. It flows a little to the north-west of कुरुक्षेत्र and ranks in sacredness with the Ganges and the Jamna'. See note on the 52nd verse page 55.

अन्तःशुद्धः &c. The sin, from which बलराम is said to have been purified by his ablutions in the waters of the *Sarasvati*, was the murder of a charioteer caused by कृष्ण to be perpetrated by the hand of बलराम. *Cf*: *Val.* अन्तःस्वच्छः (he seems to have read स्वच्छः for शुद्धः) अभ्यन्तरनिर्मलो भविता भविष्यसि । केवलं वर्णमात्रेण कृष्णः कालः इति महापुण्योक्तिः"।

असि भविता &c. This may be taken as भवितासि (2nd per. sing. of the periphrastic Future of भू), the two parts of the form being separated and transposed *Cf*. *R.* IX. 68 and *Mallina'tha* thereon. *Sa'ro.* and *Su.* say that the figure of speech of this verse is अनुमान.

(LIV). अनुकनखलं &c. The name कनखल is thus explained in the गंगाद्वारमाहात्म्य a section of the *Skända Purana*:—"खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् । अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः"॥ "What man (कः) so wicked (खल) as not to obtain (न) future happiness from bathing there? Thence the holy sages have called this तीर्थ, by the name of कनखल." It is a village near हरिद्वार on the west bank of the Ganges and is one of the sacred spots of the Hindus. It also occurs in this passage of the हरिवंश, portion of the महाभारतः—"गंगाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र संस्थितः । and also "स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते" । The name is still retained. *Cf*. "तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीदस्माच्छृणुतैतत्कथामिमाम् । तीर्थं कनखलं नाम गंगाद्वारेऽस्ति पावनम्." *Katha'. Sa'.* III. 4. हरिद्वार is situated on the right bank of the Ganges at the southern base of the शिवालिक mountains. This is the गंगाद्वार of Sanskrit writers. The Ganges here rushes into the plains through a gorge of the Sivâlika range and this agrees with the description of गंगाद्वार in the

कथासरित्सागर. Cf. " तीर्थं कनखलं नाम गंगाद्वारेऽस्ति पावनं । यत्र कांचनपातेन जाह्नवी देवदंतिना । उशीनरगिरिप्रस्थाद्भित्त्वा तमवतारिता " ॥ 3. 4.—5. गंगाद्वार is always associated with कनखल a village near हरिद्वार. It (कनखल) was probably also the name of the surrounding mountains. In one verse of the वनपर्व, it is used in the plural (" एते कनखला राजन् ऋषीणां दयिता नगाः " ॥ 135. 5)but generally found in the singular. Cf. " ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः " ॥ वनपर्व 84. 30.(See also the commentary). Near कनखल was कपिलतीर्थ ("नगराजस्य राजेन्द्र कपिलस्य महात्मनः । तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ सर्वलोकेषु विश्रुतं " । वनपर्व 84. 32.), which is still pointed out as कपिलस्थान, and मायापुर (" दशाश्वमेधिकं पुण्यं गंगाद्वारं तथैव च । नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा " । मत्स्यपु. 22. 10.) which is said to have been visited by Hiouen Thsang (See Cunningham's Geo. p. 352–53).

जह्नोः कन्यां &c. The Ganges is here called the daughter of the sage *Jahnu*, who being disturbed in the practice of his religious austerity by the passage of the river, drank up its waters. Upon relenting, however, he allowed the stream to re-issue from his ear. Hence the epithet जाह्नवी. Wilson has the following:–"Jahnu's daughter is गंगा, or the Ganges; which river, "after forcing its way through an extensive tract of mountainous country, here first enters on the plains." It is rather extraordinary that *Ka'lida'sa* should have omitted the name of हरिद्वार, and preferred कनखल, especially as the former occurs in the Puranas, in the स्कन्दपुराण, as mentioned in the note, page 450, vol. XI. of the Asiatic Researches; and in this passage from मत्स्यपुराण, cited in the पुराणसर्वस्व. "सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे" । "The Ganges is everywhere easy of access, except in these places, हरिद्वार, प्रयाग, and her junction with the sea." *Sa'ro* says:—तथा चोक्तं । "गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा"। The geography of the country to the N. E. of कुरुपांचाल is described in the travels of the Pândavas in the later chapters of the वनपर्व. The account in the printed edition is, however by no means, accurate and as the names have remained almost unchanged up to the present day, I cannot do better than supplement it by the accounts in modern works. The गंगा, which is explained in the निरुक्त to mean " flowing " is so called after the confluence of the भागीरथी with the eastern feeder

अलकानन्दा at देवप्रयाग (Deoprâg). The last is formed by the junction at विष्णुप्रयाग (Bishenprâg) of the Dhavalî (Doulee) flowing from the north-east and the विष्णुगंगा (Bishengangâ) flowing from the north-west. On the right bank of the last, a few miles below its source, is situated the celebrated बद्रीनाथ (lord of the jujube)—the reputed abode of नर and नारायण. The place takes its name from an old jujube tree ("तस्याभ्यासे च ददृशुर्नरनारायणाश्रमम् । उपेतं पादपैर्दिव्यैः सदा पुष्पफलोपगैः ॥ ददृशुस्ताश्च बदरीं वृत्तस्कन्धां मनोरमाम्"।वनपर्व 145. 18—9) and is now famous for its temple. Near it is a thermal spring called तप्तकुण्ड probably बिन्दुसरः of the वनपर्व (" तदुपेत्य महात्मानस्तेऽवसन् ब्राह्मणैः सह । मुदा युक्ता . महात्मानस्तत्र ते रेमिरे तदा । आलोकयन्तो मैनाकं नानाद्विजगणायुतं । हिरण्यशिखरं चैव तच्च बिन्दुसरः शिवं " ॥ वनपर्व । 145. 43-4. There is, however, so much confusion in the accounts that I am not all sure of the soundness of this guess. In the सभापर्व ch. III. मैनाक is placed on the north of कैलास). The verses I have quoted here contain also the names of two mountains—मैनाक and हिरण्यशिखर or gold-crested which are probably the lofty ranges which guard बद्रीनाथ on the east and west. In the रामायण, the ऋषभ (" ततः काञ्चनमत्युग्रमृषभं नाम पर्वतम् " ॥ VI. 56. 53. 34.) is called "golden mountain " and हिरण्यशिखर of this passage is probably its descriptive name. अलकानन्दा literally means " the joy of अलका. " According to the कथासरित्सागर, अलका was the capital of निषध (" अस्त्यलंकृतकौबेरीदिङ्मुखा निषधाभिधः । देशस्तत्रालका नाम बभूव नगरी पुरा " ॥ 101. 41). According to the महाभारत, .the good king नल was ruler of निषध (" निषधेषु महिपालो वीरसेन इति श्रुतः । तस्य पुत्रो नलो नाम्नाभूद्धर्मार्थकोविदः " ॥ III. 52. 55.) and from his directions to his wife दमयन्ती after he lost his kingdom (See वनपर्व, ch. 61. The following verses 87. 25.-6. favour my contention: " केदारश्च मतंगस्य महानाश्रम उत्तमः । कुन्तोदः पर्वतो रम्यो बहुमूलफलोदकः ॥ नैषधस्तृषितो यत्र जलं शर्म च लब्धवान् । यत्र देववनं रम्यं तापसैरुपशोभितं " ॥) there can be no doubt that it was in northern India. I am, therefore, inclined to think that निषध formed a part of modern Kumaon, that अलका was its capital, and that it was situated on the अलकानन्दा.

The अलकानन्दा is joined at रुद्रप्रयाग (Roodurprâg) on the

right side by the मन्दाकिनी which rises in the S. W. face of केदारनाथ mountain मदाकिनी is called by अमर "celestial river" ("मन्दाकिनी वियद्गंगा स्वर्णदी सुरदीर्घिका" ॥ 1. 52.). In the वनपर्व 142. 1. 11, one of the feeders—probably the विष्णुगंगा—is called by that name "आकाशगंगा", but in the प्रस्थानपर्व, it seems to be rightly applied to the मन्दाकिनी. The temple of केदारनाथ is still frequented by thousands of Hindu pilgrims and near it is a deep precipice called भैरवझंप, from which people are still said to precipitate themselves to eternity as a preparation for heaven.

The भागीरथी rises in the mountains of Ghurwal and after a course of about 8 miles, emerges at गंगाद्रि (Gangotree) from under a great thick snow-bed lying between lofty mountains. "From the brow of this curious wall of snow," observes an able writer, and immediately above the outlet of the stream, large and hoary icicles depend." These are considered by superstitious Hindus the matted hair of Siva, through which, according to the रामायण, it flows into earth (निपतेत्यब्रवीद्गंगामाभाष्याकाशगां नदीम् जटाकलापं विपुलं विनिकीर्य समन्ततः। ...... तस्याथ वचनाद्गंगामुत्ससर्जत• दा हरः। जटामेकां समाक्षिप्य स्रोतः संजनयन् स्वयम्" ॥ I. 45 ch. According to वनपर्व II. 8 ch., this distinction is shared by the अलकानन्दा). Seven miles below, it is joined at भैरवसंगमं by the जाह्नवी, which rises in the southern base of the culminating range of the Himâlayas. This is considered one of the grandest awe-inspiring places in the world. "The appearance that ruins of a Gothic Cathedral," says the explorer Hodgson, "might have to a spectator within them supposing that thunderbolts and earthquakes had rifted its lofty and massive towers, spires, and buttresses ; the parts, left standing then might, in miniature give an idea of the rocks of Bhairogathi."

About 50 miles below देवप्रयाग, at हरिद्वार, the गंगा finally enters the plains of Hindusthana by three channels, which is probably the original source of the name त्रिपथगा or "going by three ways." In the अमरकोश, गंगा is called "विष्णुपदी" (= flowing from the foot of Vishnu), जह्नुतनया (= born of जह्नु), सुरनिम्नगा (divine stream), भागीरथी (= brought by भगीरथ), त्रिपथगा and त्रिस्रोतस् which mean the same thing, and भीष्मसू (= mother of भीष्म) ("गंगा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा । भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता

भीष्मसूरपि" ॥ I. 10, 31). In the हेमचन्द्रकोश, in addition to similar names, it is called ऋषिकुल्या (=stream for sages), हमवती (=rising in the Himâlaya), त्रिदशदीर्घिका or स्वर्वापी (= heavenly tank), हरशेखरा (=the crest of हर), कुमारसू (=the mother of कुमार), and मन्दाकिनी (=gently flowing), ("गंगा त्रिपथगा भागीरथी त्रिदशदीर्घिका। त्रिस्रोता जाह्नवी मंदाकिनी भीष्मकुमारसूः। सरिद्वरा विष्णुपदी सिद्धस्वःस्वर्गिरवापगा। ऋषिकुल्या हैमवती स्वर्वापी हरशेखरा" ॥ IV. 147–8). It will be seen from my description that जाह्नवी, जह्नुकन्या ("तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोः" ॥ R. VIII. 95), and similar names properly apply only to the जाह्नवी and सुरापगा, स्वर्णदी, आकाशगंगा ("उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगंगापयसः पतेताम्" ॥ Si. III. 8) and similar names only to the मंदाकिनी. सुरदीर्घिका ("ननन्द शक्रश्चिरकालदृष्टां विलोक्य सद्यः सुरदीर्घिकां ताम्" ॥ *Ku.* XIII. 29.) and similar names are, I believe, never applied to the terrestrial Ganges. The legend of भीष्म's birth is given in आदिपर्व ch. 98 and Kumâra's birth in कुमारसंभव canto ten, but the terms भीष्मसू and कुमारसू are seldom applied absolutely to the river. Vishnu's foot is a name of the visible heaven ("अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः" ॥ R. XIII. 1. "वियद्विष्णुपदं" *Amara.* 1. 2. 2.) and विष्णुपदी probably means "falling from the skies" ("वेगं तु मम दुर्धार्यं पतन्त्या गगनाद्भुवम् ......" वनपर्व 108. 22). But according to the 8th chapter of the 2nd book of the विष्णुपुराण although it explains that विष्णुपद means heaven, there is a verse tha the Ganges flows from the nail of Vishnu's left big toe and there are people now who point out to some fancied footprints at हरिद्वार in confirmation of this view. In the plains of Bangal, some miles above Moorshidabâd, the Ganges divides into two channels, the bigger left branch being called पद्मा or पद्मावती ("अस्ति तावद्वंगनामा देशः यस्मिन्न पारावारसदृश्यः पद्मावतीप्रभृतयस्तरंगिण्यः समुल्लसन्ति" ॥ माधवचम्पु III) and the right or western branch भागीरथी which, in the lowest portion, is now eclipsed by the English name of Hugli.

सगरतनयस्वर्ग &c. *Sagara* was a prince of the Solar Race. He commenced a horse-sacrifice. Indra, being afraid of this sacrifice of the king, took the sacrificial steed to the nether world and tied

to a post in a place where the great sage कपिल was practising the religious asceticism. In quest of this sacrificial steed the 60,000 sons of *Sagara* dug the earth and disturbed the sage who in indignation reduced them to ashes. *Cf.* "गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे । तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः" । *R.* XIII. 26. The Ganges was brought down from heaven by भगीरथ the great grand-son of *Sagara* to purify the ashes of his forefathers and raise them to heaven. "ते हि किल कपिलसोपानलंघनीकृतसुक्रयो भस्मसात्संपन्नाः प्रसन्नभगवद्भगीरथानीतत्रिपथगापयःप्लावितभस्मानः पुनरुज्जीवितास्ततस्त्रिदिवमारुरुहुः" । *Sáro.* "ते हि कपिलेन रोषाद्दग्धा भगीरथावतारितया भागीरथ्या प्लावितभस्मानस्त्रिदिवमापुः" । *Val.* "सगरस्य पुत्रा हि किल बहुलकपिलर्षिक्रोधाग्निभस्मीकृताः; । ततः श्रीभगीरथपथप्रस्थितत्रिपथगापयःपूरप्लाविताः स्वर्गमारुरुहुरिति भावः" । *Su.* "सगरतनयाः प्रबलकपिलकोपानलभस्मीकृताः । ततः श्रीभगीरथप्रार्थितत्रिपथगागंगापःपूरप्लाविताः स्वर्गं जग्मुः" । *Mahima.* सगर is the name of a king of अयोध्या, of the Solar race, and son of king Bãhu, who was driven out of his dominions by the Haihayas. Bàhu took refuge in the forest with his wives. Sagara's mother was then pregnant, and a rival wife, being jealous, gave her a drug to prevent her delivery. This poison confined the child in the womb for seven years, and in the interim Báhu died. The pregnant wife wished to ascend his pyre, but the sage और्व forbade her predicting that she would give birth to a valiant universal monarch. When the child was born, और्व gave him the name सगर (स, 'with,' and गर, 'poison'). The child grew up, and having heard his father's history, he vowed that he would exterminate the Haihayas and the other barbarians, and recover his ancestral kingdom. He obtained from और्व the आग्नेयास्त्र or fire weapon, and, armed with this, he put nearly the whole of the Haihayas to death and regained his throne. He would also " have destroyed the Sakas, Yavanas, Kâmbojas, Páradas, and Pahlavas, " but they applied to वशिष्ठ, Sagara's family priest, and he induced Sagara to spare them, but "he made the Yavanas shave their heads entirely; the Sakas he compelled to shave (the upper) half of their heads; the Paradas wore their hair long; and the Pahlavas let their beards grow in obedience to his commands." Sagara married two wives, सुमति, the daughter of कश्यप, and केशिनी, the daughter of Râja Vidarbha, but having no children, he besought the sage और्व for this boon. और्व promised that one wife should have one son; the other, sixty thousand. केशिनी chose the one, apu

her son was Asamanjas, through whom the royal line was continued. सुमति had sixty thousand sons. Asamanjas was a wild immoral youth, and his father abandoned him. The other sixty thousand sons followed the courses of their brother, and their impiety was such that the gods complained of them to the sage कपिल and the god Vishnu. Sagar engaged in the performance of an अश्वमेध or sacrifice of a horse, but although the animal was guarded by his sixty thousand sons, it was carried off to पाताल. सगर directed his sons to recover it. They dug their way to the infernal regions, and they found the horse grazing and the sage कपिल seated close by engaged in meditations. Conceiving him to be the thief, they menaced him with their weapons. Disturbed from his devotions, " he looked upon them for an instant, and they were reduced to ashes by the sacred flame that darted from his person. Their remains were discovered by Ansumat, the son of Asamanjas, who prayed कपिल that the victims of his wrath might be raised through his favour to heaven. Ansumat then returned to सगर, who completed his sacrifice, and he gave the name of सागर to the chasm which his sons had dug, and सागर means 'ocean'. The son of अंशुमान् was दिलीप, and his son was भगीरथ. The devotion of भगीरथ brought down from heaven the holy Ganges, which flows from the toe of Vishnu, and its waters having laved the ashes of the sons of सगर, cleansed them from all impurity. Their Manes were thus made fit for the exequial ceremonies and for admission into स्वर्ग. The Ganges received the name of सागर in honour of सगर, and भागीरथी from the name of the devout king whose prayers brought her down to the earth. The हरिवंश adds another marvel to the story. Sagara's wife सुमति was delivered of a gourd containing sixty thousand seeds, which became embryos and grew. सगर at first placed them in vessels of milk, but afterwards each one had a separate nurse, and at ten months they all ran about. The name of सगर is frequently cited in deeds conveying grants of land in honour of his generosity in respect of such gifts. The whole legend is told in the रामायण—बालकाण्ड, cantos 32 to 35th.

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां &c. *Gouri* or *Pàrvâti*, wife of *Siva*, became extremely jealous of the गंगा, when she made her abode in the hair of *Siva*, and showed her displeasure by knitting her eyebrows.

Cf. Sa'ro. "पतिसंनिहितपत्नासमालोकनकुद्धायाः तस्याः धराधरराजदुहितुः भ्रुकुटिबन्धोपपत्तिः। स्त्रीस्वभावस्तु सुलभेर्ष्यानिर्भरः"। *Val.* "मत्संनिधाविवानया केशा गृह्यन्ते इति गौर्या भ्रुकुटिबन्धः"।

या विहस्येव फेनैः &c. *Cf. Ràmàyana,* अयोध्याकाण्ड. ["जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीं। क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभितां" ॥ Canto L. 16.

केशग्रहणमकरोत् &c. The earth being unable to bear the burden of the Gange's fall, *Siva* was induced by भगीरथ to take her upon his head. This provoked the jealousy of his wife *Pàrvati,* as described above. *Cf. Sa'ro.* "गंगा त्रिविष्टपाद्भ्रष्टा धूर्जटिना जटाजूटे धृता इत्यागमः"। "also *Val.*" सा हि स्वर्गात्पतन्ती हरेण जटाग्रे धृतेत्याम्नायः"। also *Su.* "इयं हि स्वर्गाच्च्युता महादेवेन स्वजटाजूटे धृतेति प्रसिद्धिः" । Also, *Cf.* " धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या। नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः। नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुः। देव्या निन्होतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः" ॥ *Mu.* I. I. also, *Cf.* "संप्राप्ते मकरध्वजेन मथनं त्वत्तो मदर्थे पुरा। तद्युक्तं बहुमार्गगां मम पुरो निर्लज्ज वोढुस्तव। तामेवानुनयस्व भावकुटिलां हे कृष्णकण्ठग्रहं। मुञ्चेत्याह रुषा यमद्रितनया लक्ष्मीश्च पायात्स वः" ॥ *Rat.* I. 3.

इन्दुलग्नोर्मिहस्ता &c. On this *Sàro.* has the following remark: —"अनेन मुकुटीकृतत्वाचन्द्रस्य तल्लग्नहस्तेन महेश्वरमग्रकेशेषु जग्राहेति प्रणयिनीत्वं व्यज्यते"।

Sa'ro. and *Su.* say that the the figure of this verse is उत्प्रेक्षा.

(LV). सुरगज इव &c. 'Elephant of the gods.' Every direction or quarter (they are in fact eight in number:—पूर्व—The East, पश्चिम–the West, उत्तर–the North, दक्षिण–the South, नैर्ऋत–the South-East, आग्नेयी–the South-West, वायव्य–the North-West, and ईशानी–the North-East) has a guardian or presiding deity and each of these deities called the दिक्पाल is furnished with a male and female elephant. *Amarasinha* gives the names as follows:—"इन्द्रो वन्हिः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥ ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥ करिण्योऽभ्रमुकपिलापिमलानुपमाः क्रमात् ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चांगना चांजनावती"॥

पश्चार्धलम्बी &c. The other reading पूर्वार्धलम्बी which is adopted by *Sàro. Meghalatà., Val., Su., Mahima., Bha., Sand., Ràm., Hara., Kalyà., Lakshmi.,* Wilson and other Jain *Avachuries* here is also possible and means, 'with the forepart of his body hanging down.' On this *Sa'ro.* has the following note:—" अत्रावदातस्यापि पदार्थस्य प्रतिच्छायामले च। अथ स्वेच्छया पयसि प्रतिबिम्बितं वपुरन्यवर्णमेव प्रतिभासते। तदा पवनवाहिताञ्जनाभिधानदिग्गज इव। स हि कालकान्तिरेव पुनरैरावणवत्, तस्य कुन्ददलावदातद्युतित्वेन प्रसिद्धत्वात्"।

अस्थानोपगत &c. The proper place of the confluence of the Ganges and the Yamuna' is Praya'ga. (तिसृणां नदीनां संगमः प्रयागः). The water of the former is whitish and that of the latter blackish. Hence the resemblance of the cloud with the Yamuna'. *Cf. Val.* "त्वत्प्रतिबिम्बस्य यमुनाकारत्वात्" । *Cf.* also *R.* XIII. 54-57 verses. *Sa'ro., Meghalata'., Lakshimi;.; Val., Mahima., Bha., Ra'm., Hara.,* Wilson and eight other MSS. read संगमेनाभिरामा, *Nemidu'ta* reads संगमेवाभिरम्या and *Sa'ro.* and three other MSS. notice संगमे चाभिरामे. One of the four MSS. of Uria characters omits this stanza.

Sa'ro. says that the figure of this verse is उपमा, but *Su.* calls it गूढोपमा.

(LVI). नाभिगन्धैर्मृगाणां, &c. Wilson observes that this animal is what is called the Thibet Musk-deer; "but its favourite residence is among the lofty Himâlaya mountains, which divide Tartary from Hindusthán." *Cf.* " प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि " ॥ *Ku.* I. 54. also " दृषदो वासितोत्संगा निषण्णमृगनाभिभिः " *R.* IV. 74. also " अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि " ॥ *R.* VI. 51.

शुभ्रत्रिनयनवृषो० &c. *Cf.* " कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः " *R.* II. 35. Also see 2nd verse. *Cf.* also उत्तरमेघ. II. 52. also *Cf.* " निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु " । *R.* V. 44. On this *Sa'ro.* has the following:— " अत्र हिमगिरेर्नीहारधवलत्वाद्गूरगत्वं मेघस्य साम्यात्पंकत्वमिति भावः " ।

अध्वश्रमविनयने &c. *Sa'ro.* explains this in the following way:— " अथ वा किमर्थमध्वश्रमविनयने मार्गखेदोपनोदाय, अध्वनः श्रमः अध्वश्रमः अध्वश्रमं विनयतीति एवं शीलं तदध्वश्रमविनयि तस्मै ।

Sa'ro. and *Su.* say that the figure of this verse is उपमा.

(LVII). सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा &c. The conflagration of the woods, says Wilson, in India is of frequent occurrence; and the causes of it are here described by the poet. The intertwining branches of the सरल, of the Bambu, and other trees, being set in motion by the wind, their mutual friction engenders flame. *Cf. Su.* " परस्परं वृक्षेण सह वृक्षसंघर्षणादुत्थितोऽग्निः " । *Val.* " तरुसंघट्टवशाद्धि दावानलो जायते. "

चमरी, A kind of deer, or rather the Yak of Tibet and Tartary, highly valued for its bushy tail. *Cf. Sa'ro.* चमरीणां=अरण्यगवीनां " ।

अलं &c. *Su.* "अलमतिशयेन='Completely.' *Mallina'tha* omits to explain this word in his commentary; and this is the only place where he inadvertently omits to notice it in his careful and learned commentary. *Cf.* " पटुतरवनदाहात्प्लुष्टशष्पप्ररोहाः । परुषपवनवेगात्क्षिप्तसंशुष्कपर्णाः । दिनकरपरितापात्क्षीणतोयाः समन्तात् । विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाण

वनान्ताः ॥ विकचनवकुसुम्भस्वच्छासिंदूरभासा । परुषपवनवेगोद्धूतवेगेन तूर्णं। तरुविटपलताग्रालिंगनव्याकुलेन । दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन ॥ ध्वनति पवनविद्धः पर्वतानां दरीषु। स्फुरति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु । प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन। क्षपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः॥ बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु । स्फुरति कनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणां । परिणतदलशाखादुत्पतत्याशु वृक्षात् । भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते ॥ *Ri.* 1. 22–25. The above is the graphic description of the burning of a forest given to us by *Kàlidàsa* in his *Ritusanhard.*

आपन्नार्तिप्रशमनफला &c. On this *Sàro.* and *Mahima.* have the following note:—"पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः । खादन्ति न स्वादुफलानि वृक्षाः । पयोमुचो नैव तृणं चरन्ति। परोपकाराय सतां समृद्धयः ॥ परोपकाराय वहन्ति नद्यः । परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः । परोपकाराय दुहन्ति गावः । परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः । निजवपुषैव परेषां तथापि संतापमपनयति ॥ संचितं क्रतुषु नोपयुज्यते । याचितं गुणवते न दीयते । तत्कदर्यपरिरक्षितं धनं । चौरपार्थिवगृहेषु भुज्यते" ॥

(LVIII). शरभाः &c. These are fabulous animals supposed to have eight legs and to inhabit snowy mountains like the Himalayas. They are represented as stronger than the lion.

मुक्ताध्वानम् &c. 'Removed from their path; out of their way.'

लंघयेयुः &c. 'Would assail.'

Sàro., Meghalatà., Val., Su., Bha., Sand., Ràm., Hara., Kalyà., Wilson, and 12 other MSS. read:–" ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभंगाय तस्मिन् । दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लंघयिष्यत्यलंघ्यम् । * * * वृष्टिहासावकीर्णान्, &c. For the reading given in our text. *Mahimasinhagani* reads according to our text and also notices and comments upon the above text. Pro. Isvarachandra Vidyâsâgara prefers the above text and says:—" पूर्वार्धे भरतादिसंमतः पाठः समीचीनतया प्रतिभाति" ।

But the learned Professor omits this stanza in his text; because he considers it to be a spurious one without of course giving any reasons for his omissions of the stanza.

For करकावृष्टिपातावकीर्णान् *Cf.*"संचूर्णय त्वमथवा करकाभिघातैः"। पूर्वचातकाष्टकम् ।

(LIX). चरणन्यासं &c. The place here mentioned may have some connection with a neighbouring hill at Haridva'ra named हरकपायरी. 'The foot of Hara.' It is called as श्रीचरणन्यास in the शंभुरहस्य ।

सिद्धैः &c. This word is used here in its primary sense of 'One who by austere practices has attained to a state of beatitude, and hence a devotee.'

परीयाः &c. Circumambulating a venerable, person, observes Wilson, is a usual mark of profound respect. Thus, in अभिज्ञानशाकुन्तलम्, *Kanva* thus addresses his foster-daughter, on the eve of her departure:—" वत्से इतः सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व"। "My best beloved, come and walk with me round the sacrificial fire." And again, in the *Ramayana*, we have the same ceremony described thus:" जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन्। चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥ अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च ऋषींश्चापि महात्मा सहभार्या रघूद्वहाः" ॥"Hearing the words of Janaka, the four supporters of Raghu's race, previously placed according to the direction of वसिष्ठ, took the hands of the four damsels within theirs, and, with their spouses, circumambulated the fire, the altar, the king, and the sages."

Su. interpretes ऊर्ध्वं in a different way and construes it with संकल्पन्ते. (this is the reading he appears to have taken). For his comments run thus:—" ऊर्ध्वं उर्ध्वगतिं स्थिरगणपदप्राप्तये मोक्षाय संकल्पन्ते समर्था भवन्ति । कस्मात् करणविगमात् मलमूत्रान्वितदेहनाशात् " &c. *Siro.*, *Meghalatà.*, *Mahima.*, *Bha.*, *Sanà.*, *Ràm.*, *Hara.*, Wilson and other MSS. read दूरम् for ऊर्ध्वम्; *Sa'ro.*'s comments run thus: " दूरं यथा भवति तथा उद्धूतपापाः गतकल्मषा निर्लेशं प्रनष्टपाप्मानः यदीयदर्शनेन प्रध्वस्तपातकाः क्षणविनाशि शरीरं परित्यज्य भक्तिभाजः शाश्वतीं चिरपदवीं लभन्ते इति तात्पर्यार्थः । उक्तं च । " न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न कर्दमे । भावेषु वर्तते देवस्तस्माद्भावं न संत्यजेत्" ।

Val., *Bha.*, *Sand.*, *Ràm.*, *Hara.* and Wilson read कल्पन्तेऽस्य for कल्पिष्यन्ते. Pandit Pránanátha of Kàshmira prefers this reading to that of ours, but does not give any reasons in support of his preference. He says:—"करणविगमाद्दूरमुद्धूतपापाः कल्पन्तेऽस्य॥ इति वा समीचीनः पाठः" । Pro. Isvarachandra Vidyásâgara prefers this reading and gives the following difference:—अस्य अर्धेन्दुमौलेः। अयमेव पाठः साधीयान् निरुपसर्गस्यैव क्लृपेः पर्याप्तिवाचकत्वात् समित्युपसर्गयोगे तु धातुरयमर्थान्तरं बोधयति ।

Sarà. says that the figure of this verse is अवसरोनामालंकारः। And further on def ines it thus:—तथा च । " अर्थान्तरमुत्कृष्टं सरसं यदि चोपलक्षणं क्रियते । अर्थस्य तदभिधानं संगतो यत्र सोऽवसरः " । But *Su.* says that the अलंकार is हेतुः.

(LX). कीचकाः पूर्यमाणाः &c. *Cf.* " यः पूरयन् कीचकरंध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन । उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगंतुम्" *Ku.* I. 8. also"कीचकध्वनिहेतवः"। *R.* IV. 73. also " स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः । कूजद्भिरापादितवंशकृत्यं । शुश्राव कुंजेषु यशः स्वमुच्चैः । उद्गीयमानं

वनदेवताभिः" । Here we find a beautiful description of the dry bambus filled with the wind, sound like flutes and the sylvan deities sing to their music their songs of victory in honour of some hero.

त्रिपुरविजयः &c. *Tripura lit.* 'a collection of three cities,' was the domain of a demon and was reduced to ashes by *Siva*. Others derive the word as follows:—त्रिपुरं three strong cities collectively, a triple fortification;(in epic poetry) three strong cities of gold, silver and iron, in the sky, air, and earth, built by मय for a celebrated Asura or demon, and burnt by *Siva*.

निर्ह्रादस्ते &c. *Sar'o.*, *Meghalatá.*, *Mahima.*, *Su.*, *Val.*, *Lakshm.*, *Bha.*, *Saná.*, *Rám.*, *Hara.*, *Kalyá.*, Wilson and twelve other MSS. read here निर्ह्रादी ते &c. Then the whole means:—ते तव ध्वनिः चेत् यदि मुरज इव मृदंगध्वनिरिव कन्दरेषु दरीषु निर्ह्रादी प्रतिध्वनिमत्त्वात् गंभीरशब्दवान् स्यात् । "निर्ह्रादः शब्दगांभीर्यम्" इति बलः" । *Bha.* "चेत् यदि ते तव ध्वनिः कन्दरेषु गुहागर्भेषु प्रतिफलनवशात् मुरज इव उपचारान्मुरजशब्द इव निर्ह्रादी स्यात् मृदंगध्वनिमनुकुर्यादित्यर्थः । *Kalyá.*

(LXI). क्रौञ्चरन्ध्रम् &c. This pass is situated, observes Dowson, somewhere in the Himâlayas, and is said to have been opened by परशुराम with his arrows to make a passage from कैलास to the southwards. The वायुपुराण attributes the splitting of the mountain to कार्तिकेय. Indra and कार्तिकेय had a dispute about their respective powers, and agreed to decide it by running a race round the mountain. They disagreed as to the result, and therefore appealed to the mountain, who untruly decided in favour of Indra. "कार्तिकेय hurled his lance at the mountain and pierced at once it and the demon महिष." *Cf.* "तत्रैवोमावनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतं । अर्धनारीनरं रूपं धृतवान् यत्र शंकरः ॥ तथा शरवणं नाम यत्र जातः षडाननः । यत्र चैव कृतोत्साहः क्रौञ्चशैलवनं प्रति ॥ ध्वजापताकिनं चैव किंकिणीजालमालिनं । यत्र सिंहरथं युक्तं कार्तिकेयस्य धीमतः ॥ चित्रपुष्पनिकुंजस्य क्रौञ्चस्य च गिरेस्तटे । देवारिस्कन्दनः स्कन्दो यत्र शक्तिं विमुक्तवान् ॥ यत्राभिषिक्तश्च गुहः सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरोत्तमैः । सेनापत्ये च दैत्यारिर्द्वादशार्कप्रतापवान् ॥ भूतसंघावकीर्णानि एतान्यन्यानि च द्विजाः । तत्र तत्र कुमारस्य स्थानान्यायतनानि च ॥" वायुपुराण Cha. 41. 36-41. I have not been able, observes Wilson, to make anything of this pass or hole. The original text states it to be on the very skirt (उपतट) of the snowy mountain; and calls it also हंसद्वार, 'The gate of the geese,' who fly

annually this way to the lake मानस. क्रौञ्च is described as a mountain, in the महाभारत; and, being personified, is there called the son of मैनाक. A mountain also called क्रौंचमेरु occurs in Mr. Wilford's lists, amongst those mountains situated in the north. It must lie at some distance from the plains; and perhaps the Poet, by using the term उपतट, implies its relative situation with the loftiest part of the range or proper snow-clad mountain. Others say that the क्रौंच mountain is a part of the Himâlaya range, situated in the eastern part of the chain on the north of Asam. The क्रौंच pass in the क्रौंच mountain is said to have been made by the arrows of भृगुपति or परशुराम who was educated by शिव on mount कैलास and who thus opened himself a passage from the mountain upon the occasion of his travelling southward to destroy the Kshatriyas. *Sâro.* calls it क्रौंचगिरि: so do *Mahima.*, *Su.* and *Val.*

हंसद्वार &c. The flamingoes pass through the क्रौंच defile while journeying to the मानस lake every year. Hence it is called the 'gate of the flamingoes.' This mountain range is situated in the north of मेरु.

अनुसरेः &c. पार्श्वाभ्युदय reads here अनुपतेः. This may have been the correct text as the word अनुपत् is frequently found used in this sense in *Kâlidâsa's* works. *Cf.* "मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः" । *Sa.* I. *Vallabha* and others read अभिसरेः which too appears equally happy.

बलिनियमन &c. *Vishnu* in his fifth incarnation restrained the pride of बलि and placing his foot upon his head thrust him into *Pâtâla*. The particulars of this story are well known.

(LXII). दशमुखभुजो &c. This alludes to the story of *Râvana's* having attempted to remove the mountain *Kailâsa* from its situation. Although he did not succeed in the attempt he considerably unhinged its foundation. *Cf.* "समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः । त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥ *Si.* I. 50.

कैलासस्य &c. Kshirasvâmin derives this as "केलसः स्फटिकस्येव शुभ्रः कैलासः" । This mountain is a part of the Himâlaya range. In fable it is a mountain of costly gems or crystals, the site of *Kubera's* capital अलका, and the favourite haunt of *Siva*.

Sâro., *Meghalatâ*, *Nemiduta.*, *Val.*, *Mahima.*, *Su.*, *Lakshmi.*,

Bha., *Sanâ.*, *Hara.*, *Kalyâ.*, Wilson and eleven other MSS. read प्रतिदिशम् for प्रतिदिनम्. Prof. Isvarachandra Vidyâsâgara prefers this reading but does not give any reasons for his preference. For he simply says:—"अयमेव पाठः साधीयान्" । It may be that the lofty peaks of the Himâlaya range of mountains are visible to surrounding regions (प्रतिदिशम्). Wilson observes that they are seen in the south, from situations more remote than those in which any other peaks have been discerned.

अट्टहासः &c. 'The loud laughter, cachination.' This is, accord ing to the belief or practice of the Sanskrit poets, white. *Cf.* शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरीशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्याभितः सुरभितः । *Dasa. P.* 1. "हासस्य श्वेतत्वात्कैलासस्य तुल्यत्वं" । *Mahima.*

(LXIII). स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे &c. *Cf.* " क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसंनिभैः । *Ri. Rainy Season.* 2.

हलभृतः &c. 'Lit. 'the plough-bearer, *i. e.* बलराम. He is represented of a white colour clothed in a dark blue vest. *Cf.*" तमतनुवनराजिश्यामितोपत्यकान्तं । नगमुपरि हिमानीगौरमासाद्य जिष्णुः । व्यपगतमदरागस्यानुसस्मार लक्ष्मीमसितमधरवासो बिभ्रतः सीरपाणेः " । *Kira.* IV. 68. " हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहैः" । *Si.* IV. 68. also "वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् । केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे" । *Gita. G.* 'Thou bearest on thy bright body a mantle shining like a blue cloud, or like the water of the यमुना tripping towards thee through fear of thy furrowing plough-share, O केशव! assuming the form of बलराम, be victorious O हरि! Lord of the universe.' *Cf.* also *Sâro.*" रेवतीरमणवसनोपमानेन पयोदं प्रमोदयन् निजप्रयोजननिष्पत्तये त्रिपुरहरशिखरारोहणे नियुंक्ते" ।

(LXIV). विचरेत् &c. *Pârsvâ.*, *Val.*, Wilson and Krishna Sastri Bhãtavadekar here read विहरेत्. This reading appears to be happier as it is more poetic than विचरेत्. Prof. Isvarachandra Vidyásägara also prefers this reading and says:–"अयमेव पाठः साधीयान्."

कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी &c. *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, Wilson and two other Mss. read here व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु. On this *Bharata*'s comments run thus:—"पदसुखश्वरणसुखकारी स्पर्शो यत्र तादृशं यथा स्यात्तथा." Pro. Isvarachandra Vidyäsägara prefers this without giving any reasons; because he says:—"अयमेव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति".

दत्तहस्ता &c. *Cf.* "नगेन्द्रतनयानागेन्द्रकेयूरयोः" *Vivâha Mangala.*

(LXV). वलयकुलिश° &c. *Sáro. Meghalatá., Lakshmi., Mahim., Su.' Val,.,* and eleven other MSS. read here कुलिशवलय° &c., and translate कुलिश by 'diamond; for the explanation they give runs thus:—"कुलिशसंयुक्तानि हीरकविद्धानि वलयानि कुलिशवलयानि" *Sáro.* "वज्रपर्यायत्वात्कुलिशशब्देन हीरका उच्यन्ते." *Mahima.* "कुलिशशब्देन हीरकाः" *Su.* "कुलिशवलयस्य वज्रवलयस्य." *Meghalatá.* But the *Panjiká* of *Lakshminivása* translates कुलिश by 'Lightning'; for it says:—कुलिशवलयस्य विद्युद्वलयस्य. Wilson too understands it in the same way; for he observes that the diamond and thunderbolt, according to Hindu notions, are of one substance, and are called by the same appellation (वज्र). As the fall of the thunderbolt is usually followed by rain, and may thus be considered as its cause; the propinquity and the mutual friction of the same substance upon the wrist of our young ladies is, in like manner, supposed to occasion the dispersion of the fluid treasures of the cloud. But *Mallinátha* takes it as 'the sharp points of their armlets,' and not according to the above commentators. Because he renders वलयकुलिशानि as कंकणकोटयः and further on he supports it by saying:—"शतकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते," *Vide* commentary on the same.

यंत्रधारागृहत्वम् &c. *Sáro.* explains this word as:—"यंत्राण्यनेकसंचारचतुरान्तर्विवरावभासितशालभंजिकाप्रभृतीनि तत्करतलाद्यवयवप्रवृत्तवारिधाराभिरुपलक्षितं ग्रीष्मोष्मनिषेधकं धनिनां धाम यंत्रधारागृहत्वं." *Mahima.* says :—"अनेकसंचारचतुरान्तर्विवरावभासितपुत्तलिकादीनि तत्करतलाद्यवयवे प्रवृत्तवारिधाराभिरुपलक्षितं ग्रीष्मतापशमनं धनिनां धाम धारागृहं कथ्यते। एकान्तस्थाने ग्रीष्मतापनिवारणाय काष्ठपाषाणेन पुत्तलिकादिसम्बन्धेन जलनिर्झरणं मेघजलकणपातनार्थं स्थानं सुखिनां गृहे यंत्रधारागृहाणि कथ्यते." *Val.* has the following :-"यदि किलानिलवशाद्वेश्ममध्ये निक्षिप्ता विरलं वर्षसि तदा त्वमेव यंत्रधारामयं गृहं संपद्यसे। ग्रीष्मे हि संतापवारणायाढ्या धारागृहान्कुर्वन्ति."

घर्मलब्धस्य &c. 'Acquired (by them) in the hot season', qualifies तव. "निदाघकाले प्राप्तस्य तव." *Sáro.* "ग्रीष्मर्तौ प्राप्तस्य तव." *Su.* "उष्णकाले प्राप्तस्य तव." *Mahima.*

क्रीडालोलाः &c. 'Given to play, engaged in sporting;' qualifies

ताः।"क्रीडालोलाः केलिलंपटाः".*Sâro.*, *Val.*"कुलक्रीडायां अत्यन्तनिरताः" *Mahima.* "क्रीडासु जलकेलिषु लोला आसक्ताः". *Su.*

भाययेस्ताः &c. *Cf.* ताः. "वातैर्विधूनय विभायय भीमनादैः। संचूर्णय त्वमथवा करकाभिघातैः। त्वद्वारिबिन्दुपरिपालितजीवितस्य। नान्यागतिर्भवति वारिद चातकस्य" ॥ *Purvachâtakâshtaka.* Here *Parsvâ.*, *Val.*, *Bhâtavadekar* and three other MSS. read भीषयेः and *Sâro.*, *Meghalatâ*, *Panjikâ*, *Mahima.*, *Su.* and nine other Mss. read भापयेः, but, both these readings appear incorrect; because the causal bases भापि=भापयते and भीषि=भीषयते are invariably used in the *Atm.* in the sense of 'He inspires fear &c.,' while the base भायि=भाययति is always used in the *Par.* in the sense of 'He frightens one with &c'. "(a) बिभेतेर्हेतुभये" । "(*b*) नित्यं स्मयतेः" । The root भी substitutes आ optionally and स्मि necessarily for their vowel in the causative base if the effect is produced by the agent. "(*c*) भियो हेतुभये षुक्" । The root भी takes the augment ष् in the same circumstances. "(*d*) अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातांपुग्णौ" । The roots ऋ, ह्री, ब्ली, री, क्नूय्, क्ष्माय् and the roots ending in आ take the augment प्. And the vowel of these roots undergoing गुण change.' "(*e*) भिस्म्योर्हेतुभये" । The roots भी and स्मि take *Atm.* in the causative base if the effect is produced by the agent. as भापयते, भीषयते, 'inspires fear', विस्मापयते 'astonishes.' मुण्डो भापयते, जटिलो विस्मापयते; otherwise भाययति, विस्माययति 'frightens or astonishes any one with anything.' as:-कुंचिकया एनं भाययाति, विस्माययति &c. *Mallinâtha* also argues the same and says:—"अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपदं पुगागमः षुगागमश्च न" । And for these reasons we prefer भाययेः to either भीषयेः or भापयेः.

(LXVI). मानसस्य &c. The lake मानस is in the Himâlayas. In the वायुपुराण it is stated that when the ocean fell from heaven upon Mount Meru, it ran four times round the mountain, then it divided into four rivers which ran down the mountain and formed four great lakes, अरुणोद on the east, शीतोद on the west, महाभद्र on the north, and मानस on the south. According to the mythological account, the river Ganges flows out of it, but in reality no river issues from this lake, though the river Satlej flows from another and larger lake called रावणह्राद, which lies close to the west of मानस.

क्षणसुखपट° &c. *Mallinâtha* here takes क्षण to mean 'the time of drinking water,' but it may also mean 'for a moment.' It is

customary, as *Sa'ro.* says, to veil the trunks of elephants when they drink water. "कुंजराः किल मुखपटेन प्रावार्यन्ते । सुरगजोऽपि तत्र वने क्रीडाया विचरति "। *Mahima* says:—" स्वर्गजोऽपि तत्र वने क्रीडाया विचरति । " *Val.* says:—"गजा हि मुखपटेन प्रीयन्ते" ।

हेमांभोजप्रसवि &c. In connection with this the *Sa'ro.* has the following remark:—" एतेन तदुदकस्य भक्तिप्रतिपादनं " ।

कामम् &c. *Mallina'tha* connects this word with निर्विशेः, but it is more natural to connect it with कुर्वन् in the sense of 'gladly,' 'willingly' &c.

धुन्वन्वातैः &c. *Cf.* "वातैर्विधूनय विभायय भीमनादैः" । *Purvacha'taka'shtaka.*

Bharata, Ra'mana'tha and *Kalya'namalla* omit this verse.

(LXVII). स्रस्तगंगादुकूलां &c. In connection with this *Sa'ro.* says:– "तत्र किल मन्दाकिनी वहति तया च अविज्ञानभूतया अवश्यमसौ ज्ञातुं शक्य इति भावः" । *Val.* says:—" जाह्नवी हि तत्र वहति " ।

उच्चैर्विमाना &c. Here the word विमान is used in the sense of 'a sevenstoried house.' In the metaphor, however, it means 'free from anger and in connection with उच्चैः, it means completely free from anger.

उत्तर मेघम्.

(1) The first 13 verses of उत्तरमेघ are descriptive of अलका; the order, however, in which they are given by *Malli.* here differs greatly from that of *Pârsvâ.* We give below the orders of both:—

Serial No.	Beginning of verse.	Pârsvâ's order.
1	विद्युत्वंतं &c.	1.
2.	हस्ते लीला &c.	6.
3.	यत्रोन्मत्त &c.	5.
4.	आनन्दोत्थं &c.	4.
5.	यस्यां यक्षाः &c.	7.
6.	मन्दाकिन्याः &c.	10.
7.	नीविबन्धो &c.	8.
8.	नेत्रानीता &c.	9.
9.	यत्र स्त्रीणां &c.	2.
10.	अक्षय्यान्तर् &c.	11.
11.	गत्युत्कंपाद् &c.	3.
12.	मत्वा देवं &c.	14.
13.	वासश्चित्रं &c.	12.
35. th of पू० मे०	पत्रश्यामा &c.	13.

It will be seen here that *Pârsvâ.* reads the 35th verse of the पूर्वमेघ between the 13th and the 12th (*i. e.* between ' वासश्चित्रं ' &c. and ' मत्वा देवं ' &c.); but *Val., Su., Lakshmi.,* and five other MSS. (originally designated as O., Q., R., S., and T.) read the same between ' विद्युत्वंतं' &c. and ' हस्ते लीला &c'., only the MS. G2. reads this verse between ' हस्ते लीला &c'. and 'आनन्दोत्थं &c.' (this appears to be its order); and thus gives 14 verses instead of 13 in the description of *Alakâ. Cf.* verses descriptive of ओषधिप्रस्थ in *Kumârasambhava* VI. 37—46.

प्रहतमुरजाः &c. *Cf.* " शिखरासक्तमेघानां । व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनां । अनुगर्जितसंदिग्धाः करणैः मुरजस्वनाः " ॥ *Ku.* VI. 40.

अभ्रंलिहाग्राः &c. *Cf.* " प्रासादमभ्रंकषमाससाद " । *Nai.* VI. 57.

यत्र तैस्तैर्विशेषैः &c. *Cf.* " दधदम्बुदनीलकण्ठतां । वहदत्यच्छसुधोज्ज्वलं

वपुः । कथमृच्छतु यत्र नाम न । क्षितिभृन्मान्दिरमिन्दुमौलिताम् " ॥ *Nai.* II. 82.

(II). This verse makes mention of different flowers peculiar to different seasons, as:—the lotus blooms in शरद्, the *Kunda* in हेमन्त, the *lodhra* in शिशिर, *Kurabaka* in वसन्त, the *Sirisha* in ग्रीष्म, and the *Kadamba* in वर्षा. *Cf.* the comments of *Sa'ro*:—"अत्र दीव्यानुभावाच्चतुर्णा ऋतूनां एककालसंभवोक्तिः," and also "अत्र कनकाद्याभरणभारपरिहारेण कुसुमालंकारधारणं नारीणां नागरिकत्वं प्रतिपादयति । निसर्गसुकुमारशरीराणां चतुरसुंदरीणां कनकरत्नमयाद्याभरणपरिहारेण पुष्पालंकारधारणमेव प्रायः प्रीतिनिबन्धनमिति" । Also *Val.*:—"तदेतेन कनकालंकारनिरासेन योषितां नागरत्वमुक्तं सर्वर्तुसमृद्धिश्च" ।

We cannot help, however, being pleased with the simplicity and propriety of taste, observes Wilson, which gives to the graceful ornaments of nature so prominent a part in the decoration of feminine beauty.

हस्ते लीलाकमलम् &c. *Cf.* " लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती " *Ku.* VI. 84.

(III) This and the following are considered by *Malli.* as interpolations and are omitted by *B.*, *W.*, *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, *Kalyâ.*, and three other MSS.

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः &c. For the trees buzzing with humming bees, *Cf.* " विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः । मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः"॥ *R.* IX. 29.

नित्यपुष्पाः &c. Here *Mahim.* and *Su.* have the following notes:—" दिव्यप्रभावात्. " "देवानुभावादिति भावः" ।

प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः &c. *Val.* has the following remark on this:—"एतेनास्य (probably *Vallabha* may have intended this for the description of the garden called वैभ्राज) सर्वरम्यत्वमुक्तं "

केकोत्कण्ठाः &c. *Mahim.* has the following annotation on this, he says:—"अन्यत्रत्यानां मयूराणां घनागमे एव केकोत्कण्ठाः । अलकायां तु सदैव केकोत्कण्ठाः।"

Mahimasinhagani reads this after "गत्युत्कम्पा &c.", but *Vallabha* and *Sumativijaya* read this after " नीवीबन्धो &c. " so do the six Jaina *Avachuries.*

(IV) आनन्दोत्थं &c. For the description of the blessed condition of अलका on the Himâlaya, *Cf.*:—"यौवनान्ते वयो यस्मिन् (*i. e.*

ओशधिप्रस्थे) नान्तकः कुसुमायुधात् । रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः"। *Ku.* VI. 44.

नान्यस्तापः &c. Here *Sa'ro.* has the following annotation:— "न पुनर्व्याधिदारिद्र्यादिजनितः" and *Su.* has:-"दुःखाज्जनितो न." *Mahima.* has:—"चुलकयसि चन्द्रदीधितिमाविरलमश्नासि नूनमंगारात् । अधिकतरमुष्णम-नयोः किमिह चकोरावधारयसि"॥

प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्तिर्न &c. On this *Sa'ro.* has:— "न पुनर्दु-श्चरणदेशान्तरजनितः"।

यौवनादन्यदस्ति &c. Here *Sa'ro.* has the following remark:- "न पुनर्वृद्धिलक्षणं वयोऽस्ति"।

इष्टसंयोगसाध्यात् &c. On this *Mahimâ.* has the following annotation. He says:-"इति वल्लभसंयोगाभावे तापः । संयोगे कामतापाभावे । यथा।"उपरि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां। मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलि-तानां। सुरतजनित [समर]खेदस्विन्नगण्डस्थलीनां (स्थलानां) । अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबंति"।।तथा ।"त्वत्केशाञ्जलवत्प्रदीपितमदं त्वन्मध्यवन्मु-ष्टिना प्रात्थं त्वत्कुचकुंभवन्नखमुखव्यापारलीलास्पदं । त्वच्चेतोवदमंदरागजननं-त्वन्मूर्तिवत्कामदं स्वादिष्ठं च तवोष्ठवत्तरुणि मे ताम्बुलमानीयताम्."

(V) सितमणिमयानि &c. On this *Mahima.* and *Su.* have the following annotations:— "इन्द्रनीलमणिसमूहनिर्मितानि" ।"इद्रनीलमणिर चितानि" And further on *Mahima.* says:— "अत्र केचित् सितमणि-मयानि पठन्ति तन्न युक्तं। यतो मरकतेष्वेव प्रतिबिम्बितानि नक्षत्राणि कुसुमप्रकरायन्ते । तत्र स्फटिककुट्टिमेषु सदृशवर्णत्वान्नक्षत्राणां कुसुमप्रकरोपमा न समघटि" । Probably he takes सितमणि in the sense of मरकतमणि. Or whether he reads मरकतमणि for सितमणि is certainly difficult for us to make out. The MS. at our disposal is mostly incorrect and we cannot make out any sense of what he says in his comments of the above discussion.

हर्म्यस्थलानि &c. 'The rooms of palaces.' *Sa'ro.*, however, explains it as:— " हर्म्याणि धवलगृहाणि तेषां स्थलानि उपरितनभूमीः प्राप्य "। 'The terraces of palaces.' *Mahima.* explains it as follows:—" हर्म्याणां स्थलानि स्थलाकारत्वाद् गृहकुट्टिमस्थानानि।"'The pavement of palaces.' *Su.* has the same, for he says:-"हर्म्यस्थलानि गृहकुट्टिमस्थानानि." *Val.* has:— "हर्म्यस्थलानि सौधस्थलानि।"'The terraces of palaces.' But

Malli. is silent here. *Cf.* "स्फटिकोपलविग्रहा ग्रहाः" । *Nai.* II. 74. "यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्." *Ku.* VI. 42.

उत्तमस्त्रीसहायाः &c. *Mahima.* explains it as:— "अत्र उत्तमपदस्यायमभिप्रायः उत्तमा उत्तमकुलप्रसूता परिणीता या स्त्री सैव सहाया संभोगावस्थायां द्वितीया एषां ते तथा "।

रतिफलम् &c. Name of a certain intoxicating drink as described by *Mallina'tha. Sa'ro.* and *Val.* explain this as:— " रतिरेकान्ततः एव फलं यस्य तत् । सुरतकेलिकार्य ।न तु कलहादिजनकं, कल्पवृक्षजं मधु सेवन्ते " । The other reading रतिरसं (which is adopted by *Bha., Sana'., Ra'm., Hara.*, and Wilson) is thus explained by *Bharata* . "रतौ सुरते रसोऽनुरागो यस्मात्तत्तथा "।

शनकैः &c. *Sa'ro.* explains it as :—" कथं शनकैः मन्दं मन्दं। शृंगाराङ्गत्वात् पानगोष्ठ्या कठोरवादित्रं नोपभुज्यते इति भावः।"

पुष्करेष्वाहतेषु &c. With reference to this *Val.* has the following remark. He says :—"तदेतेन दंपत्योः सदा सुखितत्वमुक्तम् " । *Mahim.* and *Su.* read this verse after " यत्र स्त्रीणां &c." But *Val.* reads it after " हस्ते लीला &c." Between " विद्युत्वंतं " &c. and " हस्ते लीला &c." *Vallabha* reads first " शष्पश्यामा " &c. and then " आनन्दोत्थं &c. "।

(VI) मन्दाकिन्याः &c. *Cf.* " तहिं खु मन्दाइणीए पुलिणेसु गदा सिकदापव्वदकेलीहिं कीलमाणा विज्जाधरदारिआ उदयवदी णाम देण राएसिणा णिज्झाइदेत्ति कुविदा उव्वसी । तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु गता सिकतापर्वतकेलीभिः क्रीडन्ती विद्याधरदारिका उदयवती नाम तेन राजर्षिणा निदिध्यासितेति कुपितोर्वशी " । *Vi.* IV. Appendix A. *p.* 104.

सेव्यमाना मरुद्भिः &c. *Cf.* "सोऽयं रंभानटनचटुलैः सेव्यमानो मरुद्भिः"। *Uddhavasamdesa.* 31.

मन्दाराणां &c. *Mandâra* is one of the five heavenly trees which flourish in Indrá's Svarga. They are thus enumerated in the अमरकोशः—" पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् " । *Cf.* " आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्किरवीचिषु " ॥ *Ku.* VI. 5.

कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः &c. *Sa'ro.* explains it as:—"कस्यां मुष्टौ मणयः सन्तीति ज्ञातव्यैः" ।

संक्रीडन्ते मणिभिः &c. Allusion is here made to a provincial sport called गूढमणि. *Vide Malli's* comments.

अमरप्रार्थिता &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following note:- "देवानामपि दुर्लभाः" । But *Mahima.* says:—"रूपातिशयाद्देवैरभिलषिताः."

कन्याः &c. *Saro.* explains it as:—"यद्यपि कन्याशब्दो नार्यां कुमार्यां च वर्तते तथाप्यत्र बालिका एव गृह्यन्ते प्रायस्ता एवेत्थं क्रीडन्तीति"। Such is also the explanation of *Mahima.*

Val., Bha., Sanâ., Râm., Hara., Kalyâ. and Wilson omit this verse. Prof. Isvarachandra Vidyâsâgar considers it to be a spurious stanza.

Su. reads this after "यत्रोन्मत्त &c." This is the 11th verse according to his order. *Mahima.* reads this after "नीवीबन्धो &c." This is the 4th verse according to his order.

(VII) अर्चिस्तुंगान् &c. *Vallabha* explains this as महाज्वालान् 'having high flames;' and *Sa'ro.* explains it as महाद्युतीन् 'having great lustre or light.' *Mahima.* says, तेजसा प्रवृद्धान्. But *Su.* says:—"उच्चैस्तरान्." *Cf.* "रतौ ह्रिया यत्र निशाम्य दीपान् जालागताभ्योऽधिगृहं गृहिण्यः । बिभ्युर्बिडालेक्षणभीषणाभ्यो वैदूर्यकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः" । *Si.* III. 45. *Val., Sa'ro., Mahima., Meghaldta; Su.,* G2., *Bha., Sanâ., Râm. Hara., Kalya'.,* Wilson and eleven other MSS. read यक्षांगनानां for बिम्बाधराणां. Prof. Isvarachandra prefers this reading, saying-"अयमेव पाठः साधीयान्."

अनिभृत &c. Here the word अनिभृत means 'trembling or bold' through passion.

The Yaksha women, overcome by shame when their garments were thrown away, tried to put out the lamps by throwing powder over them, but the lamps being made of jewel their light could not be extinguished. *Cf. Su.* "अत्रांगनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्या मौग्ध्यं व्यज्यते ।" *Mahima.* "चूर्णमुष्टिवैफल्यम्" ।

चूर्णमुष्टिः &c. Here चूर्ण means not only any powdered or pounded substance, but especially aromatic powders of saffron; which generally constitute part of an Indian lady's toilet.

(VIII). ०दोषं &c. The harm caused here by water, as *Malli.* says, is in the form of cracks.

Prof. Isvarachandra Vidyâsâgara repudiates both the readings, *i. e.* स्वजलकणिकादोषम् and नवजलकणैर्दोषम् and proposes a new read-

ing for these. He says—;" उभावेव पाठौ न समीचीनौ स्वजलकणिका-दोषमित्यत्र आलेख्यदूषणे स्वजलकणिकानां करणत्वात् स्वजलकणिकाभिर्दो-षमित्येवंरूपस्यासमस्तस्यैव प्रयोगस्यौचित्यात् नवजलकणैरित्यत्र च नवेति विशेषणस्यानुपयोगात् तस्मात् । "निजजलकणैर्दोषम्" । इत्येवंरूप एव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति ।"

Val. reads this verse after " यत्रोन्मत्त &c. " It is the 9th verse according to his order. *Mahima.* reads it after " वासश्चित्रं &c. " It is the 10th verse according to his order. *Su.* reads it after "मन्दाकिन्याः &c. " It is the 12th verse according to his order. Vide note on the 6th verse.

निष्पतन्ति &c. *Cf.* " कुतूहलेनेव जवादुपेत्य प्राकारभित्त्या महसा निषिद्धः। रसन्नरोदीद् भृशमम्बुवर्षव्याजेन यस्या बहिरम्बुवाहः " । *Si.* III. 41.

(IX). चन्द्रकान्ताः &c. The moon-gem are supposed to absorb the rays of the moon and to emit them again in the form of pure and cool moisture. *Cf.* " कान्तेन्दुकान्तो-पलकुट्टिमेषु प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र । उच्चैरधःपातिपयोमुचोऽपि समूहमूहुः पयसां प्रणाल्यः " । *Si.* III 44. also—" चन्द्रपा-दजनितप्रवृत्तिभिः । चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः ॥ मेखलातरुषु निद्रि-तानिमान् । बोधयत्यसमये शिखण्डिनः" । *Ku.* VIII. 67.

Sáro explains the reading प्रियतमभुजालिंगनोच्छ्वासितानां as—"प्रियतमस्य बल्लभस्य भुजालिंगनं बाहुपरिरंभणं तेनोच्छ्वासितानां प्रबलश्वा-सभाजिनीनां पीडितानां "। *Val.* the same as—" भर्तृभुजाबन्धनपीडिता नाम् " । *Kalyâ.* explains the same as—" प्रियतमभुजालिंगनेन उच्छ्वासितानां क्रान्तानामित्यर्थः"। *Mahima.* explains it as—" प्रियतमानां भुजालिंगनानि तैरुच्छ्वासितानां *** स्नेहातुरात्यंतालिंगनैः प्रबलश्वासभजनीकृतानां आलिंगनस्यातीवत्वरोत्पादकत्वादित्यर्थः" । *Su.* explains it as—"प्रियतमभुजाभ्यामालिंगनेनोच्छ्वासिताः" । Prof. Isvarachandra Vidyâság-ara prefers our reading and remarks:—" अयमेव पाठः समीची-नः प्रियतमैर्गाढमालिंगितानामेव कामिनीनां सुरतजनिताया अंगग्लानेः संभवा-त् " । Prof. Isvarachandra prefers also the reading " प्रेरिताश्चन्द्रपा-दैः " with this remark:—"एतेषां संमतः पाठः समीचीनतया प्रतिभाति."

Sáro. notices and explains the reading " यंत्रजालावलम्बाः इति पाठे यंत्राणि पुत्रिकाप्रभृतीनि तद्युक्तेषु जालेषु अवलंबन्ते ये ते तथोक्ताः " ।

अंगग्लानिं सुरतजनितां &c. In connection with this *Sa'ro.* has the foll owing annotation—"यत्र प्रतिरजानि रजनीकरकरनिकरसंपर्कतुहिनतर पयोऽम्बुबिन्दुस्पन्दिसद्मानि दन्तिरतिकेलिक्रमहारित्वमनोहराणि सा पुण्यजननगरीति पयोद वेदितव्या"।

(X). *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm.*, *Hara.*, *Kalyâ.* Wilson and four other MSS. omit this verse. Prof. Isvarachandra also thinks it to be a spurious stanza.

वैभ्राजाख्यं &c. The ordinary name of this garden attached to Alakâ is **चैत्ररथ**. *Cf.* "**एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्**"। *R.* V. 60. Compare also *Val.*, "**वैभ्राजाख्यं चैत्ररथं.**"

Sâro., *Mahima.*, *Su.*, *Meghalatâ*, *G*1., *Sisuhitaishini*, and seven other MSS. read "**बद्धापानं,**" and explain it as—"**रचितपानगोष्ठिकं**"। *Sâro.*; "बद्धं रचितं आपानं वाह्यपानगोष्ठी यत्र तत्"। *Mahima.*; "बद्धं रचितं आपानं पानगोष्ठी यत्र तत्"। *Su.*; *Vallabha* reads "मध्वापानं" and explains it as,—"**मधुनो मद्यस्यापानं पानगोष्ठिका यस्मिन् तत्**"।

विबुधवनितावारमुख्यासहायाः &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following note—"कलाकुशलांगनावेश्यासहिता वा"।

(XI). गत्युत्कम्पात् &c. *Sâro.* explains this as-"गतिः गमनं तया उत् प्राबल्येन कंपः चलनं तस्मात् । अलघुजघनभराक्रान्ततया घनतरतिमिरतिरस्कृतमार्गान्तरालसंभ्रमसंचरणसंजातत्वात् शरीरप्रकंपः इत्यर्थः"।

अलकपतितैः &c. *Sa'ro.* explains it as—"कुटिलकेशविच्युतैः"।

Eleven MSS. read पत्रच्छेद्यैः—"पत्राणां दलानां छेदनं खण्डनमर्हन्ति इति पत्रच्छेद्यानि तैः। "पत्रच्छेदैः" "इति पाठान्तरे नागवल्लीदलशकलैः।" *Saro.*, *Vallabha*, and two other MSS. read "कृतच्छेद्यैः—रचितविशेषैः।"

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः &c. Here *Vallabha*, *Sâro.*, and three other MSS. read—"मुक्तालग्नस्तनपरिमलैश्छिन्नसूत्रैः"&c. and explain it as,—"मुक्तामणिषु लग्नः स्तनपरिमलः कुचामोदो येषां तैः" *Val.*; "मुक्तासु मौक्तिकेषु लग्नः संबद्धः स्तनयोः परिमलः मलयजादीनामामोदो येषु ते तैः। पुनः कथंभूतैः हारैः छिन्नसूत्रैः छिन्नानि द्विधाभूतानि सूत्राणि गुणाः एषां तैः। अथ वा समस्तमु क्तासु लग्नो योऽसौ स्तनपरिमलः कुचसंमर्दनः तेन छिन्नानि सूत्राणि येषां तैः। कठिनस्तनतटसंघट्टत्रुटिततन्तुभिरित्यर्थः। अथ वा मुक्ताजालैरिति पाठान्तरे मुक्तानां जालानि वृंदानि येषु ते तैः। अनेकनिपतितमुक्ताहाराद्यलंकारदर्शनेन कामुकनिकेतनगमनाभियुक्तका-

मिनीजनसंचरणसरणिः प्रातर्लोकैरनुमीयते इति भावः " । And further on it says—" मुक्तालग्नस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः" इति मुख्यः पाठः । and also—" मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः" इति पाठान्तरं तत्र । पूर्वं स्तनेषु परिसरन्ति स्तनपारिसराः पश्चात् छिन्नसूत्राः ये तैः।" *Sâro.*; *Mahima.* reads—" मुक्ताजालस्तनपरिचयच्छिन्नसूत्रैः and explains it as—मुक्तानां जालानि मुक्ताफलसमूहास्तेष स्तनपरिचयः कठिनकुचसंमर्दस्तेन छिन्नानि त्रुटितानि सूत्राणि तंतवो येषां ते तैः"। He also notices and explains the reading adopted by *Val.* and *Sâro.*; and also the reading of our text.

कामिनीनां &c. This refers to *Abhisârikas*—women who go to a place of appointment to meet their lovers. *Mahima.* explains it as—" अतिशयेन कामो विद्यन्ते यासामिति कामिन्यः " । Here Wilson says:— 'I have already mentioned that the Hindus always send the lady to seek her lover, and they usually add a very reasonable degree of ardour and impatience. Our poet, in another place, compares the female so engaged to a rapid current. Thus, in the ऋतुसंहार—"निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान् । प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः। स्त्रियः प्रकामा इव जातविभ्रमाः । प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् " ।

Prof. Isvarachandra thinks this to be an interpolation.

(XII) भयात् &c. This alludes to the fate which befel मन्मथ (Cupid) upon his assailing Siva whom he inflamed with the love of Pârvatí. Siva in his wrath reduced him to ashes by a flame from the eye in his forehead. Although he was subsequently restored to animation, he is here supposed to remain in constant dread of his former enemy. *Cf.* " तपःपरामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभंगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य । स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥ क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति । तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार "॥*Ku.* III. 71—72.

षट्पदज्यम् &c. *Cf.*"अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता । विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदितीव मां" । *Ku.* IV. 15.

चतुर° &c. *Bha.*, *Ra'm.*,*Hara.*, Wilson and two other MSS. read चटुल 'tremulous' and connect it with विभ्रम and not वनिता. Prof. Isvarachandra Vidyâsâgar prefers this reading and says:—"अयमेव पाठः सावीयान्. "He gives no reasons for his preference.

(XIII) विभ्रमादेशदक्ष &c. *Mahima.* explains this as—"विलासोपदेशकुशलं । यतो मधु विना मदिरां विना नेत्रविभ्रमो न भवति । यदुक्तं । नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे । असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना" । *Ku.* IV. 12. *Cf.* also —"चारुता वपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः । तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तां मदो दयितसंगमभूषः" *Si.* X. 33.

यस्याम् &c. *Pârsvâ.* here reads यस्मिन्. From this it appears that this verse together with the verse "मत्वा देवं &c." are, according to *Pârsvâbhyudaya*, descriptive of the garden वैभ्राज mentioned in verse "अक्षय्यान्तर् &c."

Bha. ,*Sanâ.*, *Ram.*, *Hara.*, *Kalyâ.*, Wilson and two other MSS. omit this verse. *Mahima.* has-—" प्रक्षेपकोऽयं तथापि व्याख्यायते."

(XIV) दूराल्लक्ष्यम् &c. In connection with this *Mahima.* has the following note—" अनेन तोरणस्य उच्चैस्त्वं व्यज्यते."

कृतकतनयः &c. *Cf.* "सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते" *Sâ.* IV. 94. "अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।" *R.* II. 36.

हस्तप्राप्यस्तबकनमितः &c. In connection with this *Sâro.* has the following note.-"एतेनापरगृहव्यावर्तकं असाधारणं कर्म स्वधाम्नोऽभिधत्ते"।

कान्तया वर्द्धितो मे &c. *Cf.* "स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभं । अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे". *R.* VIII. 63.

(XV) मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा &c. *Sâro.* explains this as:—" मरकतशिलाभिः गारुत्मतदृशद्भिराबद्धः खचितः सोपानमार्गः पदस्थानिपथो यत्र सा ।" But *Su.* explains it thus:—"मरकतशिलाभिर्नीलमणिभिर्बद्धो रचितः सोपानमार्गो यस्याः सा"।

छन्ना &c. Here *Pârsvâ.* reads स्फीता and *Vallabha* and two other MSS. read स्यूता, where *Vallabha's* explanation is;—"स्यूता प्रोता सम्बद्धा । वाप्यां हि पद्मैर्भाव्यम्" ।

विकचकमलैः &c. *Mahima.* explains this as:-"विकचकमलैर्विकसितसरोजैः । विकाशवद्भिः पंकजैरित्यर्थः। अत्र कमलानां कृतकत्वं दिव्यानुभावात्तद्वर्णानुरूपत्वं वा" ।

व्यपगतशुचः &c. 'Freed from sorrow' because they are assured that even at the approach of the cloud the water will not be muddy, as the well was well-built &c. *Sâro.* explains this as;—" ननु किमिति व्यपगतशुचः यतो विद्युदलंकृतस्य मेघस्य नानावर्णकान्तिः समुत्पद्यते ते च तत्रस्थाः सदैव स्थिताः अनुभवन्ति । अतो घनानुकारि किं-

चिद्रूपान्तरं भविष्यतीति मन्यमानानां तेषां मेघागमनशंका नास्ति "। *Mahima.* has:—"तेषां धारासेककलुषितसलिलाशयविलोकनजः शोको न समुत्पद्यते। अत्र हि मेघधारावहनेनाकलुषितनीरत्वात् ।तस्यां पुनर्दिव्यभूमिस्वभावेन संसारजनितकालुष्याभावात् व्यपगतः छिन्नः शुक् शोको येभ्यस्ते व्यपगतशुचः संतोऽपि अपास्तशोकाः मानसं संनिकृष्टं समीपवर्तिनमपि न अध्यास्यन्ति न स्मरिष्यन्ति । एतावता वापीनीरस्य मानसपानीयादपि शान्तसौभाग्यमुक्तमिति काव्यार्थः " । *Su.* explains this as:—" राजहंसानां हि वर्षाऋतौ मलिनजलदर्शनात् शोकः स्यात्तद्वाप्याः जलं हि दैवानुभावात्सदैव निर्मलपानीयत्वं विकचकमलत्वं चेति भावः " । *Vallabha* has the following:—" तत्रैवोपद्रवाभावान्निर्दुःखाः " ।

(XVI) स्मरामि &c. स्मरण is that figure where there is the recollection of a thing upon the appearance of a thing similar to it.

निरुक्तकार takes त्वां with स्मरामि तमेव and proposes to impute the form of the hill to that of the cloud. Now when we impute the hill to the cloud we suppose for the time being, that the cloud is identical with the hill, that we may call the one by the other. Thus the idea of imputation involves necessarily the presence of the hill in the cloud. But if there be this sort of imputation here, the word स्मरामि in the text is wholly out of place, since recollection requires that the cloud should be although similar to, still quite distinct from the hill; and thus does not require the presence of the hill in the cloud. Recollection in fact is antecedent to and a pre-requisite of imputation and not identical with it.

If in order to escape this difficulty you assert that the conception of the hill (arising from the cloud) is the same as the recollection of it mentioned in the text, we reply that the assumption of conception being recollection is purely arbitrary. Since first recollection is based upon previous impression (observation) which is not the case with conception; and secondly it renders the mention of resemblance futile. And if you suppose that conception requires resemblance the supposition is false as being opposed to general experience which warrants the conception of *Hari* from the शालग्राम stone even though the latter does not bear the slightest resemblance to the former. Here *Val.* says.—" सादृश्यात्प्रियत्वाच्च स्मरणं । कातरत्वं तु विरहवशात् " ।

°वेष्टनप्रेक्षणीयः &c. Here *Mahima.*, *Hara.*, Wilson and two other MSS. read °वेष्टनः प्रेक्षणीयः and in favour of it they urge that the beauty of the क्रीडाशैल is the combined product of

इन्द्रनलिशिलाशिखरस्त्व and of कनककदलीवेष्टनत्व, and not of the latter alone as the original reading implies.

इन्द्रनीलैः &. *Cf.* " वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भैः " । *Nai.* II. 105.

क्रीडाशैलः &c. *Su.* explains it as:—" क्रीडाशैलो नाम पर्वतोऽस्ति"।

In connection with स्मरामि &c. *Sâro.* and *Mahima.* have the following annotations:—"सदृशाध्ययनवित्ताद्याः स्मृतिबीजस्य बोधकार इति सादृश्यं चात्र तमालश्यामलत्विषस्तडिल्लतापिशंगवपुषः पयोदस्य दृश्यमानमरकतमणिना सह श्यामलिम्ना संवद्दमानकनककदलीकपिलकान्तिरेखेण शिखरिणा साकं प्रतीयते एव" । " तथाहि तमालश्यामलत्विषस्तडिल्लताकर्बुरितोपान्तस्य मेघस्य कनककदलीपरिवेषपीतकान्तिमन्मरकतमणिश्यामलेन शिखरेण शिखरिणा क्रीडाशैलसादृश्यं प्रतीयमानमवेति इति काव्यार्थः "। *Mahima.*

(XVII) वामपादाभिलाषी &c. 'Longing for a kick from the left foot of a beautiful woman'. *Cf.* "अकुसुमितमशोकं दोहलापेक्षया वा प्रणिहितशिरसं वा कान्तमार्द्रापराधं" । *Mâlavi.* III. 12. also, "भवति न युक्तं नामात्रभवतः प्रियवयस्योऽशोको वामपादेन ताडयितुं" । also, "असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः । स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां । संपर्कमाशिञ्जितनूपुरेण" ॥ *Ku.* III. 26.

दोहदच्छद्मना &c. 'Under the plea of longing'. It was supposed by our poets that trees had different longings and they had to be satisfied before they put forth their blossoms. Wilson observes that these allusions refer to some particular notions of the Hindus respecting the केशर and अशोक, which plants are said to blossom upon being touched respectively by the face or foot of a female; the story is, probably, originally poetical. *Cf.* "कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति" ॥ *R.* VIII. 68. also, *Cf.*, *Mahima.*;— "पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः । शोकं जहाति बकुलो मुख [मधु] सीधुसिक्तः । आलोकनात्कुरुबकः कुरुते विकाशम् । आलिंगितास्तिलक उत्कलिको विभाति" ॥ *Sa'ro.* also says the same. *Pârsvâ.* and two other MSS. read दौहद° the original word of which दोहद° is the *Prâkrita* form.

कांक्षति &c. The kick by the foot of a female and the sprinkling by mouthfuls of wine are poetically imagined to be the cause of blossoming of the अशोक and the बकुल. Vide *Malli's.* commentary hereon. *Cf.* "मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या" ॥ *Râtna.* I. 8.

पार्श्वाभ्युदय reads this verse after 23rd ("नूनं तस्याः &c.").

(XVIII). वासयष्टिः &c. *Cf.* " अलिन्दे यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला । श्रयालुर्यां रात्रौ मदकलकलापी कलयति "। *Hansaduta.* 47.

तालैः &c. *Cf.* " भ्रमिषु कृतपुटांतर्मण्डलावृत्ति चक्षुः । प्रचलितचतुरभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या । करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं । सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि "। *Uttara.* III. 18.

शिञ्जावलय° &c. Here *Pa'rsva'., Val., Mahima.. Sâro., Meghalatâ., Su., Bha., Sanâ., Hara., Kalyâ.*, Wilson and nine other MSS. read सिञ्जद्वलय° or शिञ्जद्वलय° and explain it as :—"क्वणत्कंकणमनोहरैः " । *Bha.*; " सिंजन्ति शब्दायमानानि यानि वलयानि तैः सुभगैः " । *Su.*; " शिंजत्कनककटकमनोरमैः *** शिञ्जेरात्मनेपदित्वात् शिञ्जदिति प्रयोगः प्रमादजः । अनित्यो वानुदात्तङितआत्मनेपदविधिः" *Val.*; " सिंजत् शब्दायमानवलयैः सुभगास्तैः कंकणशब्दसहितैस्तालैः " *Mahima.*; " शिंजद्वलयसुभगैः शब्दायमानकंकणरमणीयैः शिञ्जन्ति शब्दायमानानि मणिमयानि कटकानि तैः सुभगैर्मनोहरैः । शिंक्त इत्यच् । शिंज इवाचरतीत्यादिक्विब्लोपे परस्मैपदं ॥ ननु शिंजतेरात्मनेपदित्वात् शानचा भवितव्यं । अतः शिञ्जदित्यसाधुपदं । अत्र समाधीयंत । शिंजि अव्यक्ते शब्दे । अत एव शिंक्ते । पचादित्वादच् । स इवाचरतीत्यादिक्विब्लोपे सति परस्मैपदं । शिंजदिति वर्तमाने शतृ " । *Sâro.*; And further on it notices:—" सभ्रूभंगे करतललयैर्नर्तितः इति पाठान्तरे । अत्र करतला ये लयास्तैः हस्तद्वयाघाततालस्तदन्तरे विश्रामकालः तालकालयोरन्तरे लयः समुत्पद्यते । स च द्रुतविलंबितमध्यभेदात्त्रिधा तैर्निमित्त." । *Mahima.* also notices the reading "सभ्रूभंगं करतललयैर्नर्तितः इति पाठान्तरं तत्र चायमर्थः । करतलयोर्लयास्तैर्हस्तद्वयाघातस्तालः । तदन्तरे विश्रामकालस्तालः कालतालयोरन्तरे लयशब्दः मुत्पद्यते स लयस्त्रिविधः द्रुतविलंबितमध्यभेदात् " ।

Prof. Isvarachandra prefers the reading शिंजद्वलय° saying " अयमेव पाठः साधीयान्. "

(XIX). शंखपद्मौ &c. Two of the nine treasures of Kubera which are thus enumerated by *Kshirasvâmin* in his commentary on *Amara.* They are:—" महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ । मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव " । But *Râyamukuta* in his commentary on Amara, quotes the following from शब्दार्णव:-"पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दली[नी]लाश्च खर्वश्च निधयो नव इति" The शब्दरत्नावली also has the same reading. In *Hemachandra,*

हारावली, and the शब्दमाला, कुन्द is substituted for नन्द. But हारावली reads वर्च for खर्व. *Cf. Sa'ro.* "तौ हि अधोभागे पुरुषरूपौ गृहद्वारशाखासु मंगलार्थे आलिख्येते ॥ *Mahima.* has:— "तौ हि अधोभागे कलशमुद्रावालिख्य अग्रे पुरुषरूपावेव गृहद्वारशाखासु अद्यापि मनुष्यलोके मंगलार्थमालिख्येते ॥ Agreeably to the system of the *Tàntrikas*, the *Nidhis* or treasures are personified, and upon certain occasions, as the worship of लक्ष्मी, the goddess of prosperity &c., come in for a share of religious veneration. They have also their peculiar *Mantras*, or mystical verses.

क्षामच्छायं &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following note:—"सूर्यापाये सूर्याभावे इति । तत्र । अत्र सर्वथाच्छायाविनाशस्याभिप्रेतत्वात् । यदत्र क्षामच्छायत्वमेवोक्तं । अत एव अभिक्षां न पुष्यतीत्यवादि । यक्षे च कुशलिनि सर्वथा याध्वंसस्यासंभवाव (?)" । *Mahima* has:— एतावता हे मेघ वल्लभा मय्यत्यंन्तरागिणी । अहमपि तस्यां तथैव । यतः । वल्लभा एव जीवानां प्राणिनां चाधाराः । यदुक्तं । जये धरित्र्याः पुरमेकसारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने वरस्त्री रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः" ।

पुष्यति *Cf.* " वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभाम् " *Sa'.* I. 19.

(XX). शीघ्रसंपातहेतोः &c. Here *Bha.*, *Râm.*, *Hara.*, Wilson and two other MSS. read तत्परित्राणहेतोः and explain it as:— "तस्यास्तव सख्याः परित्राणहेतोः रक्षाकारणात् " । *Bha.*

तन्वी &c. *Val.* and *Mahima.* have this verse and the further one as युग्म; for they say:–" तन्वी श्यामेति तां जानीया इति युगलकम्" ।

श्यामा &c. In connection with this *Mahima.* has the following note:—" अप्रसूता भवेच्छ्यामा तन्वी च नवयौवना " ।

शिखरिदशना &c. *Sâro.* reads "अशिखरिदशना and शिखरदशना, and explains these as follows:—" अशिखरा तीक्ष्णा दन्ता यस्याः सा अविषमदशना इत्यर्थः । अथ च शिखरं पक्कदाडिमबीजाकारं माणिक्यं तद्वत् उज्ज्वलतया दशना दन्ता यस्याः सा इत्यधरौष्ठरागित्वम् " ।

पक्कबिम्बाधरोष्ठी &c. *Cf.* " बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियायाः " *Sa'.* II.

मध्ये क्षामा &c. *Cf.* " मग्ना सुधायां किमु तन्मुखेन्दोर्लग्ना स्थिता तत्कुचयोः किमन्तः। चिरेण तन्मध्यममुञ्चतास्य दृष्टिः कृशीयः स्खलनाद्भिया नु"। *Nai.* VII. 5.

स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां &c. *Cf.* " आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्याम् " । *Ku.* VII. 53.

या &c. Antecedent in the next verse. The difference in the syntax of the English and the Indian languages does not allow us to call the noun antecedent, as the relative always goes before the noun in Sanskrit and the Vernacular languages of India viz: Marathi, Gujaràthi and others.

युवतिविषये &c. Here *Pârsavâbhyudaya* reads युवतिविषया &c. This must be connected with सृष्टिः and admits of another interpretation; viz: " The first creation of which the object was a woman " *i. e.* she was created before every other thing in the world.

सृष्टिराद्या &c. Here *Val.* has the following note:—" आदौ ब्रह्मणुद्देशाद्रम्यं निर्माणं भवति " ।

धातुः &c. *Cf.* " पुराकृति स्त्रैणमिमां विधातुमभूद्विधातुः खलु हस्तलेखः " । *Nai.* VII. 15.

(XXII). परिमितकथां &c. *Su.* explains this as:—" सतीत्वात्स्वल्पभाषिणीं " ।

जीवितं मे द्वितीयं &c. *Cf.* " सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः " *D. K.* II. 2.

मयि सहचरे &c. *Mahima.* explains this as:—" यतोऽहं सहचरतुल्यः । ततोऽहं तस्या विरहाद्विकलस्वरूपोऽस्मीति । उक्तं च । यत्रोदारा दारास्तत्र च कान्तः सुतो भवेत्कान्तः । यत्र च कान्तः कान्तस्तत्र न दारा गुणोदाराः । द्विजराजमुखी मृगराजकटी कलशो यमराजदुरोजतटी । यदि सा सुभगा हृदये वसति कुजपः कुतपः कुसमाधिविधिः । इति हेतुर्मम द्वितीयं जीवितं पुनर्भावयति । यथा । आवर्त्तसंशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां । दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानां स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडं । स्त्रीयंत्रं केन सृष्टं विषममृतनिभं प्राणिनां मोहपाशः ॥ अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषाचलाव । प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलात्सफणीभृतः । इतरफणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधैः । चटुलवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मंत्रिणः " ॥

चक्रवाकीं &c. The pair of चक्रवाक is supposed to be the type of constancy and connubial affection by poets. They are doomed for ever to nocturnal separation for having offended a saint. For their separation and affection compare:—" सरसि

नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहां ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः। इति च भवती जायास्नेहात्पृथक्स्थितिभीरुता। मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः ” ॥ also:—“ रथाङ्गनामन् वियुतो रथाङ्गश्रोणिबिम्बया। अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः” । *Vi.* IV. 20, 18. Also:– “ रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनम् ” । *R.* III. 24.

शिशिरमथितां &c. The word शिशिर here may also mean 'frost,' which is identical with the sense of तुहिन in the reading तुहिनमथितां. *Cf.*:—“ अथ वा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः। हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ” । *R.* VIII. 45.

Sa'ro., Meghalatá, Val., Mahima., and seven othes MSS. read तुहिनमथितां and explain it as:—“ हिमकदर्थितां । अथ तुहिनमथित पद्मिनी अन्यरूपा भवति । ज्ञानक्रियया व्याप्तत्वात्सर्वत्र कर्मकारकं ” । *Sâro.*; “ हिममर्दितां कमलिनीमिव ” । *Mahima.*

(XXIII). Four Uria MSS. omit this verse. हस्तन्यस्तं &c. In connection with this *Mahima.*has:—“ स्वभावश्चायं शोकाकुलितचेतसां सीमंतिनीनां ”।*Sâro.* also has the same.

लम्बालकत्वात् &c, In connection with this *Sa'ro.* has a curious note:—“लम्बाः कर्तनादिसंस्काराभावाद् प्रवृद्धा अलकाः भालावलंबिनः कुटिलाः केशास्तेषां भावः लंबालकत्वं तस्माद् कपोलविलंबिकेशत्वाद् ” ।

इन्दोर्दैन्यम् &c. For the face of a woman with the dishevelled hair hanging over it compared to the rising moon as yet hidden in the darkness of the night, *Cf.* “ उदयगूढशशांकमरीचिभिः । तमसि दूरमितः प्रतिसारिते । अलकसंयमनादिव लोचने । हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम् ”। *Vi.* III. 6.

(XXIV). मधुरवचनां &c. Here *Pârsv.* and two other MSS. read मधुरवचनं Then it must be taken as an adverb modifying पृच्छन्ती. The whole means–'addressing the सारिका in sweet words &c.'

रसिके &c. *Malli.* does not explain this word; but it must be taken to mean, 'one who appreciates excellence.' *Sâro.* explains it as, रसोत्पादकवाक्ये O sweet speaking one. But this would render मधुरवचनां superfluous and मधुरवचनं would then suit better.

Val., Sanâ., Râm., Hara., Wilson, and two other MSS. read निभृते for रसिके and explain it as:—“ हे निभृते विनीते.” *Val.*; “निभृते निःशब्दे. ” *Sanâ.*; “ निभृते निर्जनदेशे. ” *Râm.* and. *Hara.*

Sâro. takes the figure of this verse to be दीपक and defines it thus:—" जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्र वर्तिना । सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं बुधाः " See *Dandin's* काव्यादर्श page 152.

(XXV). मलिनवसने &c. 'Having over it as a covering a dirty garment'. When the husband is abroad a woman should not decorate her person, nor should she wear rich and clean garments &c.' *Cf. Sâro*:- " विरहत्वादधौतवस्त्रे इति अलंकृतित्यागात्तस्याः पतिव्रतत्वं प्रतिपादितम् " ।

विरचितपदं &c. *Mahima.* explains it as " विरचितानि स्वयं स्वराणामारोहावरोहे क्रमेण सूत्रितानि पदानि यत्र तत्तथा । अत एव पदस्थः स्वरसंघातो गेयं " । *Val.* also explains this similarly, for he says:— " पदस्थो हि स्वरसंघातो गेयम् " ।

सारयित्वा &c. *Malli.* takes this word to mean, 'having rubbed (the string in order to remove the moisture on it) '; *Val., Su.,* and *Sâro.* take it to mean, ' having adjusted (the string properly).' Their explanations are:—"सारयित्वा योजयित्वा ॥ " *Val.*; "सारयित्वा स्नायुरज्जुं सज्जीकृत्य " *Sâro.*; " सारयित्वा रचयित्वा " *Su.*

कथंचित् &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following note:—"दुःखनिर्भरहृदयत्वात्" ।

मूर्च्छनां &c. 'A duly regulated rise and fall of sounds conducting the air and harmony through the keys in a pleasing manner.' They are thus given by *Sâro.* from the नारदीयाशिक्षा. " सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः । ताना एकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलं । षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा । पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः । षड्जमध्यमगांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः । भूर्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः । स्वर्गान्नान्यत्र गांधारो नारदस्य वचो यथा " । And further on it says:—" षड्जं वदति मयूरो गावो रंभंति चर्षभं । अजा वदति गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमं । पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पंचमं । अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुंजरः" । ने-

तंत्रिमार्द्राम् &c. Here *Pârsvâ., Bha., Sana'., Râm., Hara.,* Wilson and three other MSS. read, " तंत्रीरार्द्राः " where *Bharata's* comments are:- " तंत्रीरिति बहुवचननिर्देशेन परिवादिनीपरिवादनकौशलस्य सूचितत्वाद्वैदग्ध्यं ध्वनितम् " । and Prof. Isvarachandra Vidyásâgara says, "अयमेव पाठः साधीयान् ".

(XXVI) विरहदिवसस्थापितस्य &c. Here *Sâro.*, *Meghalata'*, *Val.*, *Mahima.*, *Su.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson, and five other MSS. and the printed edition of Bhatavadekar read "गमनदिवसस्थापितस्य" and explain it as, "वियोगदिनकृतस्य संवत्सरपरिमाणतया कल्पितस्य"। *Sa'ro.*; "गमनदिवसे स्थापितः संवत्सरपरिमाणतया कल्पितोऽवधिर्यस्य तस्य"। *Mahima.*; "गमनदिवसात्प्रारब्धस्य"। *Su.*; "गमनदिवसात्प्रवृत्तो योऽवधिर्वर्षाख्यस्तस्य"। *Val.*; "प्रस्थानदिनात्प्रभृति व्यवस्थापितस्य"। *Bha.* &c.

देहलीदत्तपुष्पैः &c. Here *Pa'rsva'.*, *Sa'ro.*, *Meghalata'.*, *Val.*, *Mahima.*, *Su.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, *Lakshmi.*, Wilson and nine other MSS. read, "देहलीमुक्तपुष्पैः" and explain it as, "देहली उदुम्बरदारु तस्याः सकाशान्मुक्तानि भूमौ निहितानि यानि पुष्पाणि तैः। अथ वा। गृहद्वारदारु तदधिष्ठात्री देवता तस्याः पूजार्थं प्रत्यहं पुष्पाणि मुंचते इति"। *Saro.*; "देहली उदुम्बरदारु तस्याः सकाशात् मुक्तानि भूमौ निहितानि यानि पुष्पाणि। अथ वा। गृहद्वारदारुणि अधिष्ठातृदेवपूजार्थं पुष्पाणि मुंचते इति।" *Mahima.*; 'देहल्यां दारुविशेषे मुक्तानि देवपूजार्थं पुष्पाणि कुसुमानि यानि तानि तैः' । *Su.*; "देहल्यां द्वारविशेषे द्वारपूजार्थं मुक्तैर्दत्तैः पुष्पैः"। *Val.*; "देहल्यां गृहद्वारि मुक्तैः क्षिप्तैः पुष्पैः" *Bha.* &c. Prof. Isvarachandra says, अयमेव पाठः साधीयान्. From this it appears that the threshold of the front door of a house was, generally, made of उदुम्बर wood.

आस्वादयन्ति &c. Here *Sa'ro.*, *Mahima.*, *Bha.*, *Ram.*, *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson aud eight other MSS. read आसादयन्ती and explain it as "प्राप्नुवती." *Mahima*; "प्राप्नुवती. *Bha.*; "आसादयन्ती अनुभवन्ती." *Sa'ro* (*Sa'ro.'s reading does not appear to be* आसादयन्ती *for* अनुभवन्ती is the exact equivalent for आस्वादयन्ती and not for आसादयन्ती, but the MS. in our possession clearly reads आसादयन्ती; which probably may be a mistake of scribe who wrote the manuscript.)

† *Bharata*, *Haragovinda*, Wilson and one of the Uria MSS. read "°विरहे ह्यंगनानाम्." Prof. Isvarachandra and Pandit Pra'nana'tha of Kashmir prefer this reading. They say:—"अयमेव पाठः साधीयान्." "इति वा समीचीनः पाठः।"

(XXVII) अलम् &c. Here *Pa'rsva'.* and two other MSS. read अतः, This reading is preferable because it serves the antecedent clauses with the subsequent one.

अवनिशयनां सौधवातायनस्थः &c. Here *Sa'ro.*, *Meghalatâ*, *Su.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Lakshmi.*, and nine other MSS. read " अवनिशयनामन्नवातायनस्थः", and explain it as, " अवनौ भूमौ शयनं शय्या विरहसंतापाद् व्रताद्वा भूशयनं तस्यासन्नः सन्निकृष्टो वातायनो गवाक्षसूत्रं तस्मिन्न तिष्ठतीति स्थः सः । अनेन पयोदस्य योग्यदेशावस्थानकथनं" । *Saro.*; " भूमिशयनात् समीपगवाक्षे तिष्ठतीति" । *Su.*; " अवनिरेव भूमिरेव शयनं शय्या तस्यासन्नं सन्निहितं यद्वातायनं गवाक्षस्तत्र स्थितः सन्" । *Bha.* &c. And *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson and two other MSS. read, " अवनिशयनां सन्नवातायनस्थः," and explain it as, " सन्नवातायनस्थो निकटगवाक्षस्थः सन्" । *Hara.*; " सन्नवातायनस्थः मग्नगवाक्षस्थितः सन् । अनेन भवनस्य दुरवस्था प्रोक्तेति भावः" ॥ *Kalya'.*; and *Val.*, *Mahim.*, *Bhâtavadekar*, *Pârsvâ.*, and three other MSS. read, " सद्मवातायनस्थः" । and explain it as:—" सद्मनः गृहस्य वातायनं गवाक्षं तिष्ठतीति" । *Mahima.*; "मद्गेहगवाक्षनिकटस्थः" । *Val. &c.*

रात्रौ &c. Again, my wife will easily spend the day, observes Yaksha, in the ordinary household duties that are *now* incumbent on her, but the night may particularly become restless with her since having nothing to do at this time she will be more deeply afflicted. *Cf.* "कार्यान्तरितोत्कण्ठं । दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण । अविनोददीर्घयामा । कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ॥ *Vi.* III. 4.

अवनिशयनां &c. *Sàro.* explains this as, "अवनौ भूमौ शयनं शय्या विरहसंतापाद्व्रताद्वा भूशयनं । "

(XXVIII). *Sâro.*, *Mahima.*, *Lakshmi.*, and eight other MSS. connect this and the following three stanzas with the 24th ("आलोके ते &c.") like the 25th and the 26th leaping over the 27th. And hence the epithets of the *Yaksha's* wife are read as being in the nom. case, inorder that they might agree with सा in that stanza. But it would be more appropriate to connect these epithets with "साध्वीं पश्य" in the 27th, which requires that they should be read as being in the accusative case, because the context of the 27th is more immediate to the 28th than that of the 24th. These stanzas may be consistently connected with the 32nd (सा सन्यस्ता &c.) where we also get सा in the nom. case. *Sumativijaya* first comments upon the following three stanzas: viz., "आलोके ते," उत्संगे वा," and "शेषान्मासान्" taking these together as विशेषक, and then begins to write his commentary on "सव्यापारान्," "आधिक्षामां, " "निःश्वासेन," " आद्येबद्धा" and

" पाशानिन्द्रो: &c." also taking these together as कुलक. From this it appears that *Sumativijaya* too connects these verses in the same manner as we have shown in the above note with a slight modification.

सन्निषण्णैकपार्श्वां &c. Here *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.* and Wilson read " सन्निकीर्णैकपार्श्वां and explain it as, संनिकीर्णं सम्यक् निक्षिप्तम् एकं पार्श्वं यया तादृशीं विस्मृतपार्श्वान्तरपरिवर्तनामित्यर्थः । *Bha.* &c.

प्राचीमूले &c. The मूल means the root, the lowest edge or extremity of the eastern direction, hence the eastern horizon.

In connection with सन्निषण्णैकपार्श्वाम् *Sa'ro.* and *Mahima.* have the following note:–" क्षामत्वात्परिवर्तितुमसमर्थेति भावः. "

क्षण इव &c. Here *Pa'rsvâ.*, *Sa'ro.*, *Meghalata'*, *Mahima.*, *Su.*, *Val.*, *Lakshmi.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, Wilson and eight other MSS.; read, "क्षणमिव " and explain it as, "क्षणमिव मुहूर्तमिव" । *Sa'ro.*; " क्षणमिव क्षणमात्रमिव" । *Su.*; " क्षणमिव क्षणवादीति ।" *Val.*; क्षणमिति लोकोक्त्या अल्पकालोपलक्षणम् । यद्यप्यमरकोषादौ तास्तु त्रिंशत् क्षण इति क्षणशब्दस्य पुंस्त्वं दृष्टं तथापि । " क्षणमिव गमितो वासरो वासवेन " इति । " नीता रात्रिः क्षणमिव मया" इत्यादिप्रयोगदर्शनात् नपुंसकत्वमव्याहतम् "। *Bha.*; " क्षण इवेति युक्तः पाठः कालिदासप्रयोगान्नपुंसकलिंगोऽयमिति वा " । *Ra'm.* &c. *Cf.* " अथालापे कृते वृत्ते गांधर्वोद्वाहकर्मणि । अवर्धत तयोः प्रीतिर्दंपत्योर्न तु यामिनी " *Katha'sa.* III. 67 also " किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगाद् । अविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण । अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णोः । अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् " । *Uttara.* I. 26.

विरहमहतीम् &c. Here *Sa'ro.*, *Meghalata'*, *Mahima.*, *Lakshmi.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson and eight other MSS. read विरहजनितैः and explain it as, " वियोगोत्पन्नैः" *Sa'ro.*; "विप्रयोगसंभूतैः " *Mahima.* &c. But *Val.*, *Su.* and two other MSS. read विरहपतितैः and explain it as, " भर्तृविरहात्पतितैः " । *Su.* &c.

Vallabha reads this verse in the following manner:—"आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां । प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः। मत्संयोगः सुखमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम् । आकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् " । and after this he reads:— "निश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं । शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बि । नीता

रात्रिः क्षणमिव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या । तामेवोष्णैर्विरहपतितैरश्रुभिर्यापयन्तीम् ” । and then, “ पादानिन्दोः &c.”

(XXIX). *Pa'rsva'bhyudaya*, Wilson and a few others read this after the 31st verse *i. e.* “ आद्ये बद्धा ” &c.

स्थलकमलिनी &c. A lotus growing on land. Yaksha's wife lying as she does on the ground is appropriately compared to स्थलकमलिनी. *Cf. Sa'ro.*:— “ भूमिशयनात्तस्याः स्थलकमलिन्यामुपमानमुपपन्नम् ” । also *Vallabha*, “अतश्च साभ्रेऽह्नि स्थलकमलिनीमिवेत्युपमा सा हि साभ्रत्वान्न प्रबुद्धा दिनवशाच्च न सुप्ता ” ।

One of the four Uria MSS. omits this stanza.

(XXX). मत्संभोगः &c. *Pa'rs'va'.*, *Sa'ro.*, *Meghalatâ*, *Val.*, *Mahima.*, *Lakshmi.*, *Su.*, *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson and ten other MSS. read मत्संयोगः here. This reading is better. *Cf.* “ हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा । कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीं । न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां । मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ” । *Vi.* II. 10. Prof. Isvarachandra also prefers this reading and says :–“ अयमेव पाठः साधीयान्. ”

कथम् &c. This word is explained as, “केन प्रकारेण—how?” in the text of *Mallina'tha's* commentary as given by the manuscripts in our possession which we have adopted; but taking this interpretation we cannot satisfactorily make out the meaning of the line. The text of the commentary as found in the printed copies explains it as, “ केनापि प्रकारेण–” ‘somehow,’ which makes the line intelligible; but this sense is unwarranted.

इति &c. *Mallinâtha* explains it as, ‘ आशयेन–intending’ ; and refutes a supposed objection why आशयेन is not added by saying that the addition is redundant because इति serves the purpose. Again there is here a difference between the texts of the commentary as given by manuscripts and by Bhatavadekar. The latter runs thus:—“इति मत्वेति शेषः। इतिनैवोक्तार्थत्वादप्रयोगः। प्रयोगे वा पौनरुक्त्यमित्यलंकारिकाः ” But both the meanings conveyed by both are identical.

निद्राम् &c. *Cf.* “प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः ” *Sâ.* II. also, “ अस्त्रं प्रस्वापनमपि मया लब्धमुन्निद्रकेण । यस्मिन्नेतन्निहितमथ ते स्वप्नसन्दर्शनाय । जाग्रद्भावे भवति भवती भावनीयैव धिङ्मे तेनाशेषस्फुरणशमनो हन्त जाता सुषुप्तिः”। *Uddhavaduta.* 129.

"नायं स्वप्नो निशि निशि भवेद्यत्तया संगतिर्मे । पश्यामीदं विधुमुखि निराबाधमास्वादयामि । किं तु ज्ञातं त्वयि विजयते काचिदाकृष्टिविद्या । यां संसन्ती हरसि तरसा मामदूराद्यदूनाम्"। *Uddhavasandesa.* 124.

(XXXI). हित्वा &c. *Cf.* "तत्र नित्यविहितोपहूतिषु । प्रोषितेषु पतिषु द्युयोषिताम् । गुंफिताः शिरसि वेणयोऽभवन् । न प्रफुल्लसुरपादपस्रजः"। *Si.* XIV. 30.

मयोद्वेष्टनीयाम् &c. In connection with this *Sâro.* has the following remark:-"इति अस्याः महासतीत्वं प्रतिपादितं."

(XXXII). आर्द्रान्तरात्मा &c. In connection with this *Sâro.* and *Mahima.* have the following explanation:-"अथवा आर्द्रः अकर्कश अन्तरात्मा ययोः इति"। *Mahima. &c.*

नवजलमयम् &c. Here *Sana'.*, *Hara.*, *Kalya'.*, and Wilson read "जललवमयम्" । Prof. Isvarachandra Vidyásàgara prefers this reading and says:—"अयमेव पाठः साधीयान् । नवजलमयमिति पाठे नवेति विशेषणस्यानुपयोगात्."

(XXXIII). सुभगंमन्यभावः &c. 'The state of supposing ourselves to be handsome (according to *Mallinatha*) or beloved.'

(XXXIV). मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलाम् &c. Here *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, Wilson and three other MSS. read मीनक्षोभाकुलकुवलयश्रीतुलाम् and explain it as:—"मीनस्य मत्स्यस्य क्षोभेण संघट्टनेन आकुलं चंचलं यत्कुवलयं नीलोत्पलं तस्य या श्रीः शोभा तस्यास्तुलां सादृश्यम्"। *Bha.* &c. Prof. Is'varachandra prefers this reading, saying,—"अयमेव पाठः साधीयान्."

(XXXV). वामश्चास्याः &c. Here *Val.* and two other MSS. read वामो वास्याः and explain it as, "वा शब्दो नयनस्पन्दापेक्षया वैकल्प्ये।" *Val.* &c.

त्याजितौ दैवगत्या &c. *Mahima.* explains it as, दैवगत्या दैवबलेन त्याजितौ मोचितौ यतो दैवगतिर्बलीयसी। उक्तञ्च। "विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया"। "भ्रमन्वनान्ते नवमंजरीणां [॰रीषु] न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत् । सा किं न रम्या स च किं न रन्ता गरीयसी [बलीयसी] केवलमीश्वरेच्छा"।

यास्यत्यूरुः &c. *Cf.* "नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः। लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः"। *Ku.* I. 36.

सरसकदलीस्तंभगौरः &c. Here *Pârsvâ.* and two other MSS. read सरसकदलीगर्भगौरः which appears better, as in point of whiteness the interior of a plantain-tree surpasses its exterior. *Vallabha, Sana'tana, Haragovinda,* Wilson and two other MSS. read कनककदलीस्तंभगौरः. Prof. Isvarachandra prefers this reading and gives reasons for his preference. He says,—"अयमेव पाठः साधीयान् "कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः" इत्यत्र अलकायां कनककदलीनां वाहुल्यदर्शनादुपमिति काले तासामेव बुद्धिस्थत्वात्" ।

(XXXVI). याममात्रं &c. In connection with this *Mahima.* has the following note. He says , — " उत्तमस्त्रियो हि प्रहरमात्रं प्रहरमेव निद्रां कुर्वन्तीति पद्मिनीत्वं प्रकाशितं भवति । यतः । " पद्मिनी यामनिद्रा च । द्विप्रहरा च चित्रिणी । हस्तिनी यामत्रितया । घोरनिद्रा च शंखिनी" । इति वचनात् । याम is a प्रहर or three hours.

The termination मात्र is added in the sense of एव 'Just, only, nearly about.' *Cf.* "महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्" | *R.* II. 50.

अन्वास्यैनां &c. In connection with this *Val.* has the following annotation:—"अन्वासनं सेवनं यथा । अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजं"। *R.* I. 56. " गुरोर्नियोगाच्च नगेन्द्रकन्या स्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम् । अन्वास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं मया मत्प्रणिधिः स वर्गः"। *Ku.* III. 17.

एनाम् &c. As to the use of *Acc. Cf.* " तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः" । *R.* II. 24.

सहस्व &c. Here *Bha., Hara., Kalyâ.,* Wilson and one Uria MS. read सहेथाः. Prof. Isvarachandra prefers this reading and says,—— "अयमेव पाठः साधीयान्".

(XXXVII). विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनाम् &c. Here *Bha., Ra'm., Hara.,* and Wilson read विद्युत्कम्पास्तिमितनयनां and explain it as, "विद्युतः कंपेन चलनेन स्तिमिते निश्चले नयने लोचने यस्यास्तादृशीम् "। *Bha.;* "विद्युता सह कंपते इति विद्युत्कंपो मेघः तस्य संबोधनं हे विद्युत्कंप इति" । *Ra'm.;* "विद्युत्कंपेन तडित्प्रकाशेन स्तिमितनयनां आकस्मिकप्रकाशात् स्थिरीकृतलोचनाम्." *Hara.* And *Mahima., Val., Kalya'., Sa'ro., Su.,* and seven other MSS. read विद्युद्गर्भ स्तिमितनयनां and explain it as,——"कथं भूतस्त्वं विद्युद्गर्भः विद्युत् गर्भे मध्ये यस्य सः स्त्रीद्वितीयः । परनारीसंभाषणमेकाकिनो नोचितं । अथ हे विद्युद्गर्भ। अन्तर्गूढविद्युता भवता भाव्यं अन्यथा भीरुत्वात्सा भेष्यतीति । किं भूतां तां स्तिमितनयनां निर्मेषनेत्रां इति "। *Saro.;*"हे वि-

घद्गर्भ विद्युद्गर्भे यस्य सः । तथा संबोधनद्वारेणोपदेशं ददाति। भवता अन्तर्गतविद्युता तत्र भवितव्यामिति भावः। अन्यथा भीरुस्वभावत्वाद्वनितानां। सा भेष्यतीति "।*Kalya'*.; " विद्युद्गर्भ विद्युत्सौदामिनी गर्भे मध्ये यस्यासौ विद्युद्गर्भः। तस्य संबोधनं हे विद्युद्गर्भ। इति संबोधनद्वारेणोपदेशं ददाति। हे मेघ सौदामिनी गर्भे एव स्थाप्य बहिर्न प्रकाश्यं कथं विद्युद्दामचमत्कारचेष्टितैः सा भेष्यति अत एव भीरुतया अबलात्वेन तस्या धैर्य कुतः(?)"। *Mahima.*, "भो-विद्युद्गर्भ विद्युत् तडित् गर्भे मध्ये यस्य सः भो मेघ. &c."*Su.* &c. *Sa'ro.* interpretes विद्युद्गर्भः as स्त्रीद्वितीयः because as it says, conversation by a man when alone with the wife of another is regarded as indecorous.

अभिनवैः &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following note:—"सुमनसोऽपि प्रभाते शीतवातस्पर्शेन बाध्यन्ते" ।

धीरः स्तनितवचनैः &c. *Pârsvâ.* reads "धीरस्तनितवचनः" 'having deep words of thunder.' So does *Râmanâtha*; who says, "मन्दगर्जितवाक्यः सन् । धीरध्वनितवचनमिति पाठे क्रियाविशेषणम् । भो धीर सावधान इति वा सम्बोधनं" । *Su.* also says, "धीर इति संबोधनमपि मेघस्यापि भवति." But he does not read धीरस्तनितवचनः. *Bharata.* and one Uria MS. read धीरध्वनितवचनैः and explain it as,-"मन्दगर्जितरूपवाक्यैः । हे धीर सावधानेति संबोधनं वा । धीरस्तनितवचनैरिति क्वचित्पाठः । धीरध्वनितवचनः इति पाठे मन्दगर्जितवाक्यः सन् । धीरध्वनितवचनमिति पाठे क्रियाविशेषणम्" । But *Val.*, *Su.*, *Mahima.*, *Lakshmi.*, *Meghalata'*, Wilson and nine other MSS. read " धीरस्तनितवचनैः."

प्रक्रमेथाः &c. *Cf.* " दूत्यं स्वस्य प्रणयहृदयस्त्वं निवेद्यानवद्यं । धीमन् सद्यो मम कथयितुं वाचिकं प्रक्रमेथाः "। *Uddhavasandesa.* 120.

(XXXVIII). अविधवे &c. The word विधवा is an example of what is in grammar termed 'the deterioration' of words. The condition of widowhood being considered inauspicious, it has now got a tinge of contempt about it which, from the use of the word made by such a poet as *Ka'lida'sa*, it is inferred it did not possess the sense of contempt in former times. *Cf.* " नार्यश्चाविधवा नित्यं पतिशुश्रूषणे रताः" । *Ra'ma'y.* I. 92.

मित्रं प्रियम् &c. *Mahima.* explains it as, " प्रियं मित्रं इति याञ्चावचनमात्रेण मेघः सुहृज्जातः अहो मेघस्योत्तमत्वम् । यदुक्तं । मनसि वचसि

कायै पुण्यपीयूषपूर्णाः । त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः । परगुणपरमा- णून्पर्वतीकृत्य नित्यं । निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः" ।

हृदयनिहितैः &c. *Sa'ro.* explains this as:-"मनसि निहितैः (this appears to be its reading) चित्ते स्थापितैः स्तोकमपि अविस्मृतैः यत्तेन संदिष्टं तन्मनो मनागपि न विस्मृतं । न पुनरहं केवलं वार्तामात्रकथकः किं तु पतिवियुक्तकामिनीकामुकसंघट्टननिपुणः इति स्वशक्तिमावेदयन्नाह ।"

यस्त्वरयति &c. In connection with this *Val.* has the following remarks:— "यस्त्वरयत्यंबुवाहापेक्षया पुंस्त्वं प्रथमपुरुषनिर्देशश्च मित्रपदापेक्षया हि दुर्घटमेतद."

मन्द्रस्निग्धैः &c. With reference to this *Sa'ro.* has the following note:-" धीरमधुरैः । यतः " उदारमरूक्षं च दूतवचनं प्रशस्यते."

अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि &c. *Sa'ro.* interpretes it as, " एतेन तासां पतिव्रतात्वकथनं । यतस्ताः स्वभर्तृषु आगतेषु तद्बन्धमोक्षं कुर्वन्ति नान्यथेति. "

(XXXIX). मैथिलीवोन्मुखी सा &c. *Maithili* is the name of *Sita*, daughter of *Janaka*, the king of *Mithilâ*, a city, the capital of Videha or North Behâr which corresponds to the medern Tirhut and Purniya between the Gandaki and Kosî or Kausiki rivers. It has given its name to one of the five northern nations of Brahmanas, and to a school of law. It was the country of king Janaka, and the name of his captial, Janakapura, still survives in "Janakapoor," on the northern frontier. Anandoram Boorooah says that on the north-east of वैशाली, lay the kingdom of विदेह with its capital मिथिला ("सुमराविदाह्मि मिाहिलं महानअरिम् । ...... दर्शय सीतायै जनकस्य राजधानीं" ॥ *Bâl. Râm.* X. In some lexicons, विदेह is given as a synonym of मिथिला. But I do not remember meeting it in this sense. The following passage from दशकुमार III. distinguishes the country from the town:- "अहमस्मि पर्यटन्नेकदा गतो विदेहेषु । मिथिलामप्रविश्यैव ......"). Janakapura in Nepal north of Madhuváni is still identified as मिथिला, the capital of जनक, with all its ancient associations. Sîtamâri (probably Sitâmâri " where Sîtà was furrowed out") claims the honour of giving birth to Sitá, daughter of Janaka (Râmáy. III. 4 ch.). सीताकुण्ड, 12 miles east of Matihari is still revered as the tank where Sitá bathed on her way to marriage. विदेह, therefore, must have comprised, besides a portion of Nepal, all these places or in other words the northern part of the old district of Trihut and the

north-western portion of the district of Cham'paran. The country is still known as मिथिला in learned quarters. Its Brahmanas are broadly distinguished from the Brahmanas of Bengal and it is still governed by the Mithilà school of law, most ably represented in the वीरमित्रोदय of Mitra Misra. The people of विदेह must have formerly traded a good deal, as वैदेहक or resident of विदेह is given by Amara as a synonym of merchant ("वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वणिजो वणिक्" II. 9. 7. 8). Tîrabhukti from which Tirhut is derived literally means "possessions on or along banks" and probably included the country along the Gandaka river. At one time, its kings were supreme in this part of India and I understand an era is still extant commemorative of the rise. According to the त्रिकाण्डशेष ("तीरभुक्तिस्तु निच्छविः। विदेहा ......" भूमिवर्ग 8) Tîrabhukti is a synonym of Videha. I do not think this is correct as I have not found in any old work तीरभुक्ति used as a synonym of Videha and am told by Maithila Brahmanas that the southern portion of Tirhut does not come within Videha. Videha was, however, very probably within the dominions of the Râjas of तीरभुक्ति, which might have led पुरुषोत्तम to group them together. निच्छवि is rarer than तीरभुक्ति, but General Cunningham says the kings of Thibet and Ladak trace their descent from the Nichchhavis (P. 451). The Newar kings of Nepal also belonged to this tribe. The Nichchhavis, therefore, appear to be the Newars, who are still found in Nepal. They must have dwelt further north probably about Lauria, near which there are extensive ruins. The above allusion relates to the discovery of her in Lanka by Ráma's envoy Hanûmân, the chief of the monkey legions. *Cf.* "दृष्टा विचिन्वता तेन लंकायां राक्षसीवृता। जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः। तस्यै भर्तुरभिज्ञानमंगुलीयं ददौ कपिः। प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः"। *R.* XII. 61-62. Here *Mahima.* has the following note, he says — 'हनूमानपि स्वामिभक्तः स्वामिकार्यकरणे बद्धकक्षः। एकेनापि चरणोल्लालेन लंकां प्राप्तो वनं स्थित्वा सीताया मुद्रिकां ददौ। सीताऽधोमुखी स्थितासीद्भूमौ मुद्रिकां दृष्ट्वा वदति। पूर्वं भगवती सीता रामविरहातुरा मुद्रिकामुपहासं कृतवती। यथा। प्रिया गेहे मयारण्ये त्वया चापदिसंस्थितः। रामस्त्यक्तो ह्यतः स्त्रीणां विश्वासं कः करिष्यति" । And further on he says,— " हनूमद्दृष्टांतेन तस्याः पतिव्रतात्वं प्रकाशितं भवति। स्त्रीणां हि पतिव्रताधर्म एव प्रशस्यते कठिनश्च तद्यतः। सुतं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके। न बोधयामास पतिं पतिव्रता। तदा ह्यसौ तद्व्रतशक्तिपीडितो। हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः"।

संभाष्य &c. Here *Sa'ro. Meghalata'.; Mahima., Val., Lakshmi., Bha., Sana'., Ra'm., Hara.,* Wilson and eight other MSS. read संभाष्य and explain it as, "संभाष्य स्वागतं इत्यालप्य" *Sa'ro.;* "स्वागतं भवत इत्यादिना आलप्य." *Bha.* &c.

The reading सुहृदुपनतः and सुहृदुपहृतः are interpreted as 'स्वमित्रेणानीतः, मित्रानीतः सन्, मित्रेणानीतः" &c.।

Su. omits this verse.

(XL) पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव &c, Here *Pârsvâ.; Val.; Sana'.; Kalya'.* and two other MSS. read पूर्वाशास्यं &c. and explain it as,—"पूर्वाशास्यं प्रथमाकांक्षणीयं यत्स्वास्थ्यं नाम"। *Val.;* "पूर्वाशास्यं पूर्वं प्रथमं आशास्यं आशंसनीयामिति यावत्." *Sanâ.* and *Kalyâ.;* which means,—'The first thing to be wished for.' *Sâro.* calls it,—"पूर्वाशास्यमिति मूलपाठः"। *Bha., Ra'm., Hara.,* and Wilson read, "भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्" and explain it as,—"हि यतः भूतानां प्राणिनां क्षयिषु नश्वरेषु करणेषु शरीरेषु एतत्कुशलमाद्यं प्रथममाश्वास्यमाश्वसनीयमवधानीयं । जीवने सति मंगलादिकं सर्वं भविष्यतीति भावः"। *Bha.* &c.

आत्मनश्चोपकर्तुम् &c. *Mahima.* explains it as,"यतः परोपकाररसिकत्वेन हे मेघ त्वं ख्यातः । यदुक्तं । विश्वं प्रार्थ्यो नैगद्वंद्यो जगन्माता जगत्पिता । सर्वेषु प्राणिनां मेघो जगदानंददायकः"।

वियुक्तः &c. *Mahima* interpretes it as, "एतादृशे वियोगे अहं एव प्राणान्धारयितुं समर्थो नान्यः कश्चित्पुरुषः । यदुक्तं । क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितं ।क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः । क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपि च दिव्यांबरधरो । मनस्वी कार्यार्थी न गणयाति दुःखं न च सुखं"॥

अव्यापन्नः &c. *Mahim.* explains it as,—"विपदि धैर्यमेव प्राणधारणमेव पुरुषाणां धर्मो न कापुरुषाणां । यतः । विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा । सदासि वाक्पटुता युधि विक्रमः । यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ । प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् । संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणेऽवधीरत्वम् । तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलं" ॥

कुशलम् &c. *Mahima* interpretes it as,——"सति कुशले सर्वं द्रष्टव्यं क्षणक्षयित्वाच्छरीरपंजरस्य ।यतः। इदं शरीरं परिणामदुर्बलं पतत्यवश्यं श्लथसंधिजर्जरं । किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते निरामयं ब्रह्मरसायनं पिब" । And further on he says,—"अत एव शरीरकुशलमेव पूर्वं प्रश्नकरणं श्रेयस्करमि-

ति भावः । सर्वेषां प्राणिनां प्राणवल्लभामिलने समाचारलिखने च पूर्वं कुशलं परमेश्वरभजनं च द्वितीयं । संसारिणां मार्गद्वयदर्शनात् । यदुक्तं । धन्यास्ते वीतरागा गुरुवचनरतास्त्यक्तसंसारसंगाः । ब्रह्मध्याने विलीना गिरिवरगहने यौवनं ये नयन्ति । ये च प्रोत्तुंगपीनस्तनकमलभराक्रान्तदेहां दिनान्ते । कान्तामालिंग्य गूढं मृदुशयनतले शेरते तेऽपि धन्याः ॥ अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः । पृष्ठे कान्तावलयक्वणितं चामरग्राहिणीनाम् । यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं । नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ" ॥

One of the four Uria MSS. omits this stanza.

(XLI) समधिकतरोच्छ्वासिना &c. *Sâro.* explains it as, "—अत्र मिथः समावस्थाकथनेन तयोः समदुःखितां प्रतिपादयति." ।

उष्णोच्छ्वासं &c. Here *Lakshmi.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, Wilson and two other MSS. read,-"दीर्घोच्छ्वासम्." *Sa'ro.* also notices and explains this reading. It says,–"दीर्घोच्छ्वासमिति पाठे बहुनिश्वासम्." Prof. Isvara chandra prefers this reading and says,—" अयमेव पाठः समीचीनः । प्रतनु तनुना इत्यादावुभयोरेव पदयोः समानार्थप्रतिपादकतया उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिनेत्यत्रापि तथात्वं युक्तं समधिकतरोच्छ्वासिनेत्यस्य दीर्घनिश्वासिनेत्यर्थः उष्णोच्छ्वासमित्यत्र दीर्घोच्छ्वासमिति पाठे उभयोः समानार्थप्रतिपादकता संभवति न त्वितरथा" ।

तैः &c. *Mallina'tha* explains this as,—"स्वसंवेद्यैः" 'known to himself'; because as *Sa'ro.* remarks "पूर्वानुभूतैः experienced by himself." *Sa'ro.* also interpretes it as,— "लोकप्रसिद्धैः those desires well known in the world," *Bha.*, *Ra'm.*, *Hara.*, *Kalya'.*, and Wilson read ते for तैः and Prof. Isvarachandra Vidya'sa'gar says,- " अयमेवपाठः साधीयान् तैरिति तच्छब्दस्यानुपयोगात् । युष्मच्छब्दप्रयोगाभावे त्वदीयमंगमित्यस्य बोधयितुमशक्यत्वाच्च. "

संकल्पैः &c. *Sa'ro.* and *Su.* explain this as, — " चुंबनदर्शनस्पर्शनादिव्यापारैः" &c.

वैरिणा &c. In connection with this *Mahima.* has the following note. He says,-"यः स्वप्रविज्ञानगतोऽप्यगोचरं चरंति नो यत्र गिरः कवेरपि । यत्रानुबध्नंति मनःप्रवृत्तयः सहेलयार्थः विधिनैव साध्यते । इति हेतुः कथं मम पुष्पानयनाधिकारे प्रमादः (See note on the first verse) कथं मम एतावान् विरहदुःखसंभवः । अत एवोक्तं हनुमन्नाटके । कुत्रायोध्या क्व रामो दशरथवचनाद्दण्डकारण्यमागात् । क्वासौ मारीचनामा कनकमयमृगः कुत्र सी-

तापहारः। सुग्रीवे रामसैत्री क्व जनकतनयान्वेषणे प्रेषितोऽहं। योऽर्थोऽसंभावनीयस्तमपि घटयते क्रूरकर्मा विधाता"।

One of the four Uria MSS. omits this verse.

(XLII) यदपि &c. तत् (वचनं) As *Mallina'tha* says is here understood. The sentence containing two relatives the corralative of one is expressed, that of the other is implied.

शब्दाख्येयं &c. *Sa'ro.* and *Mahima.* explain it as, —"प्रकटशब्दप्रतिपाद्यं न तु गोप्यं हस्तभ्रूसंज्ञादिवाच्यम्." *Mahim.*; शब्देन श्रोतृग्राह्येण आख्यायते कथ्यते यत्तत् प्रकटाख्यं न तु गोप्यं हस्तभ्रूसंज्ञादिवाच्यम्. *S'ro.*

मन्मुखेनेदमाह &c. *Mahim.* explains it as,—"आलिंगनं चुंबनं च महासुखरूपं भोगांगमुक्तम्। उक्तं च। न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये। स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरुयुगुलं स्वप्नेऽपि नालिंगितम्। मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्। तथा चुंबनं। नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता। खड्गाग्रैः करिकुंभशत्रुदलनैर्नाकं न नीतं यशः। कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चंद्रोदये। तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्"॥

किल ते यः &c. Prof. Isvarachandra Vidyáságara does not prefer the reading ते and gives the following reasons in support of his arguments. He says,—"अत्र ते इति पदस्य न कश्चिदुपयोगो लक्ष्यते। तदिति पदश्चाध्याहार्यम्। ईदृशश्चाध्याहारः कवेरशक्तिं द्योतयति। एकश्चोपयोगविरहितः प्रयोगः अपरश्चाशक्तिद्योतकोऽध्याहार इति दोषद्वयमापतति" । And suggests another reading for the same. He says,—"ते इत्यत्र तदिति पाठे तु दोषद्वयस्यैव परिहारः स्यात् तस्मात्। शब्दाख्येयं यदपि किल तद्यः सखीनां पुरस्तात्। इत्येवंरूप एव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति."

Three MSS. in our possession actually read तत् for ते.

(XLIII) वक्त्रच्छायां शशिनि &c. In connection with this *Sa'ro.* has the following remarks,— "कान्तिमत्वादानन्दकत्वाच."

शिखिनां बर्हभारेषु केशान् &c. *Cf.* "अस्याः कचानां शिखिनश्च किं नु विधिं कलापौ विमतेरगाताम्। तेनायमेभिः किमपूजि पुष्पैरभर्त्सि दत्वा स किमर्धचन्द्रम्" । *Nai.* VII. 22.

"कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतं। पृषतीषु विलोलमीक्षितं

पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥ त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया । विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलंबितुं क्षमाः । *R.* VIII. 59—60.

चण्डि &c. Here *Sa'ro., Val., Mahima., Lakshmi., Su., Bha.. Sana'., Kalya'.*, Wilson and six other MSS. read भीरु. *Val.*, has the following note on this.

He says,—"भीरु इत्यन्वर्थं नाम नारीणां संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति ह्रस्वगुणाभावः" ।

(XLIV). प्रणयकुपितां &c. *Cf.* "अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता । विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता । पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे । निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति" । *Uttara*—IV. 3. also *Cf.* "हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा । कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् । न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां । मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति" । *Vi.* II. 10.

न सहते &c. *Mahima.* explains it as,—"अहो आत्रयोर्दौर्भाग्यम् । शशिनि खलु कलंकः कंटकाः पद्मनाले । उदधिजलमपेयं पंडिते निर्धनत्वं । दयितजनवियोगो दुर्भगत्वं सुरूपे । धनवति कृपणत्वं रत्नदोषीकृतांगः" ।

कृतान्तः &c. In connection with this *Mahima.* has the following note. He says,—"अकरुणत्वमकारणविग्रहः । परधने परयोषिति च स्पृहा । सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता । प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्" ।

(XLV). तरुकिसलयेषु &c. The tears shed by the local deities to express sympathy for Yaksha's helpless condition must really be the rain-drops falling on the shoots of trees. The reason why the tears are said to fall upon trees is, as *Mallina'tha* says, that their fall upon the ground is regarded a bad omen. The यक्ष awakens the sympathy of the sylvan deities or of the trees he haunts and makes them shed tears of compassion in the shape of gum or dew-drops, *Cf* "विलपन्निति कोसलाधिपः । करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति । अकरोत्पृथिवीरुहानपि । स्रुतशाखारसबाष्पदुर्दिनान्" । *R.* VIII. 69.

Mahima. also notices the reading अम्बुलेशाः ।

(XLVI). यदि किल &c. The word किल implies probability. यदि here denotes the same. By taking these words together

probability is intensified. *Cf.* " यदि किलेति पदद्वयमपि संभावनार्थं एकार्थपदद्वययोरुपादानं संभावनातिशयं ख्यापयति." *Sa'ro.*

गुणवति &c. *Mahima.* explains this as,–" नारीणां शीलानां गुणाः प्रशस्याः । यदुक्तं वरं । शृंगोत्तुंगाद्गुरुशिखरिणः क्वापि विषमे। पतित्वायं कायः कठिनदृशदन्तर्विदलितः । वरं न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्णदशने । वरं वह्नौ पातस्तदपि न कृताः शीलविषमाः । वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणान्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतेः संघः कुरङ्गायते । व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतरं शीलं समुन्मीलति" ।

किसलयपुटान &c. *Cf.*, "भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः" । *R.* IX. 68.

तुषाराद्रिवाताः &c. *Mahima.* explains this as,—"हिमाचलस्य सुगन्धवातस्पर्शलोभात् । अहो दुःखभांडारसंसारविकारवारद्वारचेष्टाचरित्रं । यदुक्तं। आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं । व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते । दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्" ।

एभिस्तवेति &c. *Cf.* "वोढा कुरबकरजसां किसलयपुटभेदसीकरानुगतः । अनिमित्तामुत्कंठामपि जनयति मलयवातोऽयम्" । *Ma'lavi.* III. 9.

(XLVII). दुर्लभप्रार्थनं मे &c. *Cf.* "इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारं । प्रथममपि मनो मे पंचबाणः क्षिणोति । किमुत मलयवातोन्मूलितापांडुपत्रैः । उपवनसहकारैर्दर्शितष्वंकुरेषु " । *Vi.* II. 6.

त्वद्वियोगेऽन्यथाभिः &c. *Mahima.* has the following note on this. He says, — संयोगविरहरहितानां च रात्रिः न सुखावहा नापि दुःखावहा भाति। यदुक्तं ।येषां वल्लभया सह क्षणमिव क्षिप्रं क्षपा क्षीयते । तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव संतापकृत् । अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयाभावतो । राजा राजतु दर्पणाकृतिरसौ नोष्णो न वा शीतलः" ।

त्रियामा &c. The night, having three watches, *Praharās,* quarters. The last quarter of the night being reckoned as part of the next day or as क्षीरस्वामी states it in his commentary on Amara, which runs thus:—" आद्यन्तयोरर्धयोर्दिनव्यवहारात्"—त्रियामा. The first half of first quarter being reckoned a part of the last day, and the second half of the last quarter being reckoned as part of the next day. *Su.* also quotes the same with slight difference. He says,—"त्रियामा रात्रिः । आद्यन्तयोर्द्धयामयोर्दिनव्यवहारात्त्रियामेति क्षीरस्वामी".

(XLVIII). नत्वात्मानं &c. *Mallinátha* notices the reading नन्वात्मानं and takes it as a vocative particle. (O! auspicious one). *Sáro.* and *Mahima.* also notice this reading and say,—"नन्वात्मानमिति पाठे ननु अभिमुखीकरणे कोमलामंत्रणे वा.;" *Sáro.* "नन्वात्मानमित्यपि पाठः । ननु इति कोमलामंत्रणे." *Mahima.*

दुःखमेकान्ततो वा &c. *Cf.* "संयोगा विप्रयोगाश्च भवन्ति बहवो नृणाम्." *Kathá. X.* 5.

चक्रनेमिक्रमेण &c. Wilson cites a quotation from Plutarch containing a similar idea:—

"The wheel of Life is ever on the ground, While one side's up, the other's on the ground." *Cf.* "चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च." *Manu. Vallabha* cites the following here,—"सुखं च दुःखं च भयाभयं च लाभालाभौ मरणं जीवितं च । पर्यायशः सर्वमिदं स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न प्रहृष्येन्न शोचेत्." *Mahima.* cites here the following:—"सुखस्यानंतरं दुःखं दुःखस्यानंतरं सुखं सुखदुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तयेत्." And further on he says,—"इति हेतोस्त्वं कल्याणि कातरत्वं मा गच्छेः । वस्तुगत्या नीतिमार्गे सत्पुरुषाणां स्त्रीषु कापट्यमेव श्रेयस्करं पुरुषः स्त्रीवशो भवति इत्ययं कीतस्तुतौ (?) न्यायः । यदुक्तं । दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं तथा दुर्जने । प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जनेष्वार्जवं । शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता । ये चैवं पुरुषाः क्रियासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः" ।

आत्मनैवावलम्बे &c. Here *Hara.*, Wilson and two other MSS. read आत्मना नावलंबे and explain it as,—"आत्मना स्वयमेव आत्मानं मनो नावलंबे । अपि तु धैर्यं प्रापयामि." *Hara.*

(XLIX). भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ &c. The day on which the period of curse is to terminate, is the eleventh of the first half of कार्तिक called प्रबोधिनी and periphrastically referred to here. Wilson says that the serpent couch is the great snake Ananta, upon which Vishnu (शेषे शेते शेषशायी), or, as he is here called, the Holder of the bow शार्ङ्ग, reclines, during four months, from the 11th of आषाढ to the 11th of कार्तिक, or from the 23rd of June to the 26th of October. The sleep of Vishnu, during the four months of the periodical rains in Hindusthan, seems to bear an emblematical relation to that season.' *Cf.* "अवश्यंभाविनो भावा भवन्ति महतामपि । नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहि-

शयनं हरेः"। "जयति स भगवान् कृष्णः शेते यः शेषभोगशय्यायाम्। मध्येपयः पयोधेरपर इवांभोनिधिः कृष्णः"। *Veni.* I. 5.

लोचने मीलयित्वा &c. Lit. by shutting up the eyes; *i. e.* without succumbing to grief, hence with fortitude. *Mahima.* explains this as,—"कोऽर्थः यथा कश्चिन्निमीलितलोचनः सन् तिष्ठति तथा त्वमपि धैर्यमालंब्य सुखदुःखानुभावः शरीरेणैव भुज्येः। यदुक्तं। भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा। नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति। प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः किं कारणं दैवमलंघनीयम्। तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्"। "ना भवति यन्न भाव्यं। भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन। करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति"। *Cf.* "कान्ते कत्यपि वासराणि गमय त्वं मीलयित्वा दृशौ"। *Amarus'ataka.* 25.

विरहगणितं &c. Here *Pa'rsva'., Sa'ro., Val., Mahima., Lakshmi., Hara.,* Wilson and eight other MSS. read विरहगुणितं and explain it as,—"विरहेण गुणितं प्रवृद्धम्." *Su.*;"विरहगुणितं विरहेण वर्धितम्" *Hara.*; "विरहगुणितं वियोगाभ्यस्तं गुणकारेण संख्याविषयीकृतं। कोऽर्थः। अस्मिन्वर्षे यावत्संख्याकः स्वाभिलाषो नोपभुक्तोऽस्ति तमपि समस्तमेव एकदैवोपभोक्ष्यावहे." *Saro.*; "विरहे चित्ताभिप्रायविषयीकृतं तं तमिति अनेकप्रकारमात्मनो नोपभुक्तो विद्यते तत्सर्वमात्मनो भोगाभिलाषं एकदैवोपभोक्ष्यावहे." *Mahima.* But *Meghalata'., Kalya'.,* and two other MSS. read विरहजनितं and explain it as,—"विरहजनितं वियोगोपचितम्" &c. *Kalya'.* विरहगुणितं means '(desires) intensified by separation.' *Sa'ro.* notices this reading and says,—"विरहजनितमिति पाठे विरहे चित्ताभिप्रायेण विषयीकृतम्."

क्षपासु &c. *Mahima.* interpretes it as,—"अनेन दिने भोगो निषिद्धः। यदुक्तं। न टिट्टिभो गच्छति हंसलीलया। न वायसः कूजति कोकिलस्वरं। यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयः। तथैव नीचः प्रकृतिं न मुंचति"। And further on he says,—"अत एवाविचार्यकृत्यकरणादिदं फलं दुःखरूपं जातमेवास्ति। यतो महापुरुषैरुक्तम्। सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातं। परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन। अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेः। भवति हृदयदाही शैलतुल्यो विपाकः"।

(L). भूयश्चाह त्वमपि &c. Prof. Is'varachandra condemns the use of अपि in this reading in the following way. "अपिशब्दस्यात्र

न कश्चिदुपयोगो लक्ष्यते तस्मात् त्वमपि इत्यपिशब्दवान् पाठः प्रामादिक एव त्वमयि इति कवेरभिमतः पाठ इति प्रतिभाति । अयि इति यक्षस्य स्वपत्नीसंबोधनम्." *Pa'rsva.* reads "भूयश्चाह त्वमसि" &c. and *Bha.*, *Hara.*, Wilson and one MS. read "भूयश्चापि त्वमसि &c." and explain it as, "अपि एवं संभाव्यते पुनश्च शयने शय्यायां मम कंठलग्ना कंठासक्ता त्वं पुरा असि भविष्यसि पुराशब्दयोगे भविष्यति की । पूर्वं यथा त्वं मम कंठलग्ना आसीस्तथा पुनरपि कंठलग्ना भविष्यसि इत्यर्थः । आश्वासवचनमेतत् । पूर्ववृत्तं स्मारयन्नाह निद्रां गत्वेत्यादि." *Bha.*

(LI). अविश्वासिनी &c. Here Prof. Is'varachandra condemns the interpretation of *Mallina'tha* in the following way. He says,—"हे असितनयने कौलीनाल्लोकप्रवादादेतावता कालेन परासुर्नोचेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः मयि विषये अविश्वासिनी मरणशंकिनी मा भूः। " *Malli.* "इयं व्याख्या न समीचीना प्रथमपादे अभिज्ञानदानात् कुशलिनं विदित्वेत्यनेनैव मरणशंकाया निवर्त्तनात् पुनर्द्वितीयपादे मरणशंकिनी मा भूरित्यभिधानमसंगतम् । तस्मात् —

हे असितनयने कौलीनात् असंशयमेतावता कालेन स्नेहविलोपो जातः नातःपरं स ते पतिस्त्वां स्मरिष्यसि इति लोकवादात् मयि अविश्वासिनी मा भूः अविश्वासं मा कार्षीः दीर्घकालविप्रकर्षान्मयि स्नेहनिवृत्तिशंका न कार्येत्यर्थः । इत्येवं व्याख्येयम्" ।

Bha., *Hara.*, and Wilson read, "विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्या दृष्टे वस्तुनि &c," and explain it as,-"स्नेहान्प्रेमाणि किमपि अनिर्वचनीयस्वरूपात् आहुर्वदन्ति लोका इत्यर्थात्कीदृशान् स्नेहान् विरहे विच्छेदेऽपि विगता आपद् विपत्तिर्येषां तादृशान् सततं स्नेहपात्रस्य स्नेहानुस्मरणात् हि यस्मात् ते स्नेहाः अभोग्याः विरहे अभुज्यमानाः अत एव उपचितरसाः उपबृंहितरसाः सन्तः वस्तुनि पदार्थे स्नेहपात्रे दृष्टे सति प्रेमराशीभवन्ति स्नेहपुंजीभवन्ति प्रेमपात्रदर्शनेन तत्राधिक्यं व्रजन्तीत्यर्थः" । *Bha.*

स्नेहान् &c. स्नेह is defined in the commentary as the 'process of winning a person over;' but प्रेम is that which is 'incapable of enduring separation from the desired one'.

विरहे ध्वंसिनः &c. In connection with this *Sa'ro.* and *Mahima.* have the following remark,—"दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनाद्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् । मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवासाश्रयात् स्त्री मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादा-

द्धनम् " । and further on *Mahima.* and *Val.* say,—"अत्र स्नेहः प्रवासाश्रयादिति हृदयवल्लभविषये वियोगवशाद् गुणस्नेहः संपद्यत इत्यर्थः । उक्तं च । न हि भवति वियोगः स्नेहविच्छेदहेतुर्जगति गुणनिधीनां सज्जनानां कदाचित् । घनतिमिरनिरुद्धो दूरसंस्थोऽपि चन्द्रः किमु कुमुदवनानां प्रेमभंगं करोति । इत्येवं वियोगे स्नेहाधिक्यं पुनश्च । स्मर्तव्योऽहं त्वया मित्र न स्मरिष्याम्यहं तव । स्मरणं चेतसो धर्मस्तच्चेतो भवता हृतम् । इतिहेतोर्वियोगे वल्लभोऽत्यन्तरागस्थानं भवति संयोगे तु स्नेहकापट्यं न भवति । तव प्रेमसंभारो जनप्रसिद्धो भवति । यथा । इन्दुर्यत्र न निंद्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते । नोच्छ्वासा हृदयं दहन्ति शिशिरा नापीति कार्श्यं वपुः । स्वाधीनामनुकूलिनीं निजवधूमालिंग्य यत्सुप्यते । तत्किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते."

(LII). त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् &c. *Cf.* "वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं" । *Megh.* I. 2. also, "शोभांशुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्" । *Megh.* I. 56 alse, निःशेषविक्षालितधातुनापि । वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु । नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन " । *R. V.* 44.

(LIII). धीरतां &c. *Mallinâtha* takes this word to mean गंभीरत्वं which must mean 'nobility of heart,' but it may more naturally mean 'gravity as indicated by silence and hence silence itself.'

प्रत्यादेशान्न &c. The interpretation of प्रत्यादेश given by *Mallinâtha* is here rather laboured since the word is never found used in this sense anywhere else. The line may be interpreted by preserving the natural sense of प्रत्यादेश as follows:— I do not think your gravity (*i. e.* silence) to proceed from the rejection (of my suit).

On the reading "प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि," Prof. Isvarachandra Vidyáságara remarks:- " लिपिकरप्रमादवशादापतितं पाठवैकल्यमनुद्भाव्यश्लोकपादस्यास्य व्याख्यातत्वान्मल्लिनाथादीनां व्याख्यानादर्थग्रहस्तात्पर्यावगमो वा नोपपद्यते यथा"—

"प्रत्यादेशात्करिष्यामीति प्रतिवचनात् ।"उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः"इति शब्दार्णवे । भवतस्तव धीरतां गंभीरत्वं न तर्कयामि न समर्थये खलु । *Malli.*

"न प्रत्यादेशादनिराकरणान्न करिष्यामीत्यकथनाद्धेतोर्भवतो धीरतामवाचालत्वं तर्कयामि" ।*Hara.*

"प्रत्यादेशान्निःशब्दोऽपीति वक्ष्यमाणत्वेन प्रत्युत्तरस्य निराकरणाद्भवतो धीरतां धैर्यं न खलु तर्कयामि उत्प्रेक्षे अपि तु तर्कयाम्येव खलु निषेधे । द्वौ निषेधौ प्रकृतमर्थमवगमयत इति वृद्धाः" ।*Bha:*

कल्याणमल्लस्तु (also *Sa'ro:, Mahima.*, *Su.*, and four other MSS: read प्रत्याख्यातुं and explain it as; –"प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं न तर्कयामि न संभावयामि न विचारयामीति यावत्"&c.; *Val* reads प्रत्यादेष्टुं and explains it as ;प्रत्यादेष्टुं प्रत्याख्यातुं निराकर्तुमिति यावत्.) प्रत्यादेशान्नेति पाठमनादृत्य पाठान्तरं कल्पयित्वा व्याख्यातवान्। यथा।"प्रत्याख्यातुं न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि ।" भवतो धीरतां धीरत्वं प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं न तर्कयामि ।

एतदप्यकिंचित्करं तर्कणप्रत्याख्यानयोरेककर्तृकतापातस्य दुर्निवारत्वात् तर्कणं यक्षनिष्ठं प्रत्याख्यानं मेघनिष्ठमित्यस्यानपलपनीयत्वात् ।

सनातनरामनाथाभ्यां तु श्लोकोऽयं न व्याख्यातः ।

वस्तुतस्तु प्रत्यादेशान्न खल्वित्यत्र तालव्यशकारात्परमाकारापातः प्रामादिकः तत्परित्यागे तु सर्वमनाकुलं स्यात् । यथा—

"प्रत्यादेशन्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि" । भवतो धीरतां गंभीरत्वं तूष्णींभावमिति यावत् प्रत्यादेशं प्रत्याख्यानं न तर्कयामि न समर्थये खलु तवायं तूष्णींभावो न प्रत्यादेशद्योतकः इति भावः ।

Mahima., *Su:* and two other MSS: read अधीरतां and explain it as,– " अधीरतां असामर्थ्यम् &c:"

प्रत्युक्तम् &c: *Val.* explains this as, — " महतां अर्थिषु अभिमतार्थसंपादनमेव प्रत्युत्तरं महान्तो हि कर्मणा ब्रुवंति न वचसा. " *Su:* explains it as, — " यथा । नीची वेदाति न कुरुते । न वदति साधुः करोत्येव । इति भावः ।" Here *Mahimasinhagani* remarks,— प्रत्युत्तरं किं । मुखेन प्रत्युत्तरकरणेन इति सत्पुरुषाणां गोत्रव्रतं । यदुक्तं । किं कूर्मस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत् । किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यो निश्चलः । किं चांगीकृतमुत्सृजन्न मनसा श्लाघ्यो जनो लज्जते। निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम् । एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये। सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये । तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये । ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे । केचिद् याचकयाच्यमानविभवाः कुर्वन्त्यधोवक्त्रतां । केचिन्नोक्तिपरास्तथा तदपरे दृष्ट्वापि यान्त्यन्यतः। त्वं केनापि न याचितो न च रवं श्रुत्वा त्वयाकर्णिताः। यद्वर्षन्नसि सर्वतोऽपि हि तथा त्वहानतात्यद्भुता । तावत्प्रीतिमती प्रिया प्रियतमे माता हिताकांक्षिणी । स्यात्तावत्तनुजे नयस्थितिमनास्तावत्क्षितीशा इमे। मैत्र्यं तावदकृत्रिमं स्फुरति मी स्निग्धेऽपि सप्रत्ययं ।यावत्त्वं जलद प्रवर्षसि पयः-

पूरं प्रसन्नात्मना । हे मेघ त्वयि प्रत्यक्षं वर्षति यदि कस्यापि मनोरथप्राप्तिर्न स्यात्तर्हि तस्यैव दौर्भाग्यम् । यथा । बीजैरंकुरितं लताभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृंभितं । कन्दैः कन्दलितं जनैःप्रमुदितं धाराधरे वर्षति । भ्रातश्चातक पातकं किमपिते सम्यङ्न जानीमहे । येनास्मिन्न पतन्ति चंचुपुटके द्वित्राः पयोबिन्दवः"

ईप्सितार्थक्रियैव &c. *Cf.* "नाभ्यर्थितोऽपि जलदः सलिलं ददाति । सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः" | *Niti. S.* 84. "तृषितश्चातकपक्षी मुदिरमुदीक्षत आकुलितो यावत् । तावज्जलदवितीर्णं निपतितमंभो वदने तस्य" *Pradyumna Vijaya.* I. "चातकस्त्रिचतुरान् पयःकणान् याचते जलधरं पिपासितः । सोऽपि पूरयति भूयसांभसा चित्रमत्र महतामुदारता" । *Purva Chàtakàshtaka.* 2. "शमितचातकार्त्तस्वराः" । *Si.* IV. 24. "मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या । स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव" *Vi.* IV. 15.

(LIV). प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनः &c. Here *Bha.*, *Hara.*, Wilson and two other MSS. read, "प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसः" and explain it as, "प्रियसमुचितं प्रणयियोग्यम्" । *Bha.*; *Mahimasinhagani*, Prof. Isvarachandra, Pandit Pra'nana'th, *Lakshmi.*, and a MS. read, "प्रियमनुचितप्रार्थना वर्तिनः" and explain it as,— "प्रार्थनायां वर्तितुं शीलं यस्येति प्रार्थनावर्ती । अनुचितस्य अयोग्यस्य प्रार्थनावर्ती अनुचितप्रार्थनावर्ती तस्य अनुचितप्रार्थनावर्तिनः । यदुक्तं पूर्वं । अनुचितकर्मारंभः स्वजनविरोधो बलीयसि स्पर्धा । कटके च प्राघुणको (प्राघुणक or प्राघुणिक *m.*, a visitor, a spy) मस्तकशूलानि चत्वारि" ॥ *Mahima.*; *Sana'tana* and two other MSS. read, "प्रियसमुचितं प्रार्थनाचेतसः" and, explain it as, "प्रार्थनाचेतसः अभ्यर्थनायसक्तहृदयस्य" । *Sana'.*; *Val.* *Sa'ro.*, *Su.*, *Kalya'.*, and seven other MSS. read, "प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्मनः" and explain it as,—अनुचितप्रार्थनावर्त्मनोऽननुरूपयाञ्चामार्गस्य" ! *Val.*; "अनुचितः प्रार्थनावर्त्म यस्य असौ, अनुचितप्रार्थनावर्त्मा । तस्य दिव्यानुभावप्राप्तसमस्तवांच्छितवस्तुत्वात् । अयोग्ययाञ्चामार्गस्य" ॥ *Saro.*; "अनुचितं अयोग्यं जलदस्य अचेतनत्वात् पूर्वयाचनाकरणाभावाद्वा प्रार्थनाया वर्त्म मार्गो यस्यासौअनुचितप्रार्थनावर्त्म तस्य अनुचितप्रार्थनावर्त्मनः" । *Su.* &c.

क्षणमपि च ते &c. *Haragovinda* and three other MSS. read here "क्वचिदपि च ते" and explain it as,— "क्वचिदपि काले स्थाने च" ॥ *Hara.* &c.

शुभं भूयादध्येतुरध्यापकस्य च

APPENDIX A.

Verses considered to be spurious and not commented upon by Mallinátha.

पूर्वमेघम्.

After the 18th:—

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटस्तुंगेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघ्यमानः । आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १ ॥

उत्तरमेघम्.

After the 27th:—

स्निग्धाः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्तितन्वी
मेकप्रख्या भवति हि जगत्यंगनानां प्रवृत्तिः ।
स त्वं रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः
कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः ॥२॥
अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यंकप्रगलितलवैश्छिन्नहारैरिवास्त्रैः ।
भूयोभूयः कठिनविषमां सारयन्तीं कपोलात्
आमोक्तव्यामयमितनखेनैकवेणीं करेण ॥३॥

After the 44th:—

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पंचबाणः क्षिणोति ।
घर्मान्तेऽस्मिन्न् विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः
दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ॥४॥

After the 54th:—

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
मत्वागारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तैः
तस्योत्संगे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ॥ ५ ॥
तस्माद्द्रर्निगदितपथः शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा ।
यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद्गेहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः ॥ ६ ॥

तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदंतं प्रमुदितमनाः सापि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ ७ ॥
श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ ८ ॥
इत्थंभूतं सुचरितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयुक्ते विनोदः ।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
नत्वार्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥ ९ ॥

पूर्वमेघम्

Various readings of the spurious verses.

1. M. अध्वश्रान्तं for अध्वक्लान्तं K1. K2. M. श्रमपरिगतं for प्रतिमुखगतं. W. M. C1. C2. चित्रकूटः for आम्रकूटः W. C1. M. श्लाघमानं K2. M. श्लाघ्यमानं for श्लाघ्यमानः. M. सत्कारार्द्रः for सद्भावार्द्रः G1. R. M. धारयिष्यत्यवश्यं for वक्ष्यति श्लाघ्यमानः.

उत्तरमेघम्

2. C1. M. क्षणमपि for कथमपि. G2. M. मुंचन्ति for मोक्ष्यन्ति. G2. M. शून्यां for तन्वीम्. G2. M. एकप्रेक्ष्या for एकप्रेक्ष्या. M. G2. च for हि. G2. M. अद्भुतानां for अंगनानां.

3. G1. M. °पर्यन्त for °पर्यंक° M. °नवैः for °लवैः M. सादयन्तीं for नाशयंतीं.

4. G2. K1. R. M. क्षणोति for क्षिणोति. M. मे for अस्मिन् G1. G2. K1. R. M. °प्रविरलं° for °प्रवितत.° K2. omits this.

6. M. निगदितुमथो, R. M. निगदितवचः, K2. M. निगदितकथः for निगदितपथः. M. एव for एत्य. M. विकसितनिभं, M. विगलितविभुं, K1. R. M. विगलितविभं, K2. M. विगलितभुवं for विगलितनिभं. M. K1. दिष्टचिह्नैः. K2. R. M. दृष्टिचिह्नैः for दृष्टचिह्नैः.

7. M. C1. तव for तं. K1. K2. R. M. आचचक्षे for चचक्षे. M. परहितरतः for जनहितरतः. C1. M. अविरतफला for अभिमतफला. C1. M. अभ्युन्नतेषु, M. ह्युन्नतेषु, for ह्युत्तमेषु.

8. M. शापस्यान्ते for शापस्यान्तं. M. निगदितशुचौ for विगलितशुचौ. M. तुष्टचित्ता for हृष्टचित्तौ. K1. M. इष्टान्भोगान् for भोगानिष्टान्. M. C1. K2. अभिमतसुखान्, M. अभिरतसुखं, G2. M. अभिमतसुखं for अभिरतसुखम्.

9. M. सुलल्लितपदं, M. सुचरितमिदं, M. R. सुचरितमतं, K1. सुरचितपदं for सुचरितपदं. M. मेघदूतं च नाम्ना for मेघदूताभिधानं. M. कामक्रीडाविरहजनिते for कामक्रीडाविरहितजने. M. R. K1. विप्रयोगे for विप्रयुक्ते. R. M. विनोदं, M. विनोदि for विनोदः. R. K1. M. मेघश्चास्मिन्, M. कामश्चास्मिन् for मेघस्यास्मिन्. R. K1. M. बुद्धिभावे for बुद्धिभावः. R. M. चरणयुगलं for चरणकमलम्.

Appendix B.

Names of important places, rivers, mountains &c. as given by *Kálidâsa* in the order of verses of the *Meghaduta*:—

Serial No.	Names:—		Page.
1	रामगिरी.	See Note on page	2.
2	अलका.	do.	10.
3	मानस.	do.	15.
4	कैलास.	do.	15.
5	माल.	do.	21.
6	आम्रकूट.	do.	22.
7	रेवा.	do.	23.
8	विन्ध्य.	do.	24.
9	दशार्ण.	do.	28.
10	विदिशा.	do.	29.
11	वेत्रवती.	do.	29.
12	नीचैर्गिरि.	do.	29.
13	वननदी.	do.	30.
14	उज्जयिनी.	do.	30.
15	निर्विन्ध्या.	do.	31.
16	सिन्धु.	do.	32.
17	अवन्ती.	do.	33.
18	विशाला.	do.	35.
19	शिप्रा.	do.	35.
20	गन्धवती.	do.	40.
21	गंभीरा.	do.	47.

18. Bhatti Kavya with Sanscrit Commentaries, *Price Rs.* 3.

19. Apte's English-Sanscrit Dictionary, *Price Rs.* 4.

20. Bhartrihari's Niti and Vairagya Satakas with English Notes by the Honble. Justice Telang, *Price Rs.* 1.

21. Dasakumar Charita of Dandin with English Notes by Dr. Buhler, in 2 parts, *Price of each Part,* 14 *Annas.*

22. Subhashit Ratna Bhandagaram with Notes, *Price Rs.*3–8.

23. Sisupalvadh Magh with Commentaries, *Price Rs.* 3.

24. Sidhant Kaumodi, *Price Rs.* 2.

25. Kiratarjuniya of Bharvi with Commentaries, *Price Rs.* 2.

26. Mahavir Charita of Bhavbhuti with Commentaries, *Rs.* 1–8.

27. Dashkumar Charit with Commentaries, *Price. Rs.* 1-8.

28. Prasanna Raghav Natuck of Jaydev, *Price* 12 Annas.

29. Kumar Sambhav with Sans. Commentaries, *Price Rs.* 2.

30. Raghuvansha with Commentaries, *Price Re.* 1.

31. Rutusanhar of Kalidas with English Notes *Price* 6 *Ans.*

32. Ratnávali of ShriHarsha with English Notes, *Price* 8 *Ans.*

33. Malvikagnimitra of Kalidas with English Notes by S. P. Pandit, M. A. *Price Rs.* 2-2.

34. Tarksangraha with English Translation, *Price* 6 *Ans.*

35. Hitopdesha with English Notes, *Price Rs.* 1.

36. Vikramorvashi of Kalidas with Commentary, *Price* 1

37. Valmiki Ramayana with Full Commentaries, *Price Rs.* 1.

38. Harivansa with Full Sanscrit Commentaries, *Price Rs.* 6.

39. Bhagwat with the Commentaries of Shridhur, *Price Rs.* 10.

40. Bhagwat with Commentaries of Vijaydhawaj, *Price Rs.* 10.

41. Ganesh Purána, *Price Rs.* 6.

42. Krishna Yajurveda Taitareya Brahmana, *Price Rs.* 2–8.

43. Vedanta Sutra Bhashya in 3 parts, *Price Rs.* 10.

44. Vishnu Puran with Commentaries, *Rs.* 3.

45. Sundar Kand of Valmiki Ramayan, *Re.* 1.

46. Subhashitavali with Notes by Dr. Peterson, *Rs.* 5.

47. Kumar Sambhav with Commentaries, English Notes and English Translation, Cantos 1—VI. by Deshpande, B. A. *Rs.* 1-10.

48. Bhartri Hari's Three Shataka's with Commentaries, 12 Annas.

49. Udar Raghav with Commentaries, *Rs.* 1–8.

Gopal Narayen & Co; Booksellers, Bombay.

" I have already hinted at the wonderful balance in Kalidasa's character, by virtue of which he found himself equally at home in a palace and in a wilderness. I know not with whom to compare him in this; even Shakespeare, for all his magical insight into natural beauty, is primarily a poet of the human heart. That can hardly be said of Kalidasa; nor can it be said that he is primarily a poet of natural beauty. The characters unite in him, it might almost be said chemically. The matter which I am clumsily endeavouring to make plain is beautifully epitomised in "The Cloud Messenger". The former half is a description of external nature, yet interwoven with human feeling; The latter half is a picture of a human heart, yet the picture is framed in natural beauty. So exquisitely is the thing done that none can say which half is superior.

Arthur. W. Ryder
University of California
America.